हड़ताल

आज

राजनीतिक ह...

लिए हड़ताल का ... प्रायः इसी पर्दे के पीछे छिपा रहा है। श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने इस उपन्यास में इसी वर्ग-संघर्ष की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला है। साथ ही इसकी नायिका—कामिनी—की कल्पना ने इस उपन्यास को अत्यन्त रसपूर्ण बना दिया है।

हड़ताल

लेखक की अन्य रचनाएं

कविता

मल्लिका (१९४३)
बन्दी के गान (१९४५)
कारा (१९४६)

इतिहास तथा जीवनी

हमारा संघर्ष (१९४६)
नेताजी सुभाष (१९४६)
कांग्रेस का संक्षिप्त इतिहास (१९४७)

संकलन

लाल किले की ओर (१९४६)
गान्धी-भजन-माला (१९४८)
गल्प-माधुरी (१९४८)
राष्ट्र-भाषा—हिन्दी (१९४८)

निबन्ध

प्रभाकर-निबन्धावली (१९४८)

प्रेस में

अनीता (उपन्यास)
आराधना (कविता)
अञ्जलि (कविता)
हिन्दी-साहित्य : नये प्रयोग (आलोचना)
काम-कला : स्त्रियों के लिए (काम-शास्त्र)

हड़ताल

वर्ग-संघर्ष की पृष्ठभूमि पर लिखा हुआ
एक रोचक क्रान्तिकारी उपन्यास

क्षेमचन्द्र 'सुमन'

राजकमल प्रकाशन दिल्ली

प्रकाशक
राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड
दिल्ली।

प्रथम बार : २०००
१९४८
मूल्य साढ़े चार रुपये

मुद्रक
मदनलाल गुजराल
एलबियन प्रेस, दिल्ली।

हड़ताल के पक्ष में

पाठक ज़रा चौंकेंगे कि इस समय यह उपन्यास क्यों? परन्तु इसकी भी एक कहानी है। मुझ-जैसे बुद्धिजीवी व्यक्ति के लिए राजनीति एक-मात्र 'चिड़िया' ही थी; किन्तु अगस्त '४२ के पिछले संघर्ष में मैं उस ओर झुका और वहीं से इस उपन्यास की भाव-भूमि मिली। धीरे-धीरे यही भाव-भूमि परिस्थितियों की प्रेरणा पाकर यथार्थ का रूप धारण कर गई, जिसका अवदान यह 'हड़ताल' है।

सन् बयालीस का आन्दोलन सामूहिक था, अतएव जनता के प्रत्येक वर्ग से उसमें सहयोग देने की आशा की गई थी और हुआ भी ऐसा ही। मज़दूरवर्ग भी इसमें पीछे न रहा, उससे भी हड़ताल की अपील की गई, अपनी वेतन-वृद्धि या अन्य आर्थिक माँगों के अतिरिक्त ब्रिटेन के साम्राज्यवादी पंजे से अपने देश को मुक्त कराने वाली शक्तियों से कन्धे-से-कन्धा मिलाकर बग़ावत में हिस्सा लेने की भावना से। दूसरे शब्दों में यों भी कह सकते हैं कि उनसे राजनीतिक कारणों पर हड़ताल करने को कहा गया और निःसन्देह उस समय सारी मिलों और फैक्टरियों के मज़दूरों ने मिलकर इस अपील का पालन किया।

पिछले सब आन्दोलनों में मज़दूरों का योग बहुत ही कम था। उन आन्दोलनों का भार मध्यमवर्ग एवं किसानों के कन्धों पर था, परन्तु बयालीस के संघर्ष में औद्योगिक मज़दूरों को एक महत्त्वपूर्ण भाग अदा करना था। उन दिनों सारे उद्योग और व्यवसाय का उपयोग

भारत के तथाकथित युद्ध-प्रयास की उन्नति के लिए किया जा रहा था तथा इस युद्ध-प्रयास का उपयोग इस देश में विदेशी शासन लादे रखना था। उद्योग एवं व्यवसाय के ठप होने से तत्कालीन युद्ध-प्रयास को गहन क्षति पहुँची। यदि हमारा वह संघर्ष अत्यन्त तीव्र और अल्पकालिक होता तो वह औद्योगिक हड़तालें एक निर्णयात्मक कार्य करतीं। परन्तु ज्यों ही हड़तालें हुईं हमारा आन्दोलन भी लम्बा खिंच गया। मज़दूर लोग अनिश्चित काल तक अपना सहयोग जारी न रख सके, यदि वे सहयोग जारी रखते तो उन्हें इसमें महान् त्याग एवं बलिदान करना पड़ता।

यद्यपि उन दिनों हमें अनिश्चित काल तक के लिए मज़दूरों का सहयोग न मिल सका था तथापि जितने काल तक वह रहा, और जिस रूप में वह रहा, क्रान्ति की सफलता के लिए पर्याप्त था। अहमदाबाद तथा गुजरात के विभिन्न भागों में सौ से अधिक कपड़े की मिलों का तीन मास से भी अधिक काल तक बन्द रहना राजनैतिक संघर्षों तथा ट्रेड यूनियन-आन्दोलनों के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना थी। तत्कालीन सरकार द्वारा मिलों को चलाने के लिए किये गए सारे प्रयत्न निष्फल गए। मज़दूरों को फोड़ने के लिए मिल-मालिकों की ओर से अनेक हथकंडे काम में लाये गए। उस समय की 'टाटा' के कारखानों की हड़ताल भी विशेष उल्लेखनीय है। तत्कालीन वायसराय द्वारा मि० एमरी को लिखे गए एक पत्र के निम्न महत्त्वपूर्ण शब्दों से इसका अनुमान लगाया जा सकता है—

"अब की सबसे प्रमुख घटना 'टाटा' के कारखानों में खुले-आम राजनैतिक हड़ताल की घोषणा और महत्त्वपूर्ण युद्ध के उद्योग-धन्धों का रुक जाना है, जिसको कि हम जान-बूझकर प्रकाशित नहीं कराना चाहते।"

तत्कालीन सरकार द्वारा उन दिनों इस हड़ताल को भंग करने का पूर्ण प्रयत्न किया गया। परन्तु 'टाटा आयरन एण्ड स्टील वर्क्स' के

सब मज़दूरों ने एक स्वर से यह कहकर—"जब तक भारत में राष्ट्रीय सरकार की स्थापना नहीं होगी या हमें गाँधी जी, नेहरू जी या जयप्रकाशनारायण जी से आदेश नहीं प्राप्त हो जाते तब तक हम अपने काम पर नहीं लौटेंगे" अनिश्चित काल के लिए हड़ताल कर दी। टाटा के उन असंख्य कर्मठ कर्मचारियों का यह दृढ़ विचार ब्रिटिश साम्राज्य के लिए अपमान की वस्तु थी और उसका उचित बदला लिया जाना था। परिणामस्वरूप मज़दूरों को उनके घरों से निकाल कर तथा उन्हें संगीनों के आगे खड़ा करके काम कराने के उपाय काम में लाये गए। अनिच्छुक मज़दूरों ने कुछ समय के लिए धीमी गति से कार्य करने की नीति अपनाई। संगीनें और बन्दूकें फिर चमकीं तथा प्रत्येक मज़दूर के कार्य का परिमाण (कोटा) निश्चित कर दिया गया। उसको वह पूरा करना पड़ता था, अन्यथा वह गोली का शिकार बना दिया जाता।

पिछले आन्दोलन का प्रत्यक्ष प्रभाव जिन कपड़ा-मिलों पर पड़ा, उनमें अहमदाबाद की कैलिको मिल्स, और मैसर्स हथीसिंह एण्ड कम्पनी, मद्रास की बकिंघम और कर्नाटक मिल उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त बड़ौदा, इन्दौर, नागपुर तथा दिल्ली की विभिन्न मिलें; इम्पीरियल टोबाकू कम्पनी के कलकत्ता, बम्बई, बंगलौर तथा सहारनपुर के सब कारखाने, और कानपुर के चमड़ा-उत्पादन-केन्द्र भी उन दिनों दो महीने तक प्रायः बन्द ही से रहे। उन लम्बी हड़तालों में हमारे मज़दूरों को काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था, किन्तु फिर भी वे आपत्तियों की भीषण झंझा में अडिग, अडोल रहे।

आज भारत स्वतन्त्र हो गया है; किन्तु कितने मज़दूर हैं जो इसकी स्वतन्त्रता का आस्वादन कर सके हैं? यह केवल विडम्बना है? ऊपर की पंक्तियों में मैंने सन् ४२ के संघर्ष के दिनों में हुई हड़तालों का विश्लेषण इसलिए किया है कि तब और अब की स्थिति समझने में पाठकों को सुविधा हो। तब भी भारत युद्ध-निरत था और

अब भी युद्ध की भीषण कठिनाइयों से घिरा है। तब भी वे ही पूँजीपति मिल-मालिक थे और आज भी वे ही। जिन मज़दूरों ने उस समय जवाहरलाल नेहरू से हड़ताल तोड़ने की आज्ञा न मिलने के कारण उसे ज्यों-का-त्यों जारी रखा था, उन नेहरू की सरकार के राज्य में उनके साथ क्या बीत रही है, पूँजीपतियों और मिल-मालिकों की ओर से उन पर कितने गज़ब ढाये जा रहे हैं, क्या कभी इसकी ओर भी किसी ने ध्यान दिया है ?

आज से छः वर्ष पूर्व जिन उद्देश्यों से हमने हड़तालों का समर्थन किया था, उनमें कुछ भी अन्तर नहीं आया है, मज़दूर परतन्त्र हैं, भारत के स्वतन्त्र होते हुए भी। देश को समृद्ध एवं सम्पन्न बनाने के लिए यह आवश्यक है कि इसके उद्योग-धन्धे बढ़ाये जायं और यह तब ही सम्भव है, जब कि इसके मज़दूर अपने को मज़दूर न समझकर उस उद्योग-केन्द्र या मिल का अपने को भागीदार भी समझें।

मैंने ४२ के संघर्ष के अपने कार्य-काल में उन दिनों होने वाली हड़तालों और तज्जनित परिणामों पर भली प्रकार विचार किया था। मज़दूरों की तब की और अब की स्थिति को भी मैं जानता हूँ, मिल-मालिकों के तब के और अब के रवैये में किंचिन्मात्र भी अन्तर मुझे नहीं प्रतीत होता। तब इनकी पीठ पर ब्रिटिश नौकरशाही थी और अब नेहरू-सरकार। वास्तव में भारत की स्वतन्त्रता का अधिकांश श्रेय 'बयालीस के संघर्ष' को ही दिया जाना चाहिए। इस भीषण आन्दोलन के कारण ही नौकरशाही का तख्ता हिला और वह भारत को स्वतन्त्रता देने को बाध्य हुई। इस आन्दोलन में और आन्दोलनों की भाँति किसानों का भाग न होकर अधिकांश मज़दूरों का हिस्सा था। इसीलिए इस आन्दोलन द्वारा प्राप्त स्वतन्त्रता का सुखदायी फल सबसे पूर्व मज़दूरों को ही मिलना चाहिए था; परन्तु हुआ इसके सर्वथा विपरीत। पूँजीपति मिल-मालिक देश की औद्योगिक उन्नति का बहाना करके नेहरू-सरकार के कृपा-भाजन बन गए।

आज अपनी सरकार होते हुए भी हमारे मज़दूरों का असन्तोष दिन-दिन बढ़ रहा है। सरकार क्योंकि कांग्रेस की है इसलिए मज़दूर कांग्रेस को भी संदिग्ध दृष्टि से देखने लगे हैं। इसका फल हमारे सामने प्रत्यक्ष है। आज देश को अधिक उत्पादन की आवश्यकता है, क्योंकि चढ़ती कीमतों को रोकने और भाव घटाने का एक-मात्र उपाय अधिकाधिक उत्पादन करना है। सरकार 'उत्पादन बढ़ाओ' का नारा बुलंद करती है। इसके लिए वह नैतिकता की नीति अपनाती है, स्वाधीनता का सहारा लेती है और राष्ट्रीयता का राग अलापती है। इस नैतिकता, स्वाधीनता तथा राष्ट्रीयता का चित्र मज़दूरों के सामने आता है; परन्तु इस चित्र की रूपरेखा को वह हृदयंगम नहीं कर पाते। इस सम्पूर्ण चित्र का सौन्दर्य आँखों के मार्ग से उनके हृत्तल पर नहीं उतरता। रोटी के लिए बिलबिलाते उनके बच्चे, मुक्तकेशी, विवसना, धूलैकवेणी उनकी जीवन-संगिनी आँखों में आँसू भरे उनके सामने उपस्थित हो जाते हैं और उनके आँसुओं का खारा जल चित्र के सम्पूर्ण भव्य आकर्षक रंगों को धो डालता है।

इस दयनीय स्थिति में भी वर्तमान सरकार उसके प्रति कुछ नहीं सोचती और दिन-प्रतिदिन मज़दूर की आस्था कांग्रेस पर से हटती जा रही है। ऐसी विषम अवस्था में सरकार के लाख प्रयत्न करने पर भी 'हड़ताल' हो ही जाती हैं, वे रुकती नहीं। न नैतिकता, स्वाधीनता और राष्ट्रीयता की दुहाई से भरी वक्तृताओं से और न संगीनों की धमकियों से। इसी असन्तोष का परिणाम है कि आजकल एक सामान्य से चुनाव को कुछ ही अधिक वोटों से जीतने में कांग्रेस को एड़ी-चोटी का पसीना एक करना पड़ रहा है। वास्तव में मज़दूरों के इस गहरे असन्तोष तथा पूँजीपति मिल-मालिकों के मनमाने अत्याचारों का मूल कारण हमारी सरकार और नेताओं की असावधानी, दाम्भिकता एवं अकर्मण्यता है।

'हड़ताल' में इसी वर्ग-संघर्ष और सरकारी रीति-नीति का वर्णन मैंने एक निष्पक्ष बुद्धिजीवी (Intellectual) की हैसियत से किया है; किन्तु इसकी रचना हुई है सर्वथा यथार्थ अनुभवों के आधार पर ही। इसका आधे से अधिक भाग मैंने ४२ के आन्दोलन के दिनों में नज़रबन्दी के समय लिखा था, शेषांश उसके उपरान्त। इसे पूर्ण रूप से अद्यतन बनाने का भरपूर प्रयत्न मैंने किया है। यदि इसके लिखे जाने के समय फिरोजपुर जेल के उन दिनों के हमारे 'राजबन्दी कैम्प' के जत्थेदार और आजकल दिल्ली म्युनिसिपल-कमेटी के अध्यक्ष डाक्टर युद्धवीरसिंह लेखन-सामग्री दिलाने में मेरी सहायता न करते तो कदाचित् यह उपन्यास पाठकों के हाथों में न होता। एतदर्थ मैं उनका हार्दिक आभारी हूँ। 'हड़ताल के पक्ष में' इतना लिखकर मैं इसे पाठकों के हाथों में सौंपता हूँ।

१ दिसम्बर '४८ क्षेमचन्द्र 'सुमन'

परिचय

श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' का यह उपन्यास मैंने ध्यान से पढ़ा। इसमें कई प्रकरण तो इतने सुन्दर, हृदयस्पर्शी एवं मार्मिक लगे कि उन्हें दुबारा पढ़ना पड़ा। उपन्यास जब मुझे मिला तो मैंने इसे कौतूहल से देखा, क्योंकि दूसरे हिन्दी-साहित्यिकों की भाँति 'सुमन' जी को मैं भी एक अन्तर्मुख कवि के रूप में जानता था। सोचा, यह उपन्यास भी निरालम्ब अम्बर में हिलोरें मारने वाला विप्रलम्भ उच्छ्वास ही होगा; जिसमें कम-से-कम मुझ-जैसे दार्शनिक राजनीतिज्ञ व्यक्ति के लिए 'पाथेय' की कम ही सम्भावना रहती है। परन्तु इसके पहले ही वाक्य से चमत्कृति उत्पन्न हुई, जो क्रमशः बढ़ती ही गई; बीच में इसे बन्द करने का साहस नहीं हुआ। और मैं यह दृढ़ता से कह सकता हूँ कि 'प्रस्तुत उपन्यास एक साँस में ही पढ़ा गया है।'

'सुमन' जी जब जेल का वर्णन करते हैं (पृष्ठ १४४) तो मालूम पड़ता है जैसे मैं स्वयं एक काल कोठरी में पड़ा सड़ रहा हूँ। उपन्यास का नायक 'शेखर' जब मज़दूर-प्रतिनिधि के रूप में अपने पिता (मिल-मालिक) रायबहादुर सेठ भानामल से बात करता है तो अनुभव होता है जैसे मैं ही किसी मिल-मालिक से झड़प कर रहा हूँ। यहाँ (पृष्ठ १६१) शेखर का चरित्र बहुत ऊँचा उठा है, जैसा कि एक मज़दूर-नेता का होना चाहिए। सेठ भानामल जब अपने ही लड़के शेखर को (पृष्ठ १६५) हड़ताली मज़दूरों के प्रतिनिधि के रूप में आते देखते हैं

तो उस समय के उनके मनोभावों का वर्णन करने में 'सुमन' जी ने मनोवैज्ञानिक प्रतिभा का अपूर्व परिचय दिया है। शेखर अपनी माता से असीम प्यार करता है, परन्तु जब समझौते के लिए पिता के घर जाता है तो उससे बिना मिले (पृष्ठ १६८) लौटता है। यहाँ 'सुमन' जी ने सचमुच पाठकों को रुलाकर अन्याय किया है। राधे (जो मज़दूरों का असली नेता है) की धीरता इस ढंग से व्यक्त की गई है कि रह-रह-कर उसके प्रति श्रद्धा के भाव उमड़ते हैं। जब वह कहता है, "पूँजीवाद और सरकार एक ही चीज़ हैं" तो 'सुमन' जी की विद्रोही आत्मा बोल उठती है। उपन्यास की नायिका 'कामिनी' शैशव से मातृ-हीन है। वह अपने पिता 'राधे' (मज़दूर और मज़दूर-नेता) के साथ अकेली रहती है। पड़ौसी 'रहमत' और उसकी पत्नी 'अनवरी' निःसन्तान होने के कारण उससे असीम स्नेह करते हैं। वह धूप में अकेली बेल सींच रही है। दोपहरी में ईंधन का गट्ठर ढोकर लाता हुआ रहमत उसे देखता है और गट्ठर सिर पर रखे हुए ही कामिनी से कहता है, "कामो बेटी, इतनी धूप में ? छोड़ दे। मैं ईंधन रखकर तेरे पौधों में पानी दे दूँगा (पृष्ठ ११)।" वात्सल्य-प्रेम मूर्त्त रूप धारण कर लेता है और दिल भर आता है। जब वह मज़ाक करता है, "जा रामायण के साथ माथा-पच्ची कर" तो रहमत बहुत ऊँचा उठता हुआ नज़र आता है। रहमत और राधे की प्रगाढ़ मैत्री के रूप में 'सुमन' जी हमारे मज़दूर-आन्दोलन के मुख्य आधार 'हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य' को बहुत ही आदर्श रूप में पेश करते हैं।

जब राधे को मिल से अलग कर दिया जाता है तो उसे कामिनी और रहमत के बिछोह की चिन्ता होती है। रहमत कहता है, "कौन है हमें अलग करने वाला ?............इकट्ठे ही जियेंगे, इकट्ठे ही मरेंगे (पृष्ठ १६)।" आगे वह ठोस आश्वासन देता है—"पन्द्रह मैं लाता हूँ और पाँच-छः अनवरी ले आती है। क्या इतने से भी हम चार

प्राणियों का पेट नहीं भरेगा ?" मज़दूर की महत्ता और उदारता, जो वस्तुत: उसमें होती है, 'सुमन' जी के शब्दों में फूट पड़ती है।

'मज़दूर-संघ' टूट गया है; परन्तु फिर भी रहमत समझता है कि हम हड़ताल द्वारा अपने साथियों को काम पर फिर लगवा सकते हैं। परन्तु राधे कहता है, "जो आदमी तब बढ़-बढ़कर मरने को तैयार थे, वे लगभग सारे ही इस समय रायबहादुर के सहायक हैं। इस वक्त वे बड़ी वीरता पूर्वक हमारे सामने आ रहे हैं।" राधे के इन शब्दों से आई. एन. टी. यू. सी. (इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस) के हड़ताल-तोड़क कितनी स्पष्टता से हमारी नज़रों में नाच उठते हैं।

पृष्ठ २२ पर मिल-मालिक और उसके मैनेजर के बीच हुए वार्तालाप का जो सजीव वर्णन किया गया है, वह अत्यन्त मनोवैज्ञानिक एवं यथार्थता की पृष्ठभूमि पर आधारित है और लेखक ने सेठ जी के विषय में यह लिखकर तो चार चाँद लगा दिये हैं, "हँसकर बोलना तो दूर रहा वे किसी को हँसता हुआ देखना भी सहन नहीं कर सकते।"

कामिनी बीमार है। अनवरी 'चाची' उसकी सेवा करती है; "कामो के लिए खाना" रहमत ने कहा। राधे—"मैं बना लूँगा, या अनवरी ही बना देगी।" अनवरी—चकित होकर "मैं ?" और फिर उसके मुख से निकल पड़ता है, "काश, हमारे बीच में मज़हब की दीवार न होती" (पृष्ठ ४१)। इन शब्दों के साथ 'सुमन' जी अत्यन्त प्रगतिशीलता के साथ मैदान में आते हैं।

धनिकों की कृत्रिमता और उनके सेवकों का हीनतापूर्ण भाव (पृष्ठ ५४) 'सुमन' जी ने बहुत ही सजीवता से व्यक्त किया है। नगर के प्राय: सभी मिल-मालिक दावत में आने वाले हैं। बस, "सब नौकर अपनी-अपनी जगह सावधान ......"। प्रत्येक को यही चिन्ता थी कि उसकी चपरास पर दाग़-धब्बा न हो, कपड़ों में कोई सलवट न दिखाई दे, इसीलिए वे बार-बार अपने कपड़ों पर हाथ फेर रहे हैं

"......और कभी-कभी चपरास के बिल्ले को समाज से रगड़ते हैं।" दूसरी ओर "......खाने की सामग्री से पीने की वस्तुओं का अधिक प्रयोग हुआ।......खाने की मेज़ पर जितना अधिक सामान हो अथवा जितना कम खाया जाय, यही धनिकों की सर्वोत्तम पहचान है।" कितनी यथार्थ तुलना है।

शेखर का अपने पिता के नाम पत्र (पृष्ठ १२०), कामिनी का पार्वती को हार उतार कर दे देना और बिना कहे मोटर से उतर जाना (पृष्ठ १६६), पिता के घर जाकर शेखर का मानसिक पश्चात्ताप (पृष्ठ २१२), आत्म-हत्या करने के लिए जाने से पूर्व अनवरी और रहमत को देखने की कामिनी की इच्छा तथा मानसिक उद्वेग (पृष्ठ २३१) शहर में और विशेषतः मज़दूर-बस्तियों में हिन्दू-मुस्लिम दंगे कराने की सेठ जी तथा प्रतिक्रियावादी नामधारी हिन्दू-नेता डाक्टर पैंगोरिया की साजिश का भण्डाफोड़ और उनकी गिरफ़्तारी का वर्णन (पृष्ठ २३६), अत्याचारी और षड्यन्त्रकारी अपने पिता को पकड़वाने की *शेखर की दृढ़ता (पृष्ठ २४४), कामिनी तथा शेखर का अत्यन्त* संयमित, अनश्लील, प्रगाढ़ तथा आदर्श प्रेम और उपसंहार के समय 'अपहृत' कामिनी का पुनर्मिलन आदि प्रसंग इस उपन्यास में अत्यन्त चमत्कारिक, मनोहारी, यथार्थ तथा अभूतपूर्व हैं

यह उपन्यास हिन्दी-साहित्य में अनुपम है। हिन्दी में दूसरे भी अनेक राजनैतिक उपन्यास हैं; जो या तो षड्यन्त्रकारियों के असफल कार्य-कलापों की कहानियाँ हैं या राजनैतिक 'पुट' के साथ अश्लील प्रेम-सम्भाषण या विडम्बना से उपेक्षणीय हैं। और यह तो प्रायः सभी उपन्यासों में है कि वे असली जनता से दूर-दूर भागते हैं। जनता की समस्याओं, उनके मनोभावों और आन्दोलनों का वर्णन इन 'कलाकारों' की दृष्टि में 'कला का खून करना' है। इन 'छाया-काश-विहारी कलम-घिस्सुओं' के लिए 'सुमन' जी का यह उपन्यास

एक चुनौती है । यह उपन्यास जनता का है—भावों से भी, भाषा से भी। वस्तुतः 'सुमन' जी इसके लिए धन्यवाद के पात्र हैं ।

एक शब्द और—

उपन्यास में सुधारवादी भूमिका कहीं-कहीं अखरती है । वर्ग-संघर्ष, जो इसका प्रमुख आधार है, कहीं-कहीं फीका पड़ गया है । 'शेखर' और 'राधे' के साथ 'सम्राट्' शब्द का प्रयोग-चाहे वह 'मज़दूर-सम्राट्' ही क्यों न हो—अच्छा नहीं लगता । गिरफ़्तारी के समय राधे की निरीहता जँचती नहीं । शेखर द्वारा ग़रीबों की प्रशंसा करना 'बूर्जुआ कल्चर' की द्योतक है ।

परन्तु, इसका यह आशय कदापि नहीं है कि ऐसा कोई दूसरा मौलिक उपन्यास हिन्दी में है । निःसन्देह कवि 'सुमन' ने हमारे हिन्दी साहित्य को यह एक नई दिशा दी है । वे जन्म-जात प्रतिभाशाली लेखक, कवि एवं पत्रकार हैं । अतएव मैं और हम सभी आशा करते हैं कि उपन्यास लिखने में जो 'गतिरोध' उन्होंने तोड़ा है उसे वे जारी रखेंगे और आसन्न भविष्य में जल्दी ही उनका कोई इससे भी उत्तम उपन्यास जनता के हाथों में आयगा ।

—आचार्य दीपङ्कर

◆

क्रम

पहला भाग

बीज

: १ :

"पक्की खबर है?"

"हाँ।"

"किससे सुनी है।"

"मैनेजर से।"

"मैनेजर क्या कहता था?"

"पहली मई से बिलकुल अलग।"

"आह राघे, बिना किसी अपराध के ही।"

"अपराधी तो रहमत, उनकी नज़रों में मुझसे बढ़कर सारी दुनिया में कोई नहीं हो सकता?"

"इसीलिए तो मैं तुझको बार-बार सावधान करता रहता था कि इन तिलों से तेल नहीं निकल सकता। क्यों अपनी जान जोखिम में डाल रहा है; पर तूने तो कानों में रुई लगा रखी थी।"

"पर रहमत तू ही बता, मैंने क्या बुरा किया है जो अपने दुखी भाइयों का प्रतिनिधि बनकर उन अभागों की आवाज़ मालिकों तक पहुँचाई? क्या यह भी अपराध था?"

"अरे भाई, जाने भी दे इन फ़िज़ूल की बातों को। वहाँ हमारे-जैसों की कौन सुनता है? सन्तोष करके बैठ रहो, कभी-न-कभी अच्छे दिन भी आ जायँगे।"

"रहमत, बिना हिम्मत के कभी भी किसी के भले दिन नहीं आये, और न हमारे ही आयेंगे।"

"अच्छा, तो अब तू ही बता कि हिम्मत कर-करके क्या करना है? दो वर्ष से निरन्तर हमारा संघर्ष चल रहा है, परन्तु अभी तक हम अपने इस कार्य में सफल नहीं हो पाये। हाँ, यही बाकी रहा है कि किसी दिन नौकरी से भी जवाब ले बैठेंगे। यदि पहले से ही मालिकों से इसका फैसला कर लिया जाता तो आज यह दिन देखने को न मिलता।"

जेठ के महीने की आग बरसाने वाली दोपहरी का जिस किसी को प्रत्यक्ष नज़ारा देखना हो, वह कानपुर में देख सकता है।

इसी तपती हुई धूप और तन-झुलसाने वाली लपटों का सामना करते हुए दो व्यक्ति लाटूश रोड पर उपर्युक्त बातें करते हुए जा रहे थे। दोनों ने अपने सिरों पर सूखी लकड़ियों के गट्ठे रखे हुए थे; जिन्हें शायद वे जंगल से ईंधन के काम में लाने के लिए ला रहे थे।

वेश-भूषा से बड़ी आयु वाला व्यक्ति हिन्दू प्रतीत होता है और छोटा मुसलमान। हिन्दू जहाँ-तहाँ टुक्की लगी हुई, किन्तु साफ धोती और गले में आधी आस्तीनों वाली बंडी पहने है। उसका शरीर अपने साथी की अपेक्षा कुछ अधिक लम्बा है, जिसको घोर गर्मी, कड़ी मेहनत एवं ग़रीबी ने मिलकर हड्डियों का कंकाल-मात्र बना दिया है। उसकी आँखों की पुतलियों, उनके चारों ओर फैली कालिमा तथा दोनों जबड़ों के उभार को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि इसने यौवन में मादकता तथा अलहड़पन से परिपूर्ण सुनहले दिन कभी देखे ही नहीं—बुढ़ापे को साथ ही लेकर वह दुनिया में आया होगा। यदि यह मान लिया जाय कि किसी जीवित मनुष्य का चेहरा ऐसा हो सकता है, तो यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि मृत व्यक्ति का चेहरा भी इससे अधिक भयानक नहीं होता।

इतना होते हुए भी इस व्यक्ति के मस्तक पर एक-दो सौभाग्य की

रेखाएं तथा आँखों की पुतलियों में रह-रहकर चमकती हुई जीवन-रश्मि देखकर यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि अभी तक इसके विचारों की उच्चता तथा मानसिक दृढ़ता ज्यों-की-त्यों सुरक्षित है।

अपने मुसलमान साथी के साथ बातें करता-करता जब वह बीच-बीच में बड़ी ठंडी साँस लेता हुआ, निराशा-भरी दृष्टि से इधर-उधर देखता है तो उसके दिल को मसोस देने वाली कोई मर्म वेदना बलात् उसकी आँखों से प्रकट हो जाती है। पर इसके साथ ही उसके ओठों पर खेलती हुई मधुर मुस्कान इधर-उधर बिखरे हुए मनोभावों को फिर कुछ देर के लिए नवीन उत्साह एवं प्रेरणा प्रदान कर देती है।

युवावस्था के बाद मानव पर बुढ़ापे का आक्रमण होता है, पर बुढ़ापे के बाद क्या आता है इस बात का उत्तर देने के लिए राधे का शरीर ही सजीव प्रमाण है; जिसकी कमज़ोर डगमगाती टाँगों को आज दो गठरियाँ ढोनी पड़ रही थीं—एक अपनी हड्डियों की और दूसरी लकड़ियों की।

उसके साथी (रहमत) का कद कुछ छोटा और आयु जवानी तथा बुढ़ापे को मिलाने वाली है। पर उसका शरीर राधे की भाँति अस्त-व्यस्त एवं क्षीण नहीं। चाहे निर्धनता की छाप उसके हर एक अंग पर स्पष्ट दिखाई देती हो, पर तो भी उसकी खाल के नीचे यत्र-तत्र मांस बाकी है; उसके बोलने का ढंग बड़ा ही निर्भीक एवं उदार है। बात-बात के बीच में ठहाका मारकर हँसना और हर शब्द में सुरुचिपूर्ण विनोद की झलक, उसके दिल की सादगी की परिचायक है। अपढ़ एवं आधुनिक पाश्चात्य सभ्यता से अपरिचित होने के बावजूद भी उसका हृदय मानव-प्रेम एवं सहानुभूति से परिपूर्ण दृष्टिगोचर होता है।

रहमत के गले में खाकी रंग का फौजी-कट का कुर्ता है, जो बटन न होने के कारण गले में पीछे को लटका हुआ है और जिसकी आस्तीनें अधिक लम्बी होने के कारण कोहनी तक ऊपर की हुई हैं। पसीना

उसके मस्तक से चू-चूकर गर्दन के रास्ते उसकी कोहनियों तक आकर टपक रहा है।

उसके नीचे पहने हुए नीले रंग के कपड़े को पतलून कहना उसका अपमान करना है। चाहे पतलून की तरह ही वह क्यों न मालूम देता हो। क्योंकि ऊपर बटनों की जगह खाली रहते हुए भी वह सुतली से उसकी कमर पर कसी हुई थी। उसको देखकर उसमें 'पतलूनपन' का कोई लक्षण मालूम नहीं होता, पर उसे तहमत या पायजामा भी तो नहीं कह सकते। आख़िर कभी तो वह कपड़ा पतलून के रूप में रहा ही होगा।

ये दोनों व्यक्ति कानपुर की एक कपड़े की मिल में नौकर हैं।

कुछ दूर जाकर जब रहमत ने देखा कि लकड़ियों के भारी बोझ के कारण राधे के पैर डगमगा रहे हैं, तो एक वृक्ष के नीचे पहुँचकर उसने कहा, "यहाँ थोड़ी देर रुककर जरा सिर की गर्मी निकाल लें राधे!" और फिर पहले अपना और बाद में राधे का बोझ उतारकर पेड़ के तने के सहारे रख दिया। दोनों ने वृक्ष की शीतल एवं सुखद छाया में बैठकर शरीर तथा मन दोनों को ठंडा किया।

कुछ देर चुप रहने के बाद रहमत बोला, "फिर अब क्या बनेगा?"

"बनना-बनाना क्या है।" उसने नीरवता को भंग करते हुए कहा, "मेरे साथ कोई विचित्र बात तो नहीं हुई। जहाँ हमारे हिन्दुस्तान की आधी से अधिक जनता रोटी और कपड़े से मुहताज है, वहाँ एक की और वृद्धि होगई समझ लो।"

रहमत के माथे में बल पड़ गए। "फिर वही बेहूदी बातें, मैं कहता हूँ कि तेरी अक़्ल पर क्या पत्थर पड़ गए हैं? कुछ आगे-पीछे का भी ख़याल है कि अपनी ही हाँकता है?"

ऐसा मालूम हुआ कि रहमत का कहा हुआ राधे के दिल में घर कर गया। उसके नेत्रों के सम्मुख एक निराश्रित आत्मा घूमने लगी। उसकी मृत पत्नी की एक-मात्र निशानी और उसके समग्र प्रेम का केन्द्र,

उसका भव्य संसार, उसका सर्वस्व। वह सोच रहा था—काश! मैं अकेला ही होता, मैं उस निराश्रित बालिका का आधार न होता। आह, यदि मैं आज मर जाऊँ या कैद हो जाऊँ तो उस बेचारी मातृ-विहीन बालिका का संसार में कौन आश्रय रह जायगा?

राधे का मस्तक झुक गया, नेत्रों के आगे एक भयंकर भविष्य नाचने लगा; हृदय उद्विग्न हो उठा। रहमत की बातें उसको सार्थक मालूम होने लगीं। उसके पिछले दो वर्षों का अथक संघर्ष भीषण अन्धकार बनकर उसके सामने चलचित्र-सा घूम गया।

"अब सोचने से क्या बनना है राधे?" उसकी अवस्था का अनुमान लगाते हुए रहमत ने कहा, "चलो अब घर को चलें; उठ लो।"

रहमत ने पहले अपना बोझ उठाया और बाद में उसके ऊपर राधे का बोझ भी रख लिया। राधे ने ऐसा करने से उसे रोका; परन्तु उसने सुना ही नहीं।

रहमत आगे-आगे और राधे पीछे-पीछे चले जा रहे थे। राधे को जान पड़ता था मानो रहमत ने उसके दोनों भार हलके कर दिये हों, सिर का बोझ भी और साथ ही दिल का भी।

: २ :

कानपुर के रायबहादुर सेठ भानामल की हवेली जनरलगंज मुहल्ले में है। एक लम्बे-चौड़े घेरे के अन्दर चारों ओर दस-दस कोठरियाँ बनी हुई हैं; इस प्रकार कुल हवेली में चालीस कोठरियाँ हैं। बड़े बूढ़ों के मुख से सुना जाता है कि रायबहादुर के बुजुर्गों ने यह इमारत आने-जाने वाले यात्रियों के विश्राम के लिए बनवाई थी; पर जब से रायबहादुर ने यह जायदाद सँभाली है इसका नाम 'सराय' से बदलकर 'हवेली' पड़ गया है और यात्रियों के बजाय इसमें रायबहादुर की

मिल में काम करने वाले मज़दूर रहने लगे हैं, जिनसे प्रतिमास चार रुपये प्रति कोठरी किराया वसूल किया जाता है।

हर-एक कोठरी में दो खाटों की जगह आगे डेढ़-एक खाट का सहन है, जिसमें मज़दूरों की स्त्रियाँ खाना बनाती हैं। कोठरियों की दीवारें वैसे तो ईंटों की ही हैं, पर जहाँ-तहाँ ईंटें निकल गई हैं और किसी को भी वह जगह भरने की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई। यही कारण है कि कई दीवारों में आर-पार सूराख भी हो गए हैं। छतों की हालत तो इससे भी अधिक ख़राब है। पुताई हुए तो मानो युग-के-युग व्यतीत हो गए हैं। बरसात में जब कभी पानी बरसने लगता है तो सब किरायेदारों में बड़ी बेचैनी फैल जाती है। अनेक उपाय करने पर भी जब छत का पानी बाहर जाने के बजाय अन्दर की ही ओर आना शुरू हो जाता है तो बेचारे मज़दूर टपकती हुई छतों के नीचे घर के सारे बर्तन रखकर इस आफ़त में किसी तरह गुज़र करते हैं।

हवेली के खुले मैदान में एक पंचायती नल है; जो इन चालीस परिवारों की आवश्यकता पूरी करने के लिए बनाया गया है। परन्तु कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि बनाने के बाद शायद एक बार भी किसी ने इसकी ख़बर नहीं ली। जिससे एक ज़माने से इसकी हत्थी उखड़ी हुई है, और प्रायः टोंटी भी खराब रहती है। पानी निकालते समय 'धिड़चूँ' 'धिड़चूँ' की आवाज़ से हवेली के समीपवर्ती लोगों की शान्ति में पर्याप्त विघ्न पड़ता है। वहाँ की ज़मीन कच्ची होने के कारण बीस-बीस फुट तक चारों ओर दलदल के रूप में बदल गई है। इस दलदल में ही ईंट-पत्थर डालकर नल तक पहुँचने के लिए मार्ग बनाया गया है, फिर भी प्रायः एकाध व्यक्ति इस भयंकर दलदल में फिसलकर फँस ही जाता है।

कोठरियों के सामने कोई छज्जा या बरामदा न होने के कारण

किरायेदारों ने टाट तथा बोरियाँ लगाकर धूप से बचने के लिए थोड़ा-बहुत प्रबन्ध कर लिया है और सिर तक या घुटनों तक कच्ची दीवारें उठाकर भोजन बनाने की व्यवस्था कर ली है।

इन ग़रीब मज़दूरों की इस छोटी-सी बस्ती में जिधर देखो घृणोत्पादक दृश्य ही दिखाई देते हैं। बालक-वृद्ध, पुरुषों-स्त्रियों के तनों पर कपड़े के स्थान में फटे हुए चिथड़े रहते हैं। ज़मीन की सीलन और भयंकर कीचड़ ने इस बस्ती को नरक-तुल्य बना रखा है। भूख और लाचारी ने यहाँ के निवासियों को चलता-फिरता नर-कंकाल ही बना दिया है।

हमारे बड़े-बूढ़ों का यह कहना निरर्थक नहीं कि ख़राब जगह में भी कोई-न-कोई आकर्षक वस्तु अवश्य होती है। क्या सुन्दर कमल की उत्पत्ति कीचड़ से नहीं होती ? धन तथा ऐश्वर्य के मद से मतवाला मनुष्य निर्धन तथा निर्धनता को घृणित समझकर उससे दूर रहना चाहता है। परन्तु प्रकृति का हृदय बड़ा ही विशाल है, वह महान् आत्माओं को गरीबों के घर में ही जन्म देती है।

प्रकृति का यही अद्भुत चातुर्य हमें रायबहादुर सेठ भानामल की हवेली में भी दिखाई देता है। इसी हवेली में एक जगह ऐसी भी है जो बलात् हमारा ध्यान अपनी ओर खींच लेती है। यह उन चालीस कोठरियों में से ही एक कोठरी है।

इसका बाहरी दरवाजा कुछ ऊँचा और अच्छे ढंग का बना होने के कारण कुछ चित्ताकर्षक है। स्थान इसमें भी और कोठरियों के बाहरी हिस्से के बराबर ही है, परन्तु इसकी लिपी-पुती दीवार और छप्पर के ऊपर लहलहाती कामिनी की सुगन्धित बेल ने घर की सारी हीनता एवं निर्धनता को आवृत कर दिया है। छत के ऊपर स्वच्छन्दता से फैली हुई बेल के अतिरिक्त भी दरवाजे के बाहर इधर-उधर रखे हुए रंग-बिरंगे फूलों के गमले इस छोटे-से घर की सुन्दरता को बढ़ाने में

सहायक हुए हैं। कामिनी की बेल के साथ झूलती हुई मोहक अविकच कलियाँ और बीच-बीच में अपनी मादक सुगन्धि छितराते हुए विकासोन्मुख फूल अपनी भोली मुस्कान द्वारा चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे हैं कि हम सबको किसी के कोमल राग-रंजित हाथों के स्पर्श ने, किसी की प्रेम भरी चाह ने रूप और सुगन्धि से परिपूर्ण कर दिया है।

दरवाजे के बाहर लहलहाती हुई लताओं के बीच से बड़ी चतुरतापूर्वक बाँस की खपच्चियों का एक गोल रास्ता बना हुआ है, जिससे मकान के अन्दर प्रवेश करते हैं। इसमें होकर अन्दर जाते हुए यह भ्रम होने लगता है कि यह किसी गरीब का घर है या किसी 'वन-देवी' का निवास-स्थान ? और विशेषतः उस समय एक अनिर्वचनीय स्वर्गीय सुख का अनुभव होता है जब अन्दर जाते ही यौवन की मादक सुगन्धि से ओत-प्रोत एक सजीव फूल दृष्टिगोचर होता है। जिसके मंगल-प्रस्फुटन ने, जिसके सौन्दर्य की शीतल रश्मियों ने इस दीन-कुटीर की नीरवता को मुखरित करके आलोकमय बना दिया है।

यह देखकर सहसा ही प्रकृति के नियम के प्रति अन्तर में एक विद्रोह की लहर फैल जाती है। इस अनुपम सौन्दर्य से लदे पुष्प के साथ प्रकृति ने यह क्या अन्याय किया है कि इसे स्वप्न-देश की किसी अलौकिक पुष्प-वाटिका से तोड़कर इस दीनता एवं दारिद्र्य से परिपूर्ण कुटी में ला पटका है। क्या इसकी कोमल पंखड़ियों में गरीबी की तन झुलसाने वाली प्रताड़ना को सहन करने की सामर्थ्य होगी ? क्या यह कोमल लता आपत्तियों की भयंकर झंझा में हरी-भरी रह सकेगी ? इसकी जड़ें हिल न जायँगी ? क्या सौन्दर्य-लोलुप एवं ईर्ष्यालु व्यक्तियों की क्रूर निगाहों से बचे रहने की इसमें शक्ति है ?

इस सजीव पुष्प का नाम भी 'कामिनी' है। यह है उस अभागे राधे की जीवन-निधि, उसकी इकलौती पुत्री।

सहन के भीतरी भाग में एक चौकी पर बैठी हुई कामिनी तकिये

के गिलाफ पर कसीदा काढ़ रही है और बीच-बीच में प्यार तथा उत्साह की दृष्टि से अपनी कामिनी की मंजुल बेल की ओर देख रही है। मानो वह उसी के फूल तथा कलियों की कोमल प्रतिकृति अपनी सुई की नोक से कपड़े पर अंकित कर रही हो।

उसकी गोरी-गोरी कोमल उँगलियाँ, जो तेजी से सुई चला रही थीं, सहसा रुक गईं। एक अनजाने उत्साह से उसने सिर पीछे मोड़कर समीप ही रखी डलिया की ओर बड़े ध्यान से देखा, परन्तु जिस रंग के धागे की उसको आवश्यकता थी, वह उसमें नहीं था। वह समाप्त हो गया था।

इस समय कामिनी के चमकीले मस्तक पर पसीने की कुछ बूँदें हीरे की झिलमिलाती हुई कणियों की तरह चमक रही थीं। चमकीले बालों में से निकली हुई एक घुँघराली लट उसकी चिबुक तक आकर कभी-कभी अपने पतले किनारे पर एक चमकता हुआ मोती रखकर उस पर टपका देती थी।

कामिनी ने साड़ी के किनारे से पसीने की बूँदें पोंछीं और फिर हाथ ऊपर को उठाकर एक-दो अँगड़ाइयाँ लीं। फिर मृग-शावक की भाँति कुलाँच मारकर वह अपनी बेल की छत के नीचे आ खड़ी हुई।

कामिनी इस समय चौदहवें वर्ष को पार कर पन्द्रहवें में पहुँच चुकी है। पर उसके चेहरे की सरलता और शारीरिक अवयवों की निःसंकोच एवं स्वच्छन्द चेष्टाएं बता रही थीं कि आज तक उससे बाल-सुलभ चंचलता नहीं गई। उसके तन पर पहने हुए कपड़े चाहे सस्ते एवं सादे हों, पर उनके पहनने के कलात्मक ढंग, मनोयोग-पूर्वक रखी गई स्वच्छता जहाँ उसके सौन्दर्य को चार चाँद लगाते हैं वहाँ उसके गुणों का वर्णन भी रह-रहकर कर रहे हैं।

वह फिर आकर बैठ गई और तकिये के गिलाफ को दोनों घुटनों पर कसकर उसके फूलों तथा लताओं पर अपनी कोमल उँगली रखती

हुई, बड़ी-बड़ी गोल आँखों को उन पर गड़ाकर कहने लगी, "चारों कोनों की कढ़ाई पूरी हो गई और अब बच गया यह बीच का गुलदस्ता। हरी-सी पत्तियाँ और गुलाबी-से फूल बनाऊँगी। कलियों के लिए हल्का गुलाबी, पर वह तो ख़त्म ही हो गया। तरबूज़ी फबेगा नहीं, क़ासनी भी बुरा लगेगा........."

यह कहती हुई वह उठी और बेलों के उस छोटे-से दरवाज़े के बीच खड़ी होकर किसी की प्रतीक्षा करने लगी। इसी समय ऊपर की बेल से एक सफेद फूल टूटकर उसके मस्तक से टकराकर नीचे भूमि पर गिर पड़ा। कदाचित् गर्म हवा के झोंके ने इसको दुखी किया था और यह कामिनी के पास अपनी रक्षा की पुकार लेकर आया था।

कामिनी ने झटपट नीचे झुककर उसे ऊपर उठा लिया। फूल कुछ मुरझा-सा गया था। कामिनी उसे दक्षिण हाथ में लेकर वाम हाथ की उँगलियों से इस तरह सहलाने लगी जैसे कोई बहन अपने छोटे भाई को सान्त्वना दे रही हो। वह उससे कहने लगी, "मेरे शेर को क्या हुआ था?......देखूँ कोमल ओंठ क्यों सूखे जाते हैं, मेरे भाई के...आ तो मैं अपने भाई को ठंडा पानी पिलाऊँगी" और अन्दर जाकर घड़े में से पानी का गिलास भरा और उसके अन्दर फूल को रख दिया।

पानी मिलते ही फूल में कुछ देर के लिए जीवन फिर लौट आया। गिलास कामिनी के ही हाथों में था और कामिनी का वह फूल प्रसन्न होता हुआ मानो अपनी जीवन-रक्षिका के साथ हँस-हँसकर बातें कर रहा था। अन्दर जाकर उसने गिलास को ताक में रख दिया और फिर बाहर आकर सारे फूलों और कलियों को क्रमशः देखने लगी। शायद पानी की कमी या गर्म-गर्म लू के प्रबल थपेड़ों के कारण वे सब फूल कुछ मलिन-से हो गए थे।

जैसे निकट-सम्बन्धी के बीमार हो जाने पर कोई डाक्टर की ओर

दौड़ता है वैसे ही कामिनी दौड़कर अन्दर से छोटी बाल्टी उठा लाई और नल की ओर चल दी।

भारी-भरकम फूलों को वह सींचने लगी। तेज धूप के कारण उसके उज्ज्वल भाल का रंग अरुणिम होता जा रहा था, जल्दी थक जाने के कारण उसका साँस फूल रहा था; जिससे सुन्दरता और भी बढ़ गई मालूम देती थी। थक जाने पर भी उसने पानी सींचना बन्द नहीं किया।

इस समय शायद सारे पड़ौसी उसकी मूर्खता पर हँस रहे होंगे; पर फिर भी वह अपने कार्य में तल्लीन थी।

एक बाल्टी, फिर दूसरी और तीसरी। कामिनी पसीने से नहा गई। साँस-से-साँस मिलना कठिन हो गया।

तीसरी बाल्टी अभी आधी ही भरी थी कि हवेली के मुख्य द्वार की ओर से किसी की आवाज़ आई, "कामो बेटी, इतनी धूप में? छोड़ दे। मैं ये ईंधन रखकर तेरे पौधों में पानी दे दूँगा।"

यह आवाज़ रहमत की थी, जो राधे से कोई दस कदम आगे था।

"कोई डर नहीं चाचा, मैं थकी नहीं!" कहकर कामिनी वैसे ही सींचने में लगी रही; पर उधर रहमत की चाल और भी तेज हो गई और अपनी कोठरी से कुछ इधर ही ईंधन पटककर वह कामिनी के पास जा पहुँचा तथा उसके हाथ से ज़बरदस्ती बाल्टी ले ली और कहा, "जा रामायण के साथ माथा-पच्ची कर। मरने की इच्छा है क्या तेरी? अपनी चाची को ही कह देती यदि तुझे इस तपती दोपहरी में ही पानी डालना था तो।"

प्रेमपूर्ण कृतज्ञता से लदी कामिनी अपने चाचा को कुछ कहने को ही थी कि बाहर से उसका पिता (राधे) आता हुआ दिखाई दिया। वह भागकर राधे की ओर बढ़ी और पहला यह प्रश्न किया, "बाबूजी, आप तो बाज़ार सौदा लेने गये थे···" और हैरान होकर जिज्ञासा-भरी

दृष्टि से वह अपने पिता के निराश चेहरे की ओर देखने लगी।

राधे चुप था। क्या वह कामिनी से कह देता कि दुकानदार ने, पिछले तीन महीने का हिसाब न चुकाया जाने के कारण, उसको और सामान देने से इन्कार कर दिया है? क्या वह यह भी बतला देता कि मिल-मालिक की ओर से पिछले तीन मास का वेतन मिलने के स्थान में उसे नौकरी से ही जवाब मिल गया है? क्या वह कामिनी को यह भी ध्यान दिला देता कि आज का रविवार उसके लिए छुट्टी का दिन नहीं; प्रत्युत सदैव के लिए छुट्टी का दिन है?

नहीं, वह कामिनी को ये सब बातें नहीं बता सकता था। वह चुपचाप कोठरी में जाकर बिना कुछ उत्तर दिये खाट पर पड़ गया।

राधे और रहमत की कोठरियाँ बराबर-बराबर ही थीं। दोनों घरों में केवल दो-दो प्राणी ही निवास करते हैं। एक में राधे और कामिनी, दूसरे में रहमत और उसकी गृहिणी अनवरी।

रहमत ने मेहनत और मज़दूरी में ही अपनी सारी आयु बिताई है। आठ-नौ साल से मिल में काम करता है। उसका वेतन भी और मज़दूरों के समान बहुत कम है। इसमें से चार रुपये किराये के चले जाते हैं; पर चूँकि अनवरी भी, पाँच-छः रुपये कमा लेती है, इसलिए दोनों का काम भली प्रकार चल जाता है। सन्तान का मुँह देखना चाहे उन्हें नसीब न हुआ हो, पर कामिनी को बड़ा वे प्यार करते हैं। इधर तीन महीने से वेतन न मिलने के कारण बेचारे मज़दूरों को जीवन-यापन करना कठिन हो रहा है; पर रहमत को उतना कष्ट प्रतीत नहीं होता।

राधे की अवस्था में रहमत से बहुत अन्तर है। वेतन उसका भी उतना ही है; पर वह बेचारा सदा ऋणी रहता है। इन दस-ग्यारह रुपयों में उसको हमेशा पेट पर पत्थर रखकर गुज़ारा करना पड़ता है।

अच्छे दिन भी देखे हैं। अच्छे सम्पन्न परिवार में उसका जन्म

हुआ है; कभी समय था कि राधे चार-पाँच अतिथियों को भोजन कराकर खाता था। पर समय को उसे ये दिन भी दिखाने थे कि एक पढ़ा-लिखा व्यक्ति पेट की अग्नि को बुझाने के लिए मज़दूरी करने को विवश हो गया।

वह अपने माता-पिता का इकलौता बेटा था, मैट्रिक तक की शिक्षा होने के साथ ही एक अच्छे भद्र परिवार में उसका विवाह हुआ था। विवाह के चार वर्ष उपरान्त उसकी धर्मपत्नी प्रसूति-पीड़ा के कारण उससे सदा के लिए बिछुड़ गई, और जाते हुए उसके पास अपनी अन्तिम निशानी छोड़ गई थी यह कामिनी, जिसको राधे ने दूध के स्थान में अपना रक्त देकर पाला है।

राधे का पिता एक उच्च कोटि का व्यापारी था, पर सट्टे के व्यापार ने थोड़े-से समय में ही उसका सर्वस्व हड़प लिया—सोने की लंका राख का ढेर हो गई। अन्ततोगत्वा एक बार घाटे का ऐसा असह्य धक्का लगा कि उसने इज़्ज़त बचाने के लिए प्राण समर्पित कर देना उचित समझ रेल के नीचे आकर अपनी जान गँवा दी।

परन्तु इज़्ज़त फिर भी ज्यों-की-त्यों सुरक्षित न रह सकी। उसके किये का फल सन्तान को भोगना पड़ा। घर-बार बेचकर भी जब राधे को उऋण होने का मार्ग न दिखाई दिया, तो वह अपनी एक-मात्र सवा साल की पुत्री को छाती से लगाकर रातों-रात अपनी जन्म-भूमि को छोड़ आया।

इसके बाद उसने कितनी आपत्तियों का सामना किया, भूखा-प्यासा वह कहाँ-कहाँ मारा-मारा फिरा और कैसे इस अभागी लड़की के साथ बेचैनी-भरे दिन और रात से बने लम्बे-लम्बे आठ साल बिताये, यह राधे का अन्तःकरण ही जानता है। नौकरी से निराश होकर कई बार वह कुली ढोने को भी तैयार हो गया, पर इस बीच में भी चार दिन काम और बीस दिन खाली। अन्त में उसको इस मिल में

नौकरी मिली, और वह भी रहमत की जी-तोड़ कोशिशों के बाद।

राधे को रायबहादुर की मिल में काम करते हुए पाँच वर्ष हो गए हैं। इस समय उसकी आयु ४५ वर्ष से अधिक नहीं, पर ग़रीबी, चिन्ता और दिल की एक असफल भावना ने उसके स्वास्थ्य पर इतना बुरा प्रभाव किया है कि वह ६० वर्ष का बूढ़ा दिखाई देने लगा है।

पहले कुछ दिन तो राधे ने सोच-विचार में ही बिताये, पर जब उसकी सहने-शक्ति का प्याला भरपूर हो गया तो उसने अपनी वाणी और लेखनी का आश्रय लिया। मज़दूरों की आहों तथा मालिकों के अत्याचारों का वर्णन करते हुए वह भारी पत्थरों को भी अपने मार्ग से हटा देता था। पर स्वार्थमय संसार उसके पवित्र भावों की अवहेलना ही करता गया।

बाद में उसकी निस्वार्थ और अटूट लगन ने रंग लाना प्रारम्भ किया। गत वर्ष जब काम करने के घण्टे बढ़ाने की घोषणा की गई तो राधे की बातों को लोग ज़रा ध्यान से सुनने लगे। प्रभाव होता-होता यहाँ तक पहुँच गया कि रायबहादुर के मज़दूरों ने राधे की माँगों से सहमति प्रकट की और मिल में हड़ताल हो गई।

सेठ साहब ने पहले तो बड़ा सख़्त कदम उठाया, पर बाद में किसी नीति-निपुण ने सम्मति दी कि अभी इसका समय नहीं; पकने पर ही काँटा निकालना उचित होगा। इससे पूर्व उसके खराब हो जाने की सम्भावना है। उन्होंने चुप्पी साध ली और काम का समय पहले ही तरीके से लिखना प्रारम्भ कर दिया।

सब-कुछ ठीक हो गया। राधे को अपनी इस पहली सफलता पर प्रसन्नता हुई। पर वह यह नहीं जानता था कि पूँजीपतियों का क्रोध साँप-जैसा होता है; जो आदमी एक बार उनकी आँखों में खटक जाय, उससे वे मरते दम तक भी निश्चिन्त नहीं होते।

राधे रायबहादुर के मार्ग का भयंकर रोड़ा था, जिसको मार्ग से

उखाड़ फेंकने के लिए उन्हें इस समय वायु-मण्डल उचित जान पड़ा। राधे के कुछ उग्र साथी, जो सदैव उसकी हाँ-में-हाँ मिलाने को तैयार रहते थे, सेठ साहब ने एक-एक करके अपनी ओर मिला लिये थे। इसलिए अब ख़तरे की कोई सम्भावना नहीं थी। राधे को मिल से अलग करने का यह स्वर्ण अवसर था। साथ ही रायबहादुर को एक और भी भ्रम था कि मज़दूरों को जो पिछले तीन मास से वेतन नहीं दिया गया था, इससे कदाचित् मज़दूर राधे का साथ देने के लिए तैयार न हो जायं ?

राधे को नौकरी से जवाब मिल गया। पर यह समस्या यहीं ही नहीं सुलझती थी। राधे समझता था कि यह तो मालिक के अत्याचार रूपी नाटक का पहला ही दृश्य है। उसे संदेह था कि इसके बाद और भी कइयों का नम्बर आयगा और यह पता नहीं कब तक जारी रहेगा।

राधे अपनी कोठरी में चुपचाप जाकर लेट गया। उसको एक बार फिर उन चीज़ों का ध्यान आया, जो प्रातःकाल बाज़ार जाते समय कामिनी ने लाने के लिए उसको लिखाई थीं। उस पर्चे को वह कामिनी से बड़ी चतुरतापूर्वक छिपाकर रखना चाहता था।

कामिनी के प्रश्नों से छुटकारा पाने के लिए वह आँख मींचकर पड़ रहा; मानो वह भारी नींद में हो। कामिनी ने पिता की नींद में खलल डालना उचित नहीं समझा और पानी का एक गिलास देकर पूर्व की भाँति कसीदा काढ़ने में लग गई।

उधर रहमत भी राधे की अवस्था से चिन्तित था। इसलिए उसने सोती हुई अनवरी को झटपट जगाया और थोड़ी देर बाद पानी-वानी पीकर राधे को सान्त्वना देने के लिए उसकी कोठरी में जा पहुँचा। परन्तु कामिनी के सामने वह इस प्रसंग को छेड़ना नहीं चाहता था।

शायद कामिनी को वहाँ से हटाने के विचार से रहमत उसको कहने

लगा, "बेटी, आज तू अपनी चाची के पास नहीं जायगी ?"

कामिनी बोली, "चाचा मैं गई थी, पर वह तो सो रही थी।"

"सो रही थी तो जगा लेती, जा वह तुझे बुला रही है।"

कामिनी वैसे ही अड्डे को हाथ में लिये ही अनवरी की तरफ चल दी।

उसके जाते ही राधे की खाट पर बैठता हुआ रहमत कहने लगा, "तू घबरा क्यों रहा है भैया ?"

ठण्डी साँस छोड़ता हुआ राधे बोला, "नहीं, घबराना किस बात से ? पर रहमत मुझे एक आन्तरिक दुःख अवश्य है।"

"क्या ?"

"कि तेरा-मेरा साथ नहीं रह सकता। कामो बेचारी तुम दोनों के बिना आधी हो जायगी। यहाँ तो अब मुझे कोई नहीं रहने देगा। तुम्हारे साथ बेचारी हिल-मिल गई थी..." कहते-कहते उसकी आँखें भर आईं।

सान्त्वनापूर्ण शब्दों में रहमत बोला, "कौन है हमें अलग करने वाला ? राधे, जहाँ तू रहेगा वहीं मैं भी रहूँगा। इकट्ठे ही जियेंगे, इकट्ठे ही मरेंगे।"

"नहीं रहमत, मैं यह कभी नहीं सहन कर सकता कि मेरे कारण तुझे भी किसी मुसीबत में फँसना पड़े।"

"तू आने भी दे जो कुछ करते हैं। एक बार नानी याद न दिला दी तो कहना..."

बात पूरी होने से पहले ही राधे ने कहा, "पहले रहमत और बात थी। पहले हम सबों का मेल था। पर अब जो उन्होंने 'तोड़ो और मारो' वाली नीति ग्रहण की है, इसके आगे हमारी कुछ न बन पड़ेगी। तुझे पता है, यहाँ बन-बन की लकड़ी इकट्ठी हुई है। जो आदमी तब बढ़-बढ़कर मरने को तैयार थे वे लगभग सारे ही इस

समय रायबहादुर के सहायक हैं। इस वक्त वे बड़ी वीरतापूर्वक हमारे सामने आ रहे हैं।"

रहमत को राधे की बातें सच प्रतीत होने लगीं। जो रहमत आज से कुछ दिन पूर्व राधे के कामों की नुकता-चीनी करते हुए नहीं थकता था, अब वही सोच रहा था कि किस ढंग से विरोधी शक्ति का मुकाबला किया जाय। वह कुछ देर शान्त बैठा रहा और फिर बोला, "अच्छा राधे, मैं अपढ़ आदमी हूँ, बहुत बातों को तो मैं समझता नहीं, पर ईश्वर साक्षी है कि जो तेरी नौकरी छूट गई तो रहमत भी फिर इस मिल में काम न करेगा।"

"पागल कहीं का" राधे ने कहा, "यह किसने कहा था तू मौत से मरे और मैं खुशी से। यह कभी हो सकता है क्या?"

"अच्छा, यदि नहीं हो सकता तो तू चिन्ता मत कर। भूखों भी मरना हुआ तो मिलकर ही सामना करेंगे। और यदि खायंगे तो भी इकट्ठे ही। ईश्वर न करे यदि चार दिन तुझे खाली रहना पड़ा तो क्या बात है। पन्द्रह मैं लाता हूँ और पाँच-छः अनवरी ले आती है। क्या इतने से हम चार प्राणियों का पेट नहीं भरेगा? जो रूखा-सूखा मिलेगा, ईश्वर का धन्यवाद करके खा लिया करेंगे। यों ही चिन्ता नहीं करनी चाहिए।" और उसने सीधे लेटे हुए राधे के गले में हाथ डालकर उसे उत्साहपूर्वक उठा लिया।

इस निर्धन, पर सहृदय मित्र की वाणी ने और उसके मधुर स्पर्श ने राधे के अन्धकारपूर्ण हृदय को एक बार प्रकाशमय कर दिया। वह इस समय सोच रहा था—निर्धन हूँ, अभागा हूँ, पर मित्र की सान्त्वना रूपी धन से तो मैं वंचित नहीं हूँ। जहाँ रहमत-जैसा मित्र है, जहाँ कामिनी-जैसी बेटी है, वहाँ सब-कुछ है। मुझे बिना खाये-पिये ही तृप्ति और बिना किसी साधन के राजाओं से बढ़कर सुख है। मैं अभागा नहीं सौभाग्यशाली हूँ, सचमुच मैं बड़ा ही सौभाग्यशाली हूँ।

उसके नेत्रों में डबडबाते हुए आँसू नीचे ढुलक पड़े और उसने रहमत के दोनों हाथ अपनी छाती से चिपटा लिये। उसकी वाणी मूक थी, पर हृदय में थी किसी मधुर संगीत की मर्म-स्पर्शी मादक झंकार।

थोड़ी देर दोनों चुपचाप रहे। दोनों की आँखों के सामने प्रसन्नता नाच रही थी। चिन्ता तथा दुःख उनसे कोसों दूर थे।

पर राधे इस आनन्द का बहुत दिनों तक उपभोग न कर सका। एक और चिन्ता ने आकर उसे दबा लिया—"रहमत, मुझे एक और बात की भी चिन्ता है।" वह बोला।

"किस बात की?" रहमत ने शान्तिपूर्वक प्रश्न किया।

राधे ने उदासीनता से उत्तर दिया, "मुझे केवल नौकरी से हटाकर ही रायबहादुर शान्त नहीं होगा।"

"क्यों?" रहमत ने उत्सुकता से पूछा।

"हो सकता है कि वह मेरे ऊपर कोई मुकदमा चलाकर मुझे जेल में ठूँस दे। क्योंकि उसे पूरा भरोसा है कि राधे फिर कोई-न-कोई उपद्रव अवश्य खड़ा करेगा।"

"और तुझे अब क्या करना है? जाने दे, इसकी चर्चा ही बन्द कर। जब लोग तेरा साथ नहीं देते तो तू क्यों ऐसे मार्ग पर चलता है कि जिससे आपत्तियों का सामना करना पड़े।"

"तो तेरा मतलब यह है कि मैं हाथ-पर-हाथ रखकर चुपचाप बैठा रहूँ।"

"तो और क्या?"

"रहमत, यदि यह मेरा व्यक्तिगत प्रश्न होता तो मैं तेरा कहा ही करता; पर जानता है कि मेरी इस चुप्पी का परिणाम क्या होगा?"

"क्या होगा?"

"मालिक का हौसला बढ़ जायगा और वह तुम सबसे गिन-गिन कर बदला चुका लेगा।"

"तो तू अब कोई गुल ज़रूर खिलाकर रहेगा।"

"रहमत, मैं सत्य को छिपाकर नहीं रख सकता और न झूठ तथा अत्याचार को ही प्रश्रय देना चाहता हूँ। मैं बहुत-कुछ कर सकता, यदि मेरे मार्ग में एक भारी रुकावट न होती।"

राधे की बातों ने धीरे-धीरे रहमत के हृदय पर काबू पाना प्रारम्भ कर दिया। वह बोला, "कैसी रुकावट ?"

राधे बोला, "रहमत, मुझे इस लड़की की चिन्ता कुछ नहीं करने देती। अब वह काफ़ी बड़ी हो गई है। इसका कुछ ठिकाना हो जाता तो मेरी सारी चिन्ताएं समाप्त हो जातीं।"

"भाई, तेरी यह बात तो ठीक है। पिता के घर तो बड़े-बड़े राजाओं तथा नवाबों की लड़कियों के लिए भी जगह नहीं। अब नहीं तो वर्ष-दो वर्ष बाद इसका इन्तज़ाम करना ही पड़ेगा। पर ईश्वर सबका कार्य कर देता है। उसके दरवाजे से निराश नहीं लौटा जाता। भला किसकी लड़की बिना विवाह के रही है ? अच्छी नहीं, मामूली ही सही, फेरों की रात बीत ही जाती है किसी-न-किसी प्रकार।"

"पर रहमत, मेरा तो ईश्वर के अतिरिक्त और कोई है ही नहीं, जिसके आगे जाकर झोली फैलाऊँ। परसों पड़ा सोचता था, और कुछ नहीं तो रायबहादुर के सामने हाथ-पैर जोड़ूँ। यदि कुछ सहायता करे तो जल्दी ही कोई अच्छा लड़का तलाश करके लड़की के हाथ पीले कर दूँ। पर यहाँ तो वह बात हुई कि तू फिरे नथ बनाने को, और मैं फिरूँ नाक काटने को।"

"चुप रह राधे ! वह तो किसी को जली हुई रोटी की पपड़ी भी नहीं दे सकता। नल ठीक कराने में क्या कोई पचास-साठ रुपये लगते हैं ? पचासों बार दरख्वास्त दी गई है, पर किसी के कान पर जूँ तक नहीं रेंगी। पर अच्छा, भगवान् जो कुछ करेगा अच्छा ही करेगा। तू कोई फिकर मत कर। कामो कोई अकेली तेरी ही लड़की थोड़े है।

और कुछ न बना तो अनवरी के गहने बेचकर ही उसके हाथ पीले कर छोड़ेंगे। पर जो तुझे सन्देह है कि रायबहादुर...''

बीच में ही राधे बोल उठा, "बस रहमत, मुझे अब किसी बात की चिन्ता नहीं।" और एक बार फिर उसके नेत्रों में कृतज्ञता के आँसू झलकने लगे।

इतने में ही कामिनी अन्दर आ गई। उसके हाथ में कुछ सिक्के थे। दोनों की बातचीत का सिलसिला बन्द हो गया।

राधे ने पूछा, "बेटी यह क्या लाई है?"

"रुपये बाबू जी।" कामिनी ने पाँच रुपये राधे की खाट पर रखते हुए कहा, "चाची ने दिये हैं, कहती थीं कि इस समय तुम काम चलाओ, जब मुझे ज़रूरत होगी, ले लूँगी।"

इसके जवाब में राधे कुछ न कह सका। थोड़ी देर बाद वह उन रुपयों को जेब में डालकर, सौदा लेने के लिए बाज़ार चला गया।

: ३ :

कानपुर के उच्चवर्गीय लोगों के निवास-स्थान सिविल लाइन्स में रायबहादुर सेठ भानामल की अपनी गगन-चुम्बी कोठी है। धन-दौलत की उनके यहाँ कमी नहीं। आमदनी बहुत होने के साथ-साथ खर्च का भी ठिकाना नहीं है। नौकर-चाकरों की भरमार और मोटर तथा बग्घियों की कतार-की-कतार उनके ऐश्वर्य की उपयुक्त द्योतक हैं। लोगों का कहना है कि वाजिदअली शाह ने मरकर सेठ भानामल के रूप में पुनर्जन्म धारण किया है।

सेठ जी की आयु चाहे दिन-प्रतिदिन वृद्धावस्था की ओर तीव्रता से अग्रसर हो रही हो और स्वास्थ्य भी बिगड़ता जा रहा हो पर उन्हें सदैव युवा बने रहने की ही धुन सवार रहती है। दुनिया के किसी भी कोने में पुरुष-शक्ति को सुरक्षित रखने की नई औषधि आविष्कृत हो

तो आविष्कारकों को सबसे पहला आर्डर इन्हीं सेठजी का मिलता है। कानपुर के क्लबों तथा होटलों में उनके मनोरंजन की कोई भी सामग्री शेष नहीं रही। इसलिए वे प्रायः बम्बई, कलकत्ता तथा लखनऊ आदि नगरों में ही जाते रहते हैं। अपनी युवावस्था में उन्होंने अनेक बार विदेश जा-जाकर अपने धन-कुवेर होने की वह धाक बिठाई है कि भारतीय राजा-महाराजाओं को भी नीचा देखना पड़ता है। अब भी वहाँ की चित्ताकर्षक युवतियों की दृग-भंगी उनके दिल में बेचैनी मचाए रहती है। परन्तु एक तो स्वास्थ्य आज्ञा नहीं देता, दूसरे व्यापार, वाणिज्य इतना बढ़ गया है कि उनके बाद उसे सँभाल सकने वाला उनको कोई नहीं दिखाई देता। उनका विचार था कि लड़का जवान हो गया है, कारोबार सँभाल लेगा और उनको मरने से पूर्व एक बार फिर विदेश की उन मनमोहिनी मूर्तियों के दर्शन प्राप्त हो सकेंगे; पर दुर्भाग्य, कि उनका पुत्र शेखर आज तक सेठजी की इन मनोभावनाओं का कोई आदर नहीं कर सका। सेठजी ने हजार सिर पटका, प्यार से, तिरस्कार से, सभी प्रकार का भय दिखाया, सम्पत्ति का अधिकार छीन लेने की धमकियाँ देकर भी थक गए, पर शेखर के हृदय पर इन सब बातों का किंचित् भी प्रभाव नहीं पड़ा।

सेठ जी के शरीर की लम्बाई-मुटाई लगभग बराबर ही है। धनी होने के जो-जो चिह्न होते हैं, वे सब उनमें वर्तमान हैं। अर्थात् न सँभल सकने वाला शरीर, फूला हुआ झुर्रीदार चेहरा, कड़कती आवाज़। और सिर की गंजी खोपड़ी, दाढ़ी, मूँछ, सफा कराकर आपने कर्ज़न के अनुगामी होने का परिचय दिया चेहरे का सारा मांस, विशेषतः ठोड़ी के नीचे इस प्रकार लटका हुआ है कि ठोड़ी का कुछ पता ही नहीं चलता। मशाल के समान चमकती हुई दोनों आँखों के बीच पड़ जाने वाली एक सलवट से यह प्रतीत होता है कि क्रोध की त्रिवेणी का यहीं संगम होता है। उनके मोटे और भद्दे ओठ सदैव ही खुले रहते हैं।

पचास वर्ष की आयु, कुछ बहुत अधिक नहीं होती और फिर सेठ जी एक सम्पन्न व्यक्ति थे उनके स्वभाव में क्रोध और जिद का ऐसा सम्मिश्रण है कि जिसके कारण वे इस आयु में भी रोगी तथा बुढ़ापे के शिकार होने से नहीं बच सके। एक बार जो उनके मुखारविन्द से निकल जाय; उसका उलटना असम्भव है। किसी बात का कोई भी अर्थ क्यों न हो, पर वे अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से उसे पाए बिना सच नहीं मानते। किसी नौकर-चाकर को यदि एक बार से अधिक आवाज देनी पड़े या दुबारा 'कॉल बेल' 'रिंग' करनी पड़े, तो उनका पारा एक-दम ऊपर चढ़ जाता है, इसी कारण उनके अन्तर में हर समय क्रोध की एक मूक ज्वाला धधकती ही रहती है। यही बात है जिससे उनका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरता जा रहा है। हँसकर बोलना तो दूर रहा वे किसी को हँसता हुआ देखना भी सहन नहीं कर सकते।

सायंकाल के पाँच बजे हैं। रायसाहब अपने शयनागार में बड़ी उद्विग्नतापूर्वक इधर-उधर घूम रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे किसी भयंकर चिन्ता में निमग्न हैं। आखिर वे कोच पर लेट गए और हाथ में सुलगते हुए सिगार की राख 'एश ट्रे' में झाड़कर 'कॉल बेल' का बटन दबाया।

तुरन्त वर्दी वाला चपरासी सलाम करके आ खड़ा हुआ। उसकी ओर ध्यान दिये बिना ही सेठ जी छत की ओर निगाह किये सिगार का धुआँ फूँकते रहे। फिर उसकी ओर घूमकर बोले, "मैनेजर को बुलाओ।" मैनेजर तुरन्त,आ उपस्थित हुए। उसके अभिवादन का उत्तर दिये बिना ही क्रोध और तिरस्कारपूर्ण स्वर से वे बोले, "चन्द्रमणि, तुम कितने लापरवाह हो; अभी तक तुम्हें अक्ल नहीं आई।"

भय से मैनेजर का गला सूख गया, जीभ तालू से जा लगी। वह घबरा गया और उसमें इतना भी साहस नहीं रहा कि अपना अपराध तो मालूम करे। वह "जनाब.........जनाब..........." केवल इतना ही

कह सका था कि दूसरी बार सेठ जी बिजली की तरह कड़के, "जनाब-वनाब कुछ नहीं। तुम बहुत सुस्त हो, तुमसे मैंने क्या कहा था?"

"क्या कहा था?" इसका अर्थ वह क्या जानता? उनकी तरफ से प्रतिदिन, प्रतिघड़ी, इतना अधिक कहा जाता है कि उसको कार्य रूप में परिणत करना तो दूर रहा, सब-कुछ याद रखना भी असम्भव है।

वह और भी घबरा गया। काँपता-काँपता बोला, "जनाब······मैं ······मैं······।"

"मैं, मैं, मैं, मैं, बस मैं, मैं के अतिरिक्त और कुछ नहीं।" मुँह बनाकर कहते-कहते सेठजी ने मेज़ पर जोर से घूँसा मारा। ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे वह घूँसा मैनेजर की नाक पर ही लगा हो। भय के साथ उसको क्रोध भी आया। मन में कहने लगा—"क्या करूँ मैं" पर उसकी कठिनाई तुरन्त हल हो गई, जब सेठ जी तीसरी बार गरजे, "मैंने तुमसे कहा था, देखकर बतलाओ कि गत वर्ष की आय से कई हज़ार का व्यय क्यों अधिक हुआ? किस खाते में एकदम इतनी धन-राशि कम हो गई? इसका इलाज क्यों नहीं सोचा जाता? इस तरह यदि प्रतिवर्ष घाटा होने लगा तो मैं तो बर्बाद हो जाऊँगा। कौन है जो प्रतिवर्ष इतनी हानि सहन करे? तुम सब नमकहराम हो; स्वार्थी हो परले सिरे के। यदि तुम्हारे बाप का पैसा लगे तो पता चले। इस तरह आँख मींचकर काम करते हो कि जैसे इस फ़ार्म से तुम्हारा कोई मतलब ही नहीं?"

सेठजी सीमा-हीन नदी की भाँति बराबर बहते रहे। मैनेजर से इस घाटे का कारण छिपा हुआ नहीं था। वह जानता था कि सेठ जी के प्राइवेट खर्चों पर किस तरह नोटों के बंडल-के-बंडल फूँक दिये जाते हैं; पर 'म्याऊँ का ठौर कौन पकड़े?' उसकी क्या मजाल थी जो ऐसा एक अक्षर भी जबान पर लाता। पर आख़िर कुछ तो उत्तर देना ही था, बोला, "जनाब, मिल के घाटे का कारण यह है कि गत वर्ष

खरीदते समय कपास की दर बहुत बढ़ी हुई थी, पर इधर लंकाशायर के कपड़े की कस्टम-ड्यूटी घट जाने से, और जापानी माल की बाजार में भरमार हो जाने से देशी मिलों के कपड़े का भाव बिलकुल गिर गया और........"

बीच में ही सिगार का धुआँ सेठजी अपने दोनों ओठों में से धीरे-धीरे निकालते हुए बोले, "गिर गया, क्यों गिर गया? इसका कोई कारण भी है?"

अब इतनी देर बाद बेचारे मैनेजर को मालूम हुआ कि उसकी सारी बातों को सेठ जी ने ध्यान से नहीं सुना, उनका ध्यान किसी और जगह ही था, उसका अन्तिम शब्द ही वे केवल सुन पाए थे 'गिर गया।'

"क्या फिर बात प्रारम्भ से ही की जाय?" मैनेजर इसी चिन्ता में था कि सेठ जी चिल्लाए, "मान लिया कि मिल की आय में घाटा ही रहा, पर मकानों के किराये को क्या हो गया?" मैनेजर ने साहसपूर्वक कहा, "किराया तो ठीक ही वसूल हुआ है और मिल में भी घाटा नाम-मात्र का ही है, पर......"

"पर का क्या मतलब? मिल में भी घाटा नहीं, मकानों का भी किराया ठीक आया, फिर घाटा होने का क्या कारण?"

"जनाब के प्राइवेट खर्चे........"

"क्या प्राइवेट खर्चे?" सेठ जी ने अपनी खोपड़ी खुजाते हुए टालने के लहजे में कहा, "बेवकूफ़, मैं तुमसे अपने प्राइवेट खर्चे नहीं पूछ रहा। मुझे यह बताओ कि इस वर्ष कुल कितनी आय हुई है? विशेषतः मकानों का किराया कितना वसूल हुआ?"

"जनाब; किराया वसूल करने वाले मुन्शी से सारा ब्यौरा लाकर उपस्थित करता हूँ।"

"अच्छा, जल्दी लाओ।"

मैनेजर अभिवादन करके मुन्शी की ओर दौड़ा। कोठी के पिछले भाग में मुन्शी का ऑफिस था। मैनेजर एक ही साँस में वहाँ जा पहुँचा। वहीं मुन्शी अवधबिहारी भूमि पर दरी बिछाए बैठे थे, उसके आगे एक सन्दूकनुमा डेस्क पड़ा था, जिसके ऊपर कुछ पुरानी बहियाँ और काग़जात रखे थे, और वह उनमें सिर झुकाए किसी मीज़ान की ग़लती को ठीक करने के लिए दिमाग़-पच्ची कर रहे थे।

मुन्शी अवधबिहारी सेठ जी के बहुत पुराने—उनके पिता के समय के—मुन्शी हैं। उनकी आयु इस समय लगभग ७५ वर्ष की है। उनका मुँह दाँतों से खाली है, इसलिए गालों में गड्ढे भी पड़ गए हैं। अभी आँखों पर एक बहुत पुराने ढंग की ऐनक लगी हुई है, जिसकी एक कमानी तो ठीक है, पर दूसरी के स्थान में एक धागे से ही काम लिया गया है। डोरे का एक सिरा शीशे से बँधा हुआ है और दूसरा कान में लिपटा हुआ है। मुन्शी जी का ऐनक लगाने का ढंग भी कुछ निराला ही है। नाक के ऊपर लगाने के बजाय नाक के अगले भाग पर ऐनक को वे टिकाए रहते हैं। जब पसीना आ जाने के कारण उनकी ऐनक रपटती-रपटती हुई मूछों पर आ जाती है तो वे उसे धीरे से उठाकर फिर यथा-स्थान रख देते हैं। उनकी पुरानी फैल्ट कैप के नीचे सफेद बालों का गुच्छा-सा लटका हुआ है, जिससे यह प्रतीत होता है कि वे कभी कटाए नहीं जाते। उनकी कमीज़ भी पुराने ढंग की है। मोटी मारकीन का पायजामा है; जिससे घुटने बहुत बैठे रहने के कारण बाहर को निकले रहते हैं। उसके पाँयचे इतने ऊपर चढ़ गए हैं कि आधी पिंडलियाँ यों ही दिखाई देती हैं।

दूर से किसी के आने का शब्द सुनकर मुन्शी जी ने सिर जरा ऊँचा करके आँखों पर लगी ऐनक को ऊपर उठाकर उसके नीचे से देखा, क्योंकि शीशे में से दूर की चीज़ साफ नहीं दिखाई देती थी।

मैनेजर साहब को आता हुआ देखकर तुरन्त दोनों घुटनों पर हाथ रखकर मुन्शी जी खड़े हो गए और बनावटी हँसी दिखाने के लिए ज़रा खीसें निपोरकर हाथ जोड़कर बोले, "आइये शर्मा जी, तशरीफ लाइए।"

मैनेजर साहब ने संक्षेप में अपने आने का तात्पर्य समझाया। सुनते ही मुन्शी जी धीरे-धीरे हाथ मारते हुए बहियों के ऊपर-नीचे अन्दर-बाहर रखे कागज़-पत्रों की देख-भाल करने लगे और काम के कागज तथा एक बही बगल में दबाकर मैनेजर साहब के साथ चल पड़े।

सेठ जी के सामने उपस्थित होकर मुन्शी जी ने कुल ब्यौरा सुनाना प्रारम्भ किया। जब सेठ जी ने सुना कि हवेली का किराया आधे से भी कम वसूल होता है, तो क्रोध से उनके ओंठ काँपने लगे और वे कड़क-कर बोले, "यह वसूल न होने का कारण ?"

मुन्शी ने कहा, "सरकार, उसके सभी किरायेदार मिल के मजदूर ही तो हैं, और······"

"मज़दूर रहते हों चाहे चोर रहते हों, मैं तो यह पूछता हूँ कि किराया वसूल क्यों नहीं होता ?"

"सरकार, जब भी माँगने जाते हैं, तभी कह देते हैं—'हमें तीन महीने से वेतन नहीं मिला, किराया कहाँ से दें' ?"

मुँह में उँगली दबाकर कुछ सोचने के बाद सेठजी बोले, "कैसी बेवकूफी है। वेतन नहीं मिला। कौन कहता है नहीं मिला ?" (मैनेजर से) "क्यों भई चन्द्रमणि, वेतन क्यों नहीं मिला ?"

"जनाब, नियमित रूप चाहे नहीं दिया गया हो, परन्तु आव-श्यकता के अनुसार कई को वक्त-बे-वक्त पेशगी खाते से रुपये दिये जाते रहे हैं। वैसे कोई दो-ढाई महीने का चाहे बाकी रहता हो। पर जनाब, वह सारी शरारत उस बूढ़े शैतान राधे की है जो हर वक्त सबको किराया देने से रोकता है।"

सेठ जी दाँत पीसते हुए अपने-आप बोले, "मैं समझ लूँगा उस बदमाश को। दो वर्ष से वह मेरे खून का प्यासा बना हुआ है। उसके घमंड को अब की बार अच्छी तरह चूर करूँगा। उसका ख़याल होगा कि अब वह मुझसे पार पा लेगा।" फिर वे मैनेजर से बोले, "अच्छा उसे नौकरी से अलग कर दिया गया?"

"हाँ जनाब।"

"और दूसरों को?"

"उनके विषय में आपने कहा था कि अभी जल्दी न की जाय।"

"ठीक है" (मुन्शी से) "अच्छा मुन्शी जी, तुम जाओ और हवेली का किराया जल्दी-से-जल्दी वसूल करो। जो इन्कार करे, उसकी मुझे खबर दो।"

"बहुत अच्छा सरकार" कहकर सिर झुकाए मुन्शी जी चलते बने।

"अच्छा" सेठ जी आराम कुर्सी की पीठ पर लेटकर दोनों हाथों को पीछे फैलाकर मैनेजर से कहने लगे, "तुम्हारा क्या विचार है, राधे को हटाने से गड़बड़ी तो नहीं मचेगी?"

"नहीं जनाब, कोई भय नहीं—उसके सारे पुराने साथी हमारे सहायक हैं। पर यदि वेतन का काम समाप्त हो जाता, तो ठीक था। क्योंकि इससे उनको आंदोलन करने का अवसर मिल सकता है।"

"तो तुम्हारा क्या विचार है, मैं उनके आगे झुक जाऊँ?"

"झुकना तो जनाब बिलकुल नहीं चाहिए।"

"इस समय वेतन बिलकुल नहीं दिया जा सकता, साथ ही रुपया भी तो हाथ में नहीं है।"

"ठीक है जनाब, इस समय वेतन देना बड़ा हानिकारक होगा।"

सेठ जी फिर काफी देर तक किसी गम्भीर चिन्ता में डूब गए, अन्त में किसी निश्चय पर पहुँचकर बोले, "मेरा ख़याल है कि राधे कोई-न-कोई उपद्रव अवश्य खड़ा करेगा?"

"जनाब, मुझे भी यही सन्देह है ?"

"उसको तुरन्त हवेली से निकाल देना चाहिए।"

"पर जनाब, हवेली के सारे मजदूर उसकी इज्ज़त करते हैं, राधे को निकालने से उनमें कोई-न-कोई गड़बड़ी अवश्य मच जायगी।"

"क्या गड़बड़ी मच जायगी ? वह कोई परमात्मा है ? मैं एक-एक का नाक में दम कर दूँगा उनकी हिम्मत क्या है, वे—हैं क्या चीज़ ?" कहते-कहते सेठ जी हाँफने लगे, माथे पर सलवटें पड़ गईं, साँस फूल गया और कुर्सी से उठकर बेचैनी से कमरे में इधर-उधर टहलने लगे।

मैनेजर बोला, "जनाब, हमें उनकी कोई परवाह नहीं करनी चाहिए। राधे को हवेली से निकालना ही पड़ेगा।"

"आज ही उसको निकाल दिया जाय। हाँ, आज ही, मैं आप ही समझ लूँगा। बस मेरी आज्ञा का पालन शीघ्र होना चाहिए, जाओ।"

"पर जनाब, यदि दूसरे किरायेदारों ने……"

"यदि वे जरा भी तीन-पाँच करें तो सबको निकाल दो। हवेली बिलकुल खाली करा लो।" (फिर कुछ सोचकर) "पर यों करना, हवेली खाली कराने से पूर्व उन चालीसों को भी नौकरी से अलग कर दो, जिससे वे काम पर जाकर दूसरों को न भड़का सकें।"

"मेरी भी यही राय थी।"

"तो बस ठीक है। हवेली वालों के अतिरिक्त कोई भी राधे की सहायता नहीं करेगा; बाकी सब हमारा साथ देंगे।"

"ठीक है जनाब, बाकी सब हमारे साथ हैं।"

"तो जाओ इसी तरह करो।"

"तो क्या उनको १५ दिन का नोटिस दिया जाय ?"

"नहीं-नहीं, एकदम अलग, राधे की ही तरह।"

"पर जनाब, यदि उन्होंने वेतन की माँग की, तो ?"

"वेतन ?" उँगलियाँ मरोड़ते हुए सेठजी ने कहा, "मैं उन नमक-हरामों को फिलहाल एक कौड़ी भी नहीं दूँगा। जो वे जोर लगा सकते हों, लगा लें। देख लूँगा कि वे सब कितने पानी में हैं; और साथ ही उनके नेता राधे की हिम्मत भी देख लूँगा।"

"जनाब, बिलकुल ठीक फरमाते हैं। वेतन माँगने का उनका अधिकार ही कोई नहीं। एक कौड़ी भी नहीं देनी चाहिए उनको।"

"एक बात और भी है, मैं समझता हूँ, राधे बाहर भी चैन से नहीं बैठेगा। मैं सोच रहा हूँ, यह काँटा हमेशा के लिए निकालकर फेंक दिया जाय।"

"ठीक है जनाब, इसे हमेशा के लिए ही निकालना होगा।" कहकर मैनेजर साहब चले गए।"

सेठजी उसी भाँति धीरे-धीरे कदम रखते हुए कमरे में टहलने लगे। इस समय उनकी रग-रग से क्रोध की चिनगारियाँ निकल रही थीं।

: ४ :

मिल का भोंपू बजा। मज़दूरों की टोलियों का क्रमशः काम पर आना प्रारम्भ हो गया।

दूर से ही बड़े फाटक के नोटिस-बोर्ड पर एक सफेद कागज़ सबको चमकता हुआ दिखाई दिया। सबके दिल धड़कने लगे। पहले से ही उनके दिल में किसी भावी आपत्ति की आशंका थी। कई दिनों से मज़दूरों की कटौती की अफवाह उड़ रही थी। प्रत्येक को अपनी आजीविका छिन जाने का भय सता रहा था। इसके अतिरिक्त राधे के काम से अलग कर दिये जाने के समाचार ने उन्हें आतंकित कर दिया था।

फाटक पर मज़दूरों की भीड़ इकट्ठी हो गई; अलग किये जाने वाले मज़दूरों की लम्बी सूची पर सबकी सन्देह-भरी नज़रें लगी हुई थीं। बेचारे मज़दूर इधर-उधर किसी पढ़े हुए साथी की खोज में एड़ियाँ

उठा-उठाकर देख रहे थे। अन्त में एक मज़दूर ने वह नोटिस जोर-जोर से पढ़कर सुनाना प्रारम्भ किया। पढ़ने वाले का नाम इसी सूची में सबसे ऊपर था।

वह था राधे।

राधे सहित कुल चालीस व्यक्तियों की सूची थी। ये थे सेठजी की हवेली के किरायेदार।

राधे को तो अपने विषय में पहले ही आज्ञा प्राप्त हो चुकी थी, इसीलिए उसके हृदय पर इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा, पर दूसरे कई, जिनको नौकरी छूटने का स्वप्न में भी ध्यान नहीं था, अपना-अपना नाम सुनते ही पीले पड़ गए। उनकी आँखों के आगे अंधेरा छा गया। पैरों के नीचे से ज़मीन खिसकती-सी प्रतीत होने लगी।

मिल में कुल पाँच-छः हजार मज़दूर काम करते थे और इस समय सभी बड़े फाटक के सामने खड़े थे। सबके हृदय में निस्तब्धता छाई हुई थी।

मिल का दरवाज़ा खुला और सब धीरे-धीरे एक दूसरे की आँख बचाते हुए अन्दर जाने लगे।

धीरे-धीरे सारी भीड़ अन्दर हो गई और बाहर केवल वे ही अभागे चालीस मज़दूर रह गए।

मिल की चिमनी से धुआँ निकलना शुरू हो गया और इसके अनन्तर मशीनों की 'खट-खट' की आवाज़ सुनाई देने लगी। पर ये चालीस व्यक्ति ज्यों-के-त्यों खड़े हुए निराशा-भरी दृष्टि से एक दूसरे की ओर ताक रहे थे।

आख़िर राधे ने ही इस नीरवता को भंग करते हुए उन्हें सम्बोधित करते हुए कहा, "भाइयो, क्यों खड़े हो, चलो चलें, यहाँ अब हमारा क्या काम?"

पर खड़े रहने का अर्थ उनमें किसी से भी छिपा नहीं था। सबके

दिल एक स्वर से धड़क रहे थे। उनसे एक-मात्र यही ध्वनि सुनाई दे रही थी... "और हमारा तीन मास का वेतन ?" यद्यपि नौकरी छूट जाने की चिन्ता को यह वेतन जरा भी कम नहीं कर सकता था तथापि 'डूबते हुए को तिनके का सहारा' ही बहुत होता है।

राधे की उक्ति के साथ-साथ कइयों के दिल में ये भाव उठा।

राधे ही उन सबमें पढ़ा-लिखा और विचारशील मज़दूर था। साथ ही पहले से ही वह समय-कुसमय अपने साथियों के लिए सब-कुछ करता था, इसलिए सबकी निगाहें उस पर ही लगी हुई थीं।

उत्तर में उसने कहा, "चलो, फिर मैनेजर के पास ही चलें। वेतन लें—तीन का नहीं, साढ़े तीन महीने का। क्योंकि जब हमें १५ दिन का नोटिस दिये बिना एकदम हटाया गया है तो इन १५ दिनों का वेतन पाने के भी हम अधिकारी हैं।"

"चलो" सबने नीरवता को भंग करते हुए कहा, क्योंकि उस समय उनके सामने वेतन का प्रश्न नहीं था, प्रत्युत अपने अन्धकारपूर्ण भविष्य की चिन्ता भी थी। फिर सब क्रमशः राधे के पीछे-पीछे अन्दर चले गए।

जब वे काम करते हुए मज़दूरों के आगे से जा रहे थे, तो सबका ध्यान एक बार काम से हटकर उनकी ओर आकर्षित हो गया। उनके निराशाक्रान्त मुँह और धीमी चाल को देखकर कितनों ने ही आह भरी, और कइयों की आँखें डबडबा आईं।

वे सब अब मैनेजर के कमरे के सामने थे।

हाथ से कलम रखकर मैनेजर साहब खूनी आँखों से राधे की ओर देखते हुए बोले, "मालूम होता है कि अभी तक तेरा दिमाग़ ठीक नहीं हुआ। प्रत्येक बात पूछने का, मालिकों को तंग करने का तूने ठेका ही ले लिया है क्या ? क्यों लाया है इस सेना को ?"

"ग़रीब परवर" उसने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया, "हम सब ग़रीब

और बाल-बच्चेदार हैं। हम सब निर्दोष ही मारे जा रहे हैं। हमारा...''

बीच में ही मैनेजर भड़ककर बोला, "ग़रीब नहीं, तुम सब कमीने हो। तुम अन्न नहीं पचा सकते।" (राधे की ओर देखकर) "यह सब तेरी ही करतूतों का फल है। रोज़ कोई-न-कोई झगड़ा खड़ा कर देता है। इन सबसे कह कि तेरी जान को रोयें बैठकर।"

मैनेजर की ये विषभरी एवं कठोर बातें सुनकर राधे का दिल तड़प उठा। उसके नीचे के ओठ क्रोध से काँपने लगे। उसके साथियों का भी यही हाल था।

जब राधे ने देखा कि इन बादलों से बरसने की आशा करना कोरी विडम्बना है तथा साथ ही उसे अपने साथियों के भड़क पड़ने की सम्भावना दिखाई दी तो वह फिर बोला, "जनाब, जो कुछ आपने किया है, इसमें हमारा कोई वश नहीं; पर हमारा वेतन तो मिल ही जाना चाहिए। जिससे बेकारी के दिनों में हम अपने बाल-बच्चों का पेट भर सकें।"

"वेतन मिल जायगा। सेठ जी की स्वीकृति आने पर तुमको बुला लिया जायगा। समझे, जाओ।" कहकर वे फिर अपने कागज़ों में उलझ गए।

सबके दिलों पर भयंकर वज्रपात हो गया। चले जाने की आज्ञा हो जाने पर भी उनमें से किसी के भी पैर न उठ सके। मैनेजर भी लिखता-लिखता टेढ़ी नज़रों से यह देख लेता था कि अभी बला टली है कि नहीं।

पर वे ज्यों-के-त्यों खड़े थे।

राधे के लिए तो अब और बात कहने-सुनने के लिए बाकी नहीं बची थी; पर पीछे खड़े हुए आदमियों में से एक व्यक्ति धीमे कदमों से आगे बढ़ा और शुष्क कंठ से बोला, "जनाब"......

बीच में ही मैनेजर अपने कागजों में उलझे हुए उस ओर बिना देखे बोले, "तंग न करो। मेरे पास बेकार की बात सुनने के लिए समय नहीं है। बेइज़्ज़ती कराकर जाने से क्या लाभ ?"

"बेइज़्ज़ती" का शब्द सबकी छाती में गोली की तरह लगा। सुनते ही राधे ने सबको आँख से चलने का संकेत किया और धीरे-धीरे वे सब मिल के बाहर हो गए।

◆

दूसरा भाग
षड्यन्त्र
: १ :

नित्य-नियमानुसार भोजनादि से निश्चिन्त होकर सेठजी ड्राइंग-रूम में गये। जल्दी-जल्दी कपड़े पहनकर कार में जा बैठे और 'भररर' करती हुई कार चल पड़ी।

इसके कोई आध घण्टे उपरान्त वे एक कोठी में विराजमान थे, जहाँ उनके प्राइवेट क्लर्क, मैनेजर तथा अन्य कर्मचारियों के अतिरिक्त मिल के कुछ मज़दूर भी बैठे थे।

वे आराम-कुर्सी पर पैर फैलाकर लेट गए। दाँये-बाँये उन कर्मचारियों और मज़दूरों का समूह किसी आदेश की प्रतीक्षा में था।

"हाँ भाई" मैनेजर की ओर मुँह घुमाकर सेठजी बोले, "क्या समाचार है? ज़रा शीघ्रता से समाप्त करो; मुझे ठीक दस बजे एक आवश्यक मीटिंग में जाना है।"

"जनाब, नोटिस के अनुसार उन चालीस व्यक्तियों को नौकरी से जवाब दे दिया गया है। अभी तक तो कोई उपद्रव नहीं किया, पर मेरा ख़याल है कि राधे अवश्य कुछ झगड़ा खड़ा करेगा। पर, अब उसे मुँह की खानी पड़ेगी। वह उन चालीस मज़दूरों को साथ लेकर उसी समय मेरे पास आया था।"

"क्या कहता था?" सेठजी ने पूछा।

मैनेजर साहब ने नमक-मिर्च लगाकर, खूब बढ़ा-चढ़ाकर सब बातें सेठजी को बतलाईं।

"अच्छा, उसका इतना साहस । यदि इस बार उसने कुछ किया तो मैं उसको और उसके साथियों को वह मज़ा चखाऊँगा कि वह मरते दम तक याद करेगा ।"

"और साथ ही सेठजी, मटरू उनके विषय में कुछ और ख़बर लाया है" कहकर मैनेजर साहब ने एक मज़दूर की ओर देखा ।

मटरू भी मिल में काम करता है, पर सेठजी ने इसको एक और काम भी सौंपा है—गुप्तचर का ।

वह अपनी जगह से उठकर आगे आया और हाथ जोड़कर खड़ा हो गया । सेठजी ज़रा मुसकराकर उससे कहने लगे, "मटरू, तू बड़ा बहादुर आदमी है । मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ । सुना, क्या ख़बर लाया है ?"

"हुजूर, कल जिस समय से उन्हें मिल से जवाब मिल गया है, राधे चुप नहीं बैठा, सारे आदमियों को बहकाता फिरता है और शाम को उसने एक सभा बुलाई है । वहाँ पर सबको इकट्ठा करके कुछ सिखाय-पढ़ायगा ।"

सुनकर सेठजी कुछ चिन्तातुर हो गए, भावी आपत्ति की आशङ्का से वे उद्विग्न होकर बोले, "कोई डर नहीं, कर लेने दो, जो-कुछ वह करता है''' अच्छा मटरू, तू भी शाम को उनकी सभा में चला जाना और देखना कि कौन-कौन वहाँ जाता है, और कौन-कौन क्या बोलता है ।"

"बहुत अच्छा सरकार" कहकर वह यथा-स्थान जा बैठा ।

"अच्छा सुनो भई" गोल दायरे में बैठे मज़दूरों को सम्बोधित करके सेठ जी बोले, "ईदू, करमा, रतन, अल्लाबख्श और रामजोर वग़ैरा सब मेरी बात ध्यान से सुनो—तुम्हारे जिम्मे यह काम है कि उनकी किसी भी कार्यवाही को सफल न होने दो । यदि वे हड़ताल या जलूस के विषय में कोई बात करें तो तुम लोग उसका विरोध करना । डरना बिलकुल नहीं । यदि ज़रूरत हो तो दो-दो हाथ करने से भी न चूकना ।

तुम्हारा कोई कुछ नहीं कर सकता। पुलिस का भी इन्तज़ाम रहेगा, तुम्हें बिलकुल डरने की ज़रूरत नहीं।"

"बहुत अच्छा हुजूर" सबने एक ही स्वर में कहा।

"अच्छा, मिस्टर शर्मा, इनको ···" और इससे आगे सेठजी की बात समझकर ही चन्द्रमणि ने कहा, "बहुत अच्छा जनाब।"

इसके बाद सेठजी तो कार पर सवार होकर अपनी 'आवश्यक मीटिंग' में चले गए और उधर मैनेजर साहब ने मालिक की आज्ञा का पालन करते हुए सबकी जेबें भारी करके उन्हें चलता किया। जब वे जाने लगे तो मैनेजर ने ईदू पठान को अलग बुलाकर उसके कान में कुछ ख़ास बातें भी कहीं; जिनको दूसरे न सुन सके।

: २ :

शाम के ६ बजे तक हवेली के मैदान में काफी चहल-पहल हो गई, पर इतनी नहीं जितनी कि आशा थी। मिल के मज़दूरों के अतिरिक्त कुछ जनता बाहर की भी थी। अलग-अलग टोलियाँ बनाये लोग तरह-तरह की बातें कर रहे थे। कहीं-कहीं बातें बहुत गर्म हो जाने पर गाली-गलौच तक की भी नौबत पहुँच जाती थी।

अन्त में सात बजे के लगभग सभा की कार्यवाही प्रारम्भ हुई।

सबसे पूर्व बाहर के दो सज्जनों ने, जो मज़दूर-आन्दोलन से सहानुभूति रखते थे, अपने-अपने जोशीले भाषण दिये। उसके बाद राधे मंच पर आया। सबका ध्यान उसी की ओर लगा था। उसने कहना प्रारम्भ किया—

"साथियो, वर्तमान घटना को आप लोग साधारण समझ रहे होंगे; और ४० व्यक्तियों की आजीविका छिन जाना कोई इतना महत्त्वपूर्ण प्रश्न है भी नहीं। पर आप जानते हैं कि इसकी तह में कितना भयंकर ज्वालामुखी-विस्फोट छिपा हुआ है, जिसके केवल फटने-मात्र की ही देर है और फिर—

'डूबेगी किश्ती तो डूबेंगे सारे ।
न तुम ही बचोगे न साथी तुम्हारे ।'

वाली दशा हो जायगी। हमें अपनी नौकरी छिन जाने की कोई चिन्ता नहीं। खून-पसीना एक करके रोटी-कपड़े लायक कमाते थे, सो यहाँ नहीं तो और किसी जगह कमा लेंगे। पर याद रखो, हमारे मालिकों की ओर से यह एक भयानक षड्यन्त्र रचा जा रहा है। गत वर्ष के आन्दोलन ने मालिकों का नाक में दम कर दिया था। उससे मुँह की खाकर उन्होंने अपनी भूल स्वीकार की थी। वास्तव में वह उन्होंने समय को टालने के विचार से ही किया था। वे आप लोगों को अलग-अलग करके, आपकी शक्ति क्षीण करके तब आपको कुचलना चाहते थे। मैं देखता हूँ कि वह समय फिर आ गया है और उन्होंने अपना कार्य बड़ी सावधानी से करना प्रारम्भ कर दिया है।

आज उनको यह साहस कैसे हुआ कि तीन महीने का वेतन रोककर ४० आदमियों को दूध की मक्खी की भाँति निकालकर फेंके दे रहे हैं। इसकी वजह यह है कि हमारे बीच के अधिकांश व्यक्ति उन्होंने अपनी ओर मिला लिये हैं। उन्हें कुरान तथा वेद की कसम खिलाई है कि हमारे किसी भी आन्दोलन को आगे न बढ़ने दें। यदि सेठ जी हमारा भेद जानने के लिए यह काली करतूत कर सकते हैं तो हम भी ऐसे बच्चे नहीं हैं। हमारे गुप्तचर ने भी उनकी जरा-जरा-सी बातें हमें आकर बता दी हैं। जिन व्यक्तियों के जिम्मे उन्होंने हमें बदनाम करने, मारने-पीटने और हमारी आवाज़ को कुचलने का कार्य सौंपा है, उन सबकी सूची इस समय भी हमारे पास मौजूद है पर मैं अभी बतलाना नहीं चाहता......"

"जरूर बताओ-जरूर बताओ" सभा के प्रत्येक कोने से यह आवाज़ें आनी शुरू हो गईं।

राधे ने फिर बोलना प्रारम्भ किया, "मित्रो, बताने की आवश्यकता

ही नहीं पड़ेगी, जब कि अभी इसी सभा में आप अपनी आँखों से उन सबके कारनामे देख लेंगे।"

सबके कान खड़े हो गए।

राधे ने अपना भाषण जारी रखा, "ये पूँजीपति किस काम का बदला ले रहे हैं—जानते हो? कान खोलकर जरा अपने उस अपराध को सुनो, जिसके कारण आज हमारे तथा हमारे बच्चों के मुँह से मक्की और ज्वार की रोटी का वह टुकड़ा भी छीना जा रहा है जिसको पाने के लिए हम इस आषाढ़ी धूप और तन झुलसाने वाली भयंकर लूओं में भी बारह घण्टे रोज आग के साथ खेलते रहते हैं। जिस समय हमारे कृपालु मालिक खस की टट्टियों के अन्दर 'फुल स्पीड' के साथ चलते हुए बिजली के पंखे के नीचे बैठे सोडे और बर्फ के गिलास-के-गिलास खाली करते हुए भी गर्मी से परेशान रहते हैं। हम फिर भी कोई शिकायत नहीं करते; अपने खून की सारी कमाई, मालिकों के ऐशो-आराम के लिए बलिदान करते हुए भी अपने हृदय के अन्दर चुप-चुप सुलगती हुई आग का धुआँ प्रकट नहीं होने देते और······"

बीच में ही एक आवाज़ आई, "वे अपने भाग्य के बल पर ऐश करते हैं, तुम्हारा इसमें क्या?" यह करमा की आवाज़ थी।

उत्तर में राधे ने कहा, "मेरे दोस्त ने कहा है कि वे अपने भाग्य के बल पर ऐश करते हैं, पर उनको पता होना चाहिए कि उनके भाग्य-निर्माता कौन हैं? वह हम ही हैं। यदि आज हम···"

एक और आवाज़ आई, "बड़े आए हैं उनके भाग्य को बनाने वाले। यदि तुममें इतना बल और क्षमता है तो अपने भाग्य को क्यों नहीं बना लेते?" यह रतन था।

राधे पूर्व की भाँति कहता गया, "हम अपने भाग्य को एक ही दिन में बना सकते हैं यदि यह 'जी हुजूरी फौज' अपने भाइयों के साथ ग़द्दारी करके, हमारे भाग्य के डाकुओं के साथ वफ़ादारी करना

छोड़ दे। चालीस करोड़ भारतीयों पर जो मुट्ठी-भर विदेशी राज्य कर रहे थे, वह उन चापलूसों की कृपा का ही परिणाम था जो समय आने पर हमसे अलग होकर हमारे विरोधियों से जा मिलते थे।"

एक और आवाज़ आई, "बिलकुल बकवास करता है। हम तो इतना ही जानते हैं कि जिसका नमक खायंगे, उसके ही गीत गायंगे। वही हमारा माँ-बाप है। उससे हम लोगों का कुछ जोर नहीं चल सकता। यदि वह हमें नौकरी से अलग कर दे तो हमारे-तुम्हारे बाल-बच्चे भूखों मर जायं।" यह आवाज़ रामजोर पासी की थी।

इन तरह-तरह की आवाज़ कसने वालों पर सब दाँत पीस रहे थे। फिर 'शर्म-शर्म' के नारे भी सुनाई दिये; पर राधे ने सबको शान्त किया और फिर बोलना शुरू किया—

"यह बात सोलहों आने ग़लत है कि हम किसी का नमक खाते हैं। हम न तो किसी का नमक खाते हैं और न किसी से दान लेते हैं। हम अपनी हड्डियाँ तोड़कर, लहू जलाकर कमाई करते हैं; इसलिए हम क्यों किसी के गीत गायं? जब तक हमारी भुजाओं में बल है—जब तक हमारे हृदय में ईश्वर का विश्वास है, हम अपने को किसी का ग़ुलाम नहीं मान सकते; न यही विश्वास कर सकते हैं कि हम किसी की कृपा के बल पर पल रहे हैं। प्रत्युत इसके विपरीत मैं तो यह कहूँगा कि उन पूँजीपतियों को ही हमारा कृतज्ञ होना चाहिए। जो केवल हमारे बल पर ही गुलछर्रे उड़ा रहे हैं, जिनकी हड्डियों में इस हराम की कमाई ने दुर्गन्ध उत्पन्न कर दी है। जो समय-समय पर उनके दिल तथा दिमाग़ों से फूट-फूटकर बाहर निकलती है। जिसका परिणाम······"

एक और बोला, "कम्बख़्त, क्यों मालिक को गाली बोकता है। खोदा की कसम, सेठ साहब बोहत अच्चा आदमी हाय।" यह था ईदू पठान।

पठान की बेहूदी बातों ने सबका धैर्य नष्ट कर दिया। इसके कारण इतनी अशान्ति फैल गई कि 'कान पड़ी आवाज़' भी सुनाई नहीं देती थी। पहले कहा-सुनी फिर गाली-गलौच और अन्त में जब हाथा-पाई तक नौबत पहुँचने लगी तो राधे ने सोचा कि मालिकों का मनोरथ अब सफल होना चाहता है।

उसने झटपट सभा की कार्यवाही समाप्त कर दी और इस अपूर्ण कार्य को किसी और दिन के लिए छोड़कर सबको अपने-अपने घर चले जाने के लिए ज़ोरदार शब्दों में अपील की।

झगड़ा होता-होता रुक गया। कोई बात अधिक न बढ़ सकी।

मज़दूर अपने-अपने स्थानों को चले गए, केवल हवेली के ४० मज़दूर राधे को घेरे खड़े थे। वे इस समय उसके तनिक-से संकेत पर अपने प्राण तक न्यौछावर करने के लिए तैयार थे। रहमत तो परछाईं की तरह हर समय उसके साथ था। दूर कोने में खड़ी कामिनी और अनवरी सहमी हुई आँखों से एक दूसरे की तरफ देख रही थीं।

: २ :

सेठजी की प्रसन्नता का कोई ठिकाना न रहा जब उन्होंने ईदू पठान तथा रामजोर पासी के मुँह से सुना कि राधे की कार्यवाही असफल रही। उनका उत्साह चौगुना हो गया। पर जब उन्होंने सुना कि हवेली के सारे मजदूर राधे की पीठ ठोंक रहे हैं और उसके तनिक-से संकेत पर सब-कुछ करने के लिए तैयार बैठे हैं, तो क्रोध से उनका सारा शरीर काँपने लगा।

मज़दूरों की इस असफलता में जो सफलता छिपी हुई थी, उसके विषय में सेठ जी ने बिलकुल नहीं सोचा। न ईदू पठान जैसा वज्रमूर्ख ही सभा की कार्यवाही में इस बात को समझ सका। वास्तव में राधे के भाषण ने श्रोताओं के हृदय पर इतना गम्भीर प्रभाव डाला था कि वे

अपने को भूल गए; पर गड़बड़ी हो जाने के कारण काम अधूरा ही रहा। विशेषतः जब जनता को पता लगा कि राधे के भाषण में गड़बड़ मचाने वाले सेठजी के ही आदमी हैं तो उनका स्वाभिमान और भी भड़क उठा। अब सब-के-सब मज़दूर राधे के अन्तिम निर्णय की प्रतीक्षा में थे।

ईदू पठान के अतिरंजित वर्णन ने सेठ जी का साहस इतना बढ़ा दिया कि वे सब-कुछ करने को तैयार हो गए। उनके हृदय में हवेली के मज़दूरों की यह कार्यवाही भयंकर शूल की भाँति रह-रह कर खटक रही थी और वे इस काँटे को शीघ्र ही निकालने को तैयार हो गए।

सेठजी को यह भी जानकर हर्ष हुआ कि उनके भेजे हुए ईदू, करमा, रतन और रामजोर पासी ने बड़े साहस पूर्वक राधे के भाषण का खण्डन किया और उसके प्रभाव को श्रोताओं के हृदय से हटा दिया, पर वे यह नहीं जानते थे कि उन चार व्यक्तियों के बोलने से ही जनता के हृदय में घृणा तथा क्रोध के बादल पैदा हुए थे।

सेठजी ने चपरासी भेजकर मैनेजर को बुलाया और उसके आते ही कहा, "देखो भाई चन्द्रमणि, मैं चाहता हूँ कि हवेली के सारे मज़दूरों को हवेली से शीघ्रातिशीघ्र निकाल दिया जाय। दूसरी बात यह है कि जब तक राधे हमारे मार्ग से नहीं हटेगा, तब तक हम सुख का साँस नहीं ले सकते। उसकी वाणी में जादू-जैसा प्रभाव है। उसके होते हुए हर समय मज़दूरों के भड़क उठने का भय है। यदि किसी प्रकार उसका प्रबन्ध हो जाय तो फिर—'न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसरी'; क्यों ठीक है न मेरी राय?"

"बिलकुल ठीक, जनाब।"

"फिर, तो यों करो" और उन्होंने चन्द्रमणि के कान के पास मुँह ले जाकर धीरे से कोई बात उसको समझाई, जिसको पीछे खड़ा हुआ चपरासी भी न सुन सका।

"बिलकुल ठीक जनाब" कहकर मैनेजर साहब चले गए।

: ४ :

कामिनी ने भी सभा की कार्यवाही सुनी और सुनकर कुछ समझी भी। इससे पूर्व उसे इन बातों में कोई दिलचस्पी नहीं थी। वह घर के काम-काज में, खेलने-कूदने में या फूल-पौधों से दिल बहलाने में ही संलग्न रहती थी, पर आज पहली बार उसे यह मालूम हुआ कि जिस दुनिया में वह रहती है, वह वास्तव में है क्या। वह आज समझी कि उसका निवास निर्धनों के बीच है, जिसमें सुख की कल्पना करनी भी वर्जित है।

उसे यह मालूम नहीं था कि उसके बूढ़े पिता की वाणी में इतना ओज है, उसके हृदय में दीन-हीन मजदूरों के संकटों का इतना बड़ा कोष है।

इसके साथ ही उसे आस-पास के रहने वालों द्वारा यह भी मालूम हुआ कि उसका पिता अब सेठजी की क्रोधाग्नि में भस्म हुए बिना नहीं रह सकता।

उसका कोमल हृदय, जिसने आज तक कभी गर्म साँसों के आघात को भी सहन नहीं किया था, अपने पिता का यह भयानक भविष्य सुनकर काँप उठा। सहम उठा। वह पानी से निकाल कर फेंकी हुई मछली की भाँति तड़पने लगी।

आज न उसने फूलों को सींचा, और न ही कुछ खाया। उसको कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। सारी रात उसने करवटें बदलते हुए ही काटी। राधे रह-रह कर उसकी खाट की आवाज़ सुनकर पूछता, "क्यों, क्या है बेटी ?"

"कुछ बाबूजी" कहकर वह यह प्रयत्न करती कि एक ही करव लेटी रहे। न राधे को आवाज़ सुनाई दे और न ही उसकी नींद उसकी व्याकुलता बढ़ती ही गई। यदि आँख लग भी जाती, तो भयंकर दुःस्वप्नों के कारण खुल जाती।

उसे बार-बार यह ख़याल आता कि ये पूँजीपति लोग क्यों हमारे शत्रु हो गए हैं? हमने इनका बिगाड़ा क्या है? क्या ये लोग हमें हमेशा ऐसे ही कष्ट देते रहेंगे, और हम सहते रहेंगे। पर हमारे मज़दूरों में से ही बहुत-से आदमी मेरे बाबूजी की अच्छी बातों का विरोध करते हैं—यह क्यों? वे नहीं समझते कि इसमें उनका ही भला है। और जब उसे अपने निर्धन पिता की नौकरी छूट जाने का ध्यान आता तो वह बहुत घबरा उठती। अनेक सांसारिक यातनाओं से जर्जर तरु क्या इस ज़ोर की आँधी में स्थिर रह सकेगा?

उधर राधे का भी यही हाल था। अपने भाषण में उसने जो-कुछ कहा था, उसका क्या परिणाम होगा? साथ ही उसने अपने गुप्तचर से भी कुछ सुना था, जो आज सायंकाल उसे कुछ संकेत कर गया था। इससे वह अनजान नहीं था। जब वह रह-रहकर पूर्ण चन्द्र की झिलमिल करती विमल चाँदनी में अपनी कामिनी का फूल-जैसा मुख देखता, जिस पर बेल के बीच से छनकर चाँदनी स्वच्छन्दता पूर्वक खेल रही थी और हिलती हुई बेल की पत्तियों का प्रतिबिम्ब जिस पर काँप रहा था; तो उसके हृदय से एक दर्द-भरी हूक निकलती—"आह, मेरा यह सुन्दर फूल, पता नहीं, किस-किसके पैरों तले कुचला जायगा?"

इस मातृ-हीन बालिका को उसने जिन-जिन आपत्तियों में पाला था, लोरियों और प्यार के स्वर्णिम झूले पर झुलाया था, उसका एक-एक दिन, एक-एक पल उसकी आँखों के आगे क्रमशः नाचने लगा।

दुःख तथा कठिनाइयों ने राधे का सम्बन्ध चाहे दुनिया से तोड़ दिया था, पर यही एक वस्तु थी, यही एक आकर्षण था, जिसमें उसका मोह, और सब जगह से हटकर, केन्द्रित हो गया था।

कामिनी में उसके प्राण थे—कामिनी उसका भव्य संसार थी, कामिनी ही उसका सर्वस्व थी। इस समय उसके चारों ओर घोर निराशा से आच्छन्न भयंकर अन्धकार था। आकाश में मन्द-मन्द

टिमटिमाता चन्द्रमा भी उसको एक दाहक अग्नि-कुण्ड-सा प्रतीत होता था।

इस समस्त तिमिरावृत वातावरण में ही आशा की देदीप्यमान ज्योति उसके अन्धेरे हृदय को प्रकाशित कर रही थी, पर वह भी इतनी क्षीण एवं असमर्थ कि पता नहीं किस समय किसी निष्ठुर एवं हृदय-हीन मानव की जलती हुई फूँक से बुझ जाय। वह था रहमत।

उसकी सारी रात तारे गिनते-गिनते ही बीती। प्रातः कालीन वायु एवं पक्षियों का मधुर संगीत प्रारम्भ हो गया; पर राधे की आँखों में नींद नहीं थी। उसने एक बार फिर प्रेम-भरी निगाह से कामिनी की ओर देखा। अबोध बालिका इस समय गहरी नींद में थी; परन्तु उसका मुख निराशा तथा चिन्ता का साक्षात् चित्र था।

राधे से लेटा न रहा गया, वह उठकर बैठ गया। बैठा भी न गया, खड़ा हो गया, आख़िर खड़ा भी न रहा गया तो चल पड़ा। किधर? रहमत के घर की ओर।

दबे पैर से उसके सिरहाने जाकर उसने रहमत को जगाया और अपने पीछे-पीछे आने का संकेत कर हवेली से बाहर आ गया।

दूर बोलते हुए मुर्गे, घोसलों से निकलते हुए पक्षी तथा दर-दर अलख जगाते भिखारी प्रातःकालीन नीरवता को भंग कर रहे थे। कुछ देर बाद फेरी वाले ने 'डबल रोटी—मक्खन' की आवाज लगानी प्रारम्भ कर दी।

वे दोनों चुप थे। एक दूसरे से सटे हुए एक पेड़ के नीचे बैठे थे।

"रहमत" राधे ने निस्तब्धता को भंग करते हुए कहा, "तुझे पता है कि मैंने तुझे किसलिए बुलाया है?"

रहमत ने कोई उत्तर नहीं दिया। आज उसे राधे की ओर देखने

का साहस नहीं हो रहा था। रात ही वह कहीं से कुछ सुनकर आया था; बताना चाहता भी नहीं था।

"रहमत, कामो मेरी बेटी है या तेरी ?" राधे के मुँह से ये शब्द निकले ही थे कि रहमत की आँखों में डबडबाते हुए आँसू अविरल वेग से बहने लगे।

राधे ने फिर कहा, "रहमत, मेरा तेरे और ईश्वर के सिवाय और कोई नहीं। देखना बेचारी कहीं तड़प-तड़प कर न मर जाय। मैंने बड़ी कठिनाई से पाली है।"

रहमत से कोई उत्तर न दिया गया।

"रहमत, तेरी घर वाली को सन्तान की आवश्यकता थी और मेरी कामो को माँ के प्यार की। मेरे भाई, अपनी बच्ची के लिए जीना, मेरे पीछे आग में न कूद पड़ना।"

"हृदय को और अधिक सन्ताप न दे राधे, आ अब चल।" रहमत ने ठंडी साँस लेकर कहा।

और वह उठकर चल दिया।

राधे भी पीछे-पीछे हो लिया।

फिर दोनों अपनी-अपनी खाटों पर जाकर सो रहे।

❀ ❀ ❀

दिन चढ़ गया। आज राधे कुछ देर से उठा। रहमत से बात-चीत कर लेने के बाद उसका हृदय बहुत-कुछ हल्का हो गया था और कदाचित् इसीलिए कुछ देर के लिए नींद भी आ गई थी।

उसने कामिनी की खाट की ओर देखा, वह अब भी सोई हुई थी। वह सोचने लगा, "यह तो हवेली की सब लड़कियों से पहले उठती थी और उठते ही अपने फूलों को सींचने में जुट जाती थी, आज क्या बात है ?"

दूसरी निगाह उसकी कामिनी के फूलों पर पड़ी। बेलों के पत्ते

कुछ मुरझाए हुए थे और फूल भी कुछ म्लान-से ही प्रतीत होते थे।

वह कामिनी की खाट के पास पहुँचा, हाथ पकड़कर हिलाया। वह काँप उठा। हाथ इतना गरम। बुखार! इतने जोर का बुखार!

उसने कामिनी को उठाया और अन्दर ले जाकर लिटा दिया।

"कामो! क्या हुआ बेटी?"

बुखार की बेहोशी में कामिनी कुछ भी न बोली।

राधे सिर पकड़ कर बैठ गया।

: ५ :

दिन चढ़ता गया, सूरज सिर पर आ गया और धीरे-धीरे उसकी तीक्ष्ण रश्मियाँ राधे के दरवाजे पर फैली हुई कामिनी की बेल के बीच से छन-छन कर उसकी कोठरी में पड़ने लगीं।

कामिनी का ज्वर बढ़ता जा रहा था और वह बेहोशी की अवस्था में अनवरी की गोद में लेटी हुई थी। रहमत इस समय घर पर नहीं था। राधे धर्मार्थ औषधालय से औषधि लेने गया था। राधे को गये लगभग एक घण्टा हो गया, पर अभी तक वह वापस नहीं लौटा।

अनवरी बार-बार कामिनी के मस्तक और गर्म हाथों को सहलाती हुई उसको बुलाने का प्रयत्न कर रही है; पर कामिनी निश्चल प्रस्तर-प्रतिमा बनी पड़ी हुई है। किसी-किसी समय बहुत बल लगाकर वह अपनी आँखों की पलकों को खोलती है; पर फिर मींच लेती है।

अनवरी उद्विग्नतापूर्वक दरवाजे की ओर देखती और फिर कामिनी के मुरझाए चेहरे पर नज़र डाल लेती है। इसी भाँति कुछ समय व्यतीत हो गया।

तभी कामिनी अकस्मात् चीख उठी और उसके पतले तथा गुलाबी अधरों से निकला, "बाबू जी" और उसने अनवरी की बाहों को कदाचित् पिता की बाहें समझकर अपने दोनों हाथों से जकड़ लिया।

"कामो बेटी, क्या डर गई थी ?" अनवरी ने उसका मुँह चूमकर कहा। परन्तु कामिनी के नेत्र अविरल वेग से झर रहे थे। उसका ज्वर से संतप्त मुख शुष्क एवं म्लान हो गया था। उसने अच्छी तरह से आँखें खोलीं और अनवरी की ओर देखा, "चाची तुम हो, बाबू जी कहाँ हैं ?"

"मेरी बेटी के लिए दवा लेने गए हैं" अनवरी ने उसको धैर्य बँधाते हुए कहा, "और तू इस तरह क्यों चीख़ पड़ी थी ?"

उसकी बातों पर ध्यान दिये बिना ही कामिनी उठकर बैठ गई और भयभीत नेत्रों से दरवाजे की ओर देखती हुई हड़बड़ाकर खाट से उठने लगी; पर अनवरी ने उसे उठने न दिया और बोली, "कहाँ चली है, देखती नहीं कि ताप चढ़ा हुआ है तुझे, बाहर जाकर क्या हवा खायगी बेटी ?"

"चाची" वह नम्रतापूर्वक उसकी ओर देखती हुई बोली, "जरा बाहर जल्दी जाओ, कोई साँड मेरी बेलों को खाए जा रहा है।"

"पागल लड़की" अनवरी ने हँसकर कहा, "यहाँ तो साँड का कहीं नाम-निशान भी नहीं है।"

"नहीं चाची" उसने दृढ़तापूर्वक कहा, "मैंने अभी तो स्वयं देखा था। मेरी बेलों को वह छप्पर से खींच-खींचकर खा रहा था।"

"बेटी, तुझे सपना आया होगा।"

कामिनी ने सोचा शायद सपना ही हो, पर फिर भी उसका दिल न माना और बोली, "चाची, मुझे एक बार अपनी आँखों से उसे देख आने दो।"

लड़की के आग्रह को पूरा करने के लिए अनवरी ने कामिनी को सहारा देकर उठा लिया और आँगन में ले जाकर कहा, "ले, देख ले बेटी।"

कामिनी ने शंकित दृष्टि से सारी बेल देखी। बाहरी दरवाजे के

साथ लगे हुए फूलों की बेल भी देखी और साथ ही लगे हुए सभी कली तथा फूलों का भली-भाँति अन्वीक्षण किया; तब कहीं जाकर उसे निश्चय हुआ कि यह सपना ही था।

अनवरी ने उसको फिर खाट पर ले जाकर लिटा दिया।

इसी समय बाहर से राधे के आने की आहट सुनाई दी। वह अन्दर आया और आते ही कामिनी की खाट पर बैठ गया और अनवरी उठकर भूमि पर बैठ गई।

कामिनी को होश में देखकर उसको कुछ ढाढ़स मिला; पर हाथ की खाली शीशी ने उसको शोक के अथाह समुद्र में धकेल दिया।

"भाई साहब, दवाई नहीं लाए, शीशी खाली ही लौटा लाए।" पास बैठी अनवरी ने पूछा।

"रोगी को देखे बिना डाक्टर दवाई नहीं देता।" राधे ने शोकातुर स्वर में कहा।

"आपको कहना चाहिए था कि लड़की को बुखार चढ़ा हुआ है।"

"कहा था पर वे नहीं मानते।"

"फिर अब ?"

"मेरी सलाह है कि इसे पीठ पर चढ़ाकर ले जाऊँ ?"

"अच्छा चलो, मैं भी चलती हूँ।"

"नहीं अनवरी, तू घर रह। जा, घर जाकर रोटी-पानी का ढंग कर।"

"और आपकी रोटी का क्या होगा ?"

"मैं ढाबे में जाकर खा आऊँगा।"

"और कामिनी के लिए ?"

"यदि यह खायगी तो थोड़ी-सी खिचड़ी बना दूँगा।" फिर कुछ सोचकर कहने लगा, "नहीं, तो तू ही बना देना।"

"मैं ?" अनवरी ने चकित होकर उसकी ओर देखा, मानो उसने

कोई आश्चर्य-जनक बात कही हो। उसका हृदय कह रहा था, "काश, हमारे बीच में मज़हब की दीवार न होती।"

"हाँ, कोई डर नहीं, मेरा दिल इन मज़हबी ढोंगों से तंग आ गया है। वैसे भी तो अब यह तुमको ही पालनी है, मैं तो......"

उसके पिछले शब्द कामिनी के हृदय में भयंकर भाले के समान चुभे और उसने उदासीनतापूर्वक प्रश्न किया, "बाबू जी, कहाँ जाओगे ?"

राधे को अपनी असावधानी का भान हुआ। वह बात टालकर बोला, "कहीं नहीं बेटी, मुझे कहाँ जाना है ? यों ही बात कही है, हमारे और इनके अन्दर कौन-सा अन्तर है ? ये हमें हृदय से प्यार करते हैं" कहते-कहते उसकी आँखें डबडबा आईं।

कामिनी का सन्देह दूर हुआ कि नहीं, यह तो कहा नहीं जा सकता। परन्तु उसने फिर कोई प्रश्न नहीं किया।

"चल फिर कामो, तुझे डाक्टर को दिखा लाऊँ बेटी।" उसने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा।

"तुम थक जाओगे बाबूजी; अस्पताल कितनी दूर है।" कामिनी ने शोक-मिश्रित प्यार के साथ कहा।

"कोई डर नहीं, धीरे-धीरे पहुँच जाऊँगा" कहकर राधे ने कामिनी को उठाया। उसका शरीर इस समय इतना गरम था कि हाथ नहीं लगाया जा सकता था।

राधे ने उसको सहारा देकर धीरे-से कमर पर बिठा लिया। दरवाज़े की टक्कर की आशंका से जरा झुककर वह बाहर निकला।

बाहर निकलकर कामिनी ने एक बार फिर अपनी लहराती हुई कामिनी की बेल की ओर प्रेम-भरी दृष्टि डाली। उसे अभी तक यह विश्वास नहीं हुआ था कि उसनें वह सपना ही देखा था।

राधे हवेली के दरवाजे तक ही पहुँचा था कि आगे उसे पुलिस के

कुछ सिपाहियों के दर्शन हुए, जो हवेली का दरवाज़ा पार करके धीरे-धीरे अन्दर आ रहे थे।

वह स्तम्भित होकर खड़ा हो गया। यदि खड़ा भी न होता तो शायद खड़ा कर लिया जाता।

"यही है राधे" उसको सुनाई दिया। शायद यह रामजोर पासी की आवाज़ थी।

दूसरी आवाज़ आई, "चल भई, पीछे चल, कहाँ भागा जाता है?"

अभी तक कामिनी का ध्यान इधर नहीं था। एक तो उसका मुँह पिछली ओर था, दूसरे अभी वह अपनी कामिनी की बेल को देखती हुई चली आ रही थी और शायद यह भी सोचती आ रही थी कि अस्पताल से लौटकर इसको पानी देना होगा—बाबू जी से कह दूँगी।

पर ज्यों ही उसने 'राधे' शब्द सुना, भयभीत निगाह से उधर देखा।

लाल पगड़ी वाले सिपाही हथकड़ी लिये आ रहे थे। साथ ही थानेदार हाथ में कोई कागज़ लिये थे। इस दृश्य ने कामिनी के हृदय में भय उत्पन्न कर दिया और उसकी वही अवस्था हुई जो अभी-अभी उसने सपने में देखी थी। उसकी चीख़ निकल पड़ी और दोनों हाथों से उसने राधे के शरीर को दृढ़तापूर्वक जकड़ लिया।

राधे चुपचाप पीछे मुड़ा और वैसे ही कामिनी को खाट पर लिटाकर बाहर आ गया। उसके दरवाजे के आगे भारी भीड़ एकत्रित हो गई थी। अनवरी अपने घर के अन्दर आटा गूँध रही थी। बाहर कुछ शोर सुनकर वह वैसे ही हाथों से एक ही साँस में बाहर आ गई।

इतने में ही थानेदार ने कड़ककर कहा, "राधे, तुम्हें विद्रोहपूर्ण भाषण के परिणामस्वरूप भारत-रक्षा-कानून के अन्तर्गत गिरफ्तार किया जाता है।" और उसने हथकड़ी वाले सिपाही की ओर देखा।

अब राधे के दोनों हाथों में हथकड़ी पड़ चुकी थीं।

कामिनी की आँखों ने भी यह दृश्य देखा। कुछ देर तक तो वह समझ न सकी कि यह हो क्या रहा है? उसका सिर घूम रहा था, वह खाट से उठी और राधे की छाती से लिपट कर चिल्लाने लगी। उसका करुणा-मिश्रित रुदन सुनकर अनेकों आँखें बहने लगीं, केवल सिपाही और दारोगा ही निष्ठुर बने खड़े थे।

राधे को कोई बड़ा आश्चर्य नहीं था, क्योंकि उसे पहले से ही इसकी आशा थी।

बिछुड़ती हुई बालिका को उसने जी भरकर प्यार किया। उसके नेत्रों से आँसू की झड़ी लग रही थी। और जो-कुछ उसने अभी तक छिपा रखा था, वह उसके हृदय से बलात् इन शब्दों में पिघलकर निकल पड़ा—

"ले बेटी, आज से मैं तुझे ईश्वर के चरणों में सौंपता हूँ। पता नहीं......। मेरी यह साध थी कि एक बार अपने हाथों से तेरे हाथ पीले कर देता; पर कोई चिन्ता नहीं। वैसे भी तो पिता-पुत्री को रोकर ही बिछुड़ना था, आज भी रोकर ही अलग हो रहे हैं। घबराना नहीं बेटी, मेरे शोक में तुम अपने प्राण न गँवा देना। तेरे माँ-बाप, जिन्हें मैं तुझको सौंप चला हूँ, तुझे फूलों से तोलकर रखेंगे। क्या हुआ जो वे निर्धन हैं, हृदय तो उनके धनी हैं।"

पर, कामिनी ने कोई बात नहीं सुनी। पितृ-प्रेम ने उसको सिर से पैर तक आविष्ट कर दिया था। उसके आँसू सूखने वाले नहीं थे। स्वास्थ्य उसे जवाब दे रहा था, उसके पैर और शरीर काँप रहे थे; पर उसकी बाहुओं का बन्धन जरा भी ढीला नहीं पड़ा।

सरकारी अहलकार पत्थर बने खड़े थे। उमड़ी आ रही अपार भीड़ पर सिपाहियों की लाठियों की मार पड़ रही थी। गर्मी से सबका दम घुटा जा रहा था। राधे को भय था कि कहीं कामिनी का 'हार्ट-फेल' न हो जाय अथवा भीड़ कहीं हिंसात्मक प्रतिरोध न कर बैठे।

उसने बलपूर्वक कामिनी के हाथों का बन्धन छुड़ाया और उसका हाथ 'अनवरी' को पकड़ाता हुआ बोला, "ले बहन, आज से यह..."

आँखें पोंछकर अनवरी ने कामिनी को हृदय से लगा लिया। उसे आशंका थी कि कामिनी जोर लगाकर पिता को दुबारा पकड़ने का प्रयत्न करेगी। पर कामिनी का शरीर शिथिल हो गया, हाथ ढीले पड़ गए और गर्दन पीछे को लटक गई।

कामिनी बेहोश थी।

"काश, अपनी बेटी को मैं इस अवस्था में छोड़कर न जाता" उसने ठंडा साँस छोड़ते हुए कहा और फिर बेहोश कामिनी का एक अन्तिम चुम्बन लेकर सिपाहियों के आगे-आगे चल पड़ा।

भीड़ भी पीछे-पीछे चल पड़ी, पर सिपाहियों की लाठियों के "कड़-कड़" शब्द से कुछ दूर जाकर तितर-बितर हो गई।

सब पड़ौसी हाथ मलते रह गए। रहमत अभी तक घर नहीं आ सका था।

◆

तीसरा भाग

हड़ताल

: १ :

शाम के सात बजे का समय है; सूर्य की रक्त-रंजित सुनहली किरणें अवसान की ओर हैं। किन्तु दिन में भयंकर गर्मी और तेज धूप होने के कारण जमीन से अभी तक लपटें निकल रही हैं। वृक्षों का पत्ता तक हिलता नहीं दिखाई देता; इसी से दम घुट रहा है। किसी खेत या बगीचे में जानें पर भी शान्ति नहीं मिलती। घरों में, दुकानों में, यहाँ तक कि बाजारों में भी इधर-उधर आते-जाते व्यक्तियों के हाथ में पंखे हिलते हुए दिखाई दे रहे हैं।

यह सब ग़रीबों, निर्धनों की दुनिया में होता है। धनिकों की गगन-चुम्बी अट्टालिकाओं तक, जो शायद ईश्वर ने स्वयं अपने कर-कमलों से बनाई हैं, इसकी पहुँच नहीं है।

इसी धनिकों के संसार का एक छोटा-सा दृश्य कानपुर के 'इण्डियन क्लब' में दृष्टिगोचर होता है। क्लब का साइनबोर्ड पढ़कर यह प्रतीत होता है कि यह सचमुच ही भारतीयों का क्लब होगा। परन्तु उसके अन्दर जाकर देखने से भारतीयता की कोई निशानी नहीं मिलती। हर तरफ सिर पर पगड़ी और कमर पर पेटी कसे 'बैरे' 'खानसामे' घूमते फिरते हैं। कहीं रंग-बिरंगी ह्विस्की तथा बियर की बोतलें रखी हैं, कहीं बर्फ की सिल्लियों के बीच लैमन सोडे की बोतलें रखी जा रही हैं, और कहीं विलायती डिब्बों से बन्द की हुई खाने-पीने की सामग्री निकाली जा रही है। क्लब के 'हाल' में फैन्सी मेज़ों पर दूध की भाँति

स्वच्छ कपड़े बिछे हुए हैं, जिन पर भाँति-भाँति के गुलदस्तों की भरमार है और उनके बीच लक-दक करते हुए बिल्लौरी बरतनों में साहबी भोजन बाहर से ला-लाकर बड़े उत्तम ढंग से सजाया जा रहा है। थोड़ी-थोड़ी दूर पर लाल, शर्बती और हरे रंग की अनेक प्रकार की शराब रख दी गई है। मेज़ के चारों ओर ही प्लेट, चम्मचें, छुरी, काँटे, गिलास आदि रखे जा रहे हैं। मेज के समीप आठ कुर्सियाँ रखी हुई हैं।

कमरे के प्रत्येक दरवाजे तथा खिड़की पर खस की टट्टियाँ लगी हुई हैं; जिनको थोड़ी-थोड़ी देर बाद पानी से तर किया जा रहा है।

सब-कुछ तैयार हो गया। सब नौकर अपनी-अपनी जगह साव-धान होकर खड़े हो गए। प्रत्येक को यही चिन्ता है कि उसकी चपरास पर कोई दाग़-धब्बा न हो, कपड़ों में कोई सलवट न दिखाई दे; इसी-लिए वे बार-बार अपने कपड़ों पर हाथ फेर रहे हैं। वे कभी-कभी पगड़ी के ऊपर लपेटे हुए लाल कपड़े को ठीक करते हैं और कभी चप-रास के क्लिप को रूमाल से रगड़ते हैं।

जब घड़ी ने साढ़े सात का घण्टा बजाया तो दरवाजे से मोटरों की आवाज़ें आनी प्रारम्भ हो गईं। ये लोग और भी ज़रा तनकर खड़े हो गए।

थोड़ी देर बाद कमरे की आठों कुर्सियाँ घिर गईं। बिजली के पंखे खोल दिये गए। ठंडी हवा के झोंकों से कमरा शिमले की समता करने लगा।

कोई अपरिचित व्यक्ति चकित हो सकता है कि यह ठाठ केवल इन आठ व्यक्तियों के लिए ही किया गया है। और यह खाने-पीने की सामग्री, जिसको कि चालीस चौबे भी न निबटा सकें, केवल आठ अति-थियों के ही लिए है। पर सभी जानते हैं कि यह भूखे निर्धन मज़दूरों के लिए नहीं, धनिकों के लिए ही है और इसमें ही तो उनके धनाढ्य

होने का गौरव निहित है। खाने की मेज पर जितना अधिक सामान हो अथवा जितना कम खाया जाय, वही धनिकों की सर्वोत्तम पहचान है।

इसके अतिरिक्त नौकरों की संख्या का भी धनी-संसार से बहुत-कुछ सम्बन्ध है। एक-एक व्यक्ति के चार-चार सेवक होना भी धनी होने का चिह्न नहीं समझा जाता। यही कारण है कि इन आठ महानुभावों के लिए चालीस से भी अधिक सेवक मौजूद हैं। इसके अतिरिक्त भिश्ती, भंगी, कुलियों तथा चौकीदारों की संख्या अलग है। आठ मिलों के मालिकों के लिए इतना ठाठ वास्तव में कम ही कहा जा सकता है।

भोजन प्रारम्भ हो गया; पर इसमें खाने की सामग्री से पीने की वस्तुओं का अधिक प्रयोग हुआ। खाने से अधिक लुत्फ पीने में था और इससे चौगुना आनन्द था पारस्परिक वार्तालाप में।

काँटे से मांस का एक टुकड़ा उठाते हुए लाला ईश्वरदयाल मित्तल ने कहा, "आज के टेनिस में बड़ा मजा आया। चौधरी साहब को तो आज की यह हार बहुत दिन तक याद रहेगी।"

चौधरी यूसुफ—"मुझे तुमने साथी ही निकम्मे दिये थे, मेरा इसमें क्या कसूर है? हट्टे-कट्टे तो तुमने सँभाल लिये और बूढ़े-बूढ़े मेरे हवाले कर दिये।"

सारे समुदाय में बूढ़े सज्जन केवल दो ही थे। रायबहादुर सेठ भानामल और सेठ रामकृष्ण गोयनका; पर पहले सज्जन को बूढ़ों में नहीं गिना जाता, इसलिए इस सम्मान के अधिकारी केवल सेठ गोयनका ही समझे जाते थे और यह व्यंग्य उन पर ही किया गया था।

सेठ गोयनका ही सबके विनोद का लक्ष्य बने रहते हैं। हाल में तीसरा ब्याह करने के बाद से तो यह मंडली हाथ धोकर इनके पीछे पड़ी हुई है। कोई भी बात हो, कटाक्ष इन पर ही किये जाते हैं। जिस दिन सेठ गोयनका क्लब में नहीं आते उस दिन मजलिस ठण्डी ही रहती है।

सेठ गोयनका अपनी धुन के पक्के आदमी हैं। नवीन युग की बहुल-स बातों का आपको पता ही नहीं। उन पर व्यंग्य होता देखकर सारे व्यक्ति कहकहा लगाकर हँस पड़े और बजाय इसके कि कोई उन पर टीका-टिप्पणी करता, वे स्वयं ही बोले, "मैं एक बूढ़ा था तो बाकी तीन तो जवान थे। क्या उनसे इनकी जीत नहीं हो सकती थी?"

इतने में ही सरदार जगजीतसिंह बोले, "भई, तुम तो सेठ जी को जबरदस्ती बूढ़ा बनाये दे रहे हो, अभी ही तो तीसरा विवाह किया है। यदि कभी यह बात उनकी श्रीमतीजी तक पहुँच गई तो सबको अपनी-अपनी मिलों के बॉयलरों में छिपना पड़ेगा।"

पंडित धर्मदत्त—"अरे विवाह किया है या जंगल से शेरनी पकड़ लाये हैं, जो हम सबको भगा देगी?"

"शेरनी नहीं तो क्या तुमने भेड़ समझ ली है?" रामेश्वरदयाल टंडन ने कहा।

ला० ईश्वरदयाल मित्तल बोले, "पर शेरनी को क्या पड़ी है कि अपने शिकार को छोड़कर हमारा पीछा करेगी?"

इस पर सेठ गोयनका को फिर बोलना पड़ा। वे कुछ धीमे-से स्वर में बोले, "फ़िज़ूल की बातों से क्या लाभ; लड़कों-जैसी बेहूदा बातें मुझे ज़रा भी अच्छी नहीं लगतीं।"

ला० ईश्वरदयाल—"सेठ जी, लड़के तो लड़कों-जैसी बातें करेंगे; आपको नाराज नहीं होना चाहिए।"

"मेरी सलाह है कि सेठजी को अपने हमजोली बूढ़ों का अलग एक क्लब बना लेना चाहिए, फिर इन लड़कों की वहाँ पहुँच न हो सकेगी और न गुस्ताख़ी कर सकेंगे।" सरदार जगजीतसिंह ने जरा हँसते हुए कहा।

रामेश्वर टंडन—"बात तो ठीक है, पर इतने बूढ़े रायबहादुर, चौधरी तथा सरदार साहब कहाँ से आयंगे?"

ला० ईश्वरदयाल—"इन सबका कोई ठेका है ?"

"तो क्या आपका मतलब है कि साहबों की बजाय मेमों की भरती कर लें ?" पं० धर्मदत्त ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

इतनी देर चुपचाप सुनते रहने के बाद मुन्शी ज्वालासहाय ने अपना चश्मा ऊपर करते हुए कहा, "मेम तो शायद इन्हें पुश्तों तक काफी होंगी।"

इस पर सेठ साहब का पारा बहुत तेज़ हो गया। बोले, "यदि आप लोग इस प्रकार की बेहूदी बातों को बन्द न करेंगे तो आज से मेरा इस क्लब को सलाम।" और वे कुर्सी की हत्थी के सहारे रखी हुई अपनी आबनूसी बेंत को हाथ में लेकर जाने के लिए उठ खड़े हुए। पर उनको जाने देने का अर्थ था क्लब को सदा के लिए सूना कर देना। अतः किसी ने हाथ, किसी ने रेशमी चोगे का पल्ला और किसी ने उनका कन्धा पकड़ कर बिठा लिया।

ला० ईश्वरदयाल बोले, "भई आप लोगों को सेठजी की श्रीमती जी तक नहीं पहुँचना चाहिए था।"

सेठजी फिर भड़क उठे, "देख लिया! फिर वही लोफरों वाली बातें।" और फिर वे उठने लगे पर फिर बैठा लिये गए।

सभी सदस्य ला० ईश्वरदयाल को सम्बोधित करके बोले, "लाला जी, बस आप सेठजी से कुछ भी मख़ौल न कीजिये।"

ला० ईश्वरदयाल—"मैं मख़ौल तो नहीं कर रहा था; मैं तो सेठ जी के ही पक्ष में कह रहा था। पर अच्छा, यदि आप सुनना न चाहते हों, तो न सही।"

"यदि सेठ जी के पक्ष में है तो कहो" सबने उत्सुकता प्रकट करते हुए कहा।

"मैं तो सेठजी से 'औल्डमैन्स क्लब' के विषय में कुछ कहना चाहता था। एक सेठजी हैं और दूसरे सामने रायबहादुर भानामल

बैठे हैं। दो यहाँ ही निकल आए। बाकी दो-तीन और खोज लेंगे।"

"और एक जहन्नुम से सिंदबाद जहाजी को बुला लेंगे।" चौधरी यूसुफ बोले। एक बार फिर वह कमरा हास्य से मुखरित हो उठा।

मुन्शी ज्वालासहाय—"सरदार जगजीतसिंह जी, क्षमा करना, यह तो आपका बड़ा भारी अन्याय है कि आपने रायबहादुर साहब को भी बूढ़ों में शामिल कर लिया है। उनमें आपने बुढ़ापे का कौन-सा चिह्न पाया है।"

रामेश्वर टंडन—"वस्तुतः इनको बूढ़ों में गिनना, इनके साथ भारी अन्याय करना है।"

"ऐसा क्यों? क्या इसीलिए कि रायबहादुर की मूछों में कोई सफेद बाल नहीं दिखाई देता?" सरदार जगजीतसिंह ने उसकी पुष्टि करते हुए कहा।

"नहीं, इसलिए कि अभी तक इन्होंने बुढ़ापे का प्रमाण-पत्र प्राप्त नहीं किया।"

"प्रमाण-पत्र? बुढ़ापे का भी प्रमाण-पत्र लेना पड़ता है? यह भी कोई आगरा यूनिवर्सिटी का कोर्स है?"

"हाँ-हाँ, पूछो न सेठ गोयनका से, प्रमाण-पत्र लेना पड़ता है कि नहीं?"

"सेठ जी तो मुझसे नाराज हैं, आप ही बता दें।"

"तीसरा विवाह।"

अबकी बार हँसी के ठहाके ने पिछली कमी भी पूरी कर दी। फिर सेठजी लाल-पीले होकर उठने का उपक्रम करने लगे, पर पुनः पहले की भाँति बिठा लिये गए।

थोड़ी देर बाद चौधरी यूसुफ जरा गम्भीरतापूर्वक बोले, "अच्छा अब हँसी-मज़ाक काफ़ी हो चुका। अब ज़रा मतलब की बातें करनी चाहिएं, जिस काम के लिए आज की मीटिंग बुलाई गई है।"

"अवश्य, अवश्य", आवाज़ें आईं।

सेठ गोयनका ने धन्यवाद किया, "जान बची लाखों पाए।"

चौधरी यूसुफ बोले, "रायबहादुर सेठ भानामल की मिल के मज़दूरों में गड़बड़ बढ़ती जा रही है। सम्भव है कि इसका प्रभाव और मिलों पर भी पड़े; इसलिए हम सबको मिलकर अभी से कोई सम्मिलित पग उठाना चाहिए।"

ला० ईश्वरदयाल रायबहादुर भानामल की ओर व्यंग्य करते हुए बोले, "कदाचित् इसीलिए आज रायबहादुर साहब मुँह में दही जमाए बैठे हैं। मैंने सोचा बात क्या है, जो इधर से आवाज़ नहीं आती?"

"बस, बस मित्तल" चौधरी साहब ने कहा, "अब हँसी-मज़ाक को छोड़कर कुछ मतलब की बातें करो। रायबहादुर की मिल की समस्या दिन-प्रति-दिन गम्भीर होती जा रही है। हम सबको इस ओर ध्यान देना चाहिए। रायबहादुर साहब अपने मज़दूरों के सम्बन्ध में आप लोगों को कुछ सूचना देना चाहते हैं।"

सब ध्यानावस्थित हो गए।

रायबहादुर भानामल अपनी ठोड़ी के नीचे ढुलके हुए मांस पर हाथ फेरते हुए बोले, "आपको मालूम है कि मैं एक सुधारक मस्तिष्क का व्यक्ति हूँ। मैंने आज तक अपने मज़दूरों को कभी किसी शिकायत का अवसर नहीं दिया, पर आजकल हवा ही कुछ ऐसी उलटी चल पड़ी है कि कुछ कहा नहीं जाता। इन सोशलिस्टों ने मज़दूरों के दिमाग़ इतने बिगाड़ दिये हैं कि वे दिन-प्रतिदिन स्वार्थी होते जा रहे हैं। हम पूँजी-पतियों का जीना भी इन्होंने दूभर कर दिया है। मैं यह प्रार्थना करना चाहता हूँ कि इसके विरुद्ध हम सबको मिलकर कोई गम्भीर पग उठाना चाहिए।"

मित्तल—"सुना है, अबकी बार फिर आपके मज़दूर हड़ताल करने की सोच रहे हैं?"

"नहीं, ऐसी भययुक्त बात तो कोई दिखाई नहीं देती।"

"पर, लोग कहते हैं कि आपकी हवेली में आजकल कुहराम मचा हुआ है।"

"यह केवल एक ही व्यक्ति की शरारत थी।"

"किसकी?"

"उसी बूढ़े राधे की।"

"कौन राधे! जिसने गत वर्ष भी मिल में हड़ताल कराई थी?"

"जी वही।"

"सुना है, वह तो कुछ पढ़ा-लिखा भी है।"

"पढ़ा-लिखा क्या है, कहीं से चार अक्षर पढ़ लिये होंगे। तभी तो उछलता फिरता है। अब जेल के कोल्हू में जुतकर दिमाग़ ठिकाने हो जायगा।"

"क्या आज सवेरे आपकी हवेली में उसी की गिरफ़्तारी हुई थी?"

"जी हाँ, आख़िर उसका कुछ ठिकाना तो करना ही था।"

"सुनते हैं साम्राज्यवाद एवं पूँजीवाद के विरुद्ध उसने बड़ा प्रभावशाली भाषण दिया था।"

"परन्तु मेरे आदमियों ने भी उसके भाषण के वे मुँह-तोड़ जवाब दिये कि उसे चुप रह जाना पड़ा।"

"और भी तो सुना है कि कांग्रेस सरकार के विरुद्ध भी उसने बहुत-कुछ-ज़हर उगल डाला था?"

"जी हाँ, बहुत-कुछ, तभी तो भारत-रक्षा-विधान के अन्तर्गत अपराधी ठहराकर उसे गिरफ़्तार कर लिया गया है।"

"पर लालाजी, इसका परिणाम भयंकर भी हो सकता है। सम्भव है, उसकी गिरफ़्तारी से यह आन्दोलन और अधिक बढ़ जाय?" पं० धर्मदत्त ने सिर पर हाथ फेरते हुए कहा।

टण्डन—"ढंग भी ऐसा ही दिखाई देता है। आज दोपहर को हमारे वर्कशाप में भी यही चर्चा थी।"

मित्तल—"लालाजी, आपका क्या विचार है ? कल आपकी मिल में कोई गड़बड़ तो न होगी ? मुझे इस सम्बन्ध में विश्वस्त-सूत्र से पता मिला है।"

"बिलकुल नहीं" लालाजी ने पेट को ढीला करते हुए कहा, "कोई सन्देह-जनक बात बिलकुल नहीं, मैं बिना सोचे कभी कोई कदम नहीं उठाता।"

"ईश्वर करे ऐसा ही हो।" पं० धर्मदत्त बोले, "सुना है, वे वेतन न मिलने की भी शिकायत करते हैं।"

"अजी, यह तो यों ही उनकी बकवास है। वेतन तो मैंने कभी उनका रोका ही नहीं। हाँ, यह आप सभी जानते हैं कि आजकल महँगी के दिन हैं। यदि चार दिन की देर हो भी गई, तो क्या अन्धेर हो गया ? पर इन लोगों को तो ज़रा नाखून रखने को जगह मिल जानी चाहिए, बस फिर आसमान सिर पर उठा लेंगे।"

"ठीक है, क्या आपको किसी बात की कमी है ? अच्छा अब हमें बताइये कि इस विषय में क्या करना चाहिए ?"

"इसका एक ही इलाज हो सकता है।"

"क्या सेठजी ?" सबका ध्यान रायबहादुर सेठ भानामल की ओर खिंच गया।

सेठजी बोले, "जो व्यक्ति तेज-तर्रार मालूम हो उसे धन अथवा भय से अपने काबू में कर लिया जाय, यदि फिर भी न माने तो निकाल दिया जाय।"

पं० धर्मदत्त—"लालाजी, क्षमा करना। आप किसी और युग की बातें कर रहे हैं। आज संसार में बहुत-कुछ परिवर्तन हो चुका है। विशेषतः सोशलिस्ट पार्टी की दिन-प्रतिदिन बढ़ती हुई शक्ति ने तो वातावरण को और भी परिवर्तित कर दिया है। आपके यह सब शस्त्र निकट-भविष्य में निर्मूल साबित होंगे। अब हमें कोई और ही तरीक़ा निकालना चाहिए।"

"फिर आप ही बतलायें कि क्या तरीका निकाला जाय ?" सेठजी ने चिन्तित स्वर में कहा।

"नरमी।"

"नरमी!" सेठ भानामल क्रोधित होकर बोले, "इन भूतों के साथ नरमी ? एक बार करके देखो; जो तुम्हें ये ज़मीन पर भी चलने-फिरने दें। इन लोगों का तो यही हाल है, 'लातों के भूत कभी बातों से नहीं मानते'।"

"क्षमा करना रायबहादुर साहब, आप ग़लत रास्ते पर जा रहे हैं। कोई ज़माना था जब लातों से भूत दूर हो सकते थे, पर आज वह समय है कि उनकी बातें हमें ध्यान से सुननी चाहिएं। यदि हम ऐसा न करेंगे, तो वह समय दूर नहीं जब कि भेंट-पूजा देकर हमें इन भूतों की खुशामद करनी पड़ेगी; समझे।"

"पंडितजी, समय आने पर मैं आपके इन सब विचारों को ग़लत साबित करके दिखा दूँगा।"

"ईश्वर ऐसे दिन कभी न लाये, सेठजी।"

"तो इसका तात्पर्य यह है कि आप मेरी इस बात से सहमत नहीं।"

"सबकी बात तो मैं नहीं कहता, पर कम-से-कम मैं तो आपकी इस बात से सहमत नहीं।"

टण्डन—"मैं तो लालाजी के चरण-चिह्नों पर चलने के लिए पूरी तरह से तैयार हूँ। यदि आज हमने उनके आगे झुकना प्रारम्भ कर दिया तो वे हमें चैन का एक साँस भी न लेने देंगे।"

"मैं भी यही चाहता हूँ।" सेठ गोयनका इतनी देर की चुप्पी के बाद लपककर बोले।

"और मैं भी यही।" चौधरी यूसुफ ने कहा।

"मैं भी तुम्हारे ही साथ हूँ।" मुन्शी ज्वालासहाय ज़रा ऊपर को देखते हुए बोले।

पण्डित धर्मदत्त को अपना कोई समर्थक न मिला। सबने ही राय-बहादुर की बात से सहमति प्रकट की।

इन सबने मिलकर एक विशेष योजना तैयार करने का निर्णय किया; जिसके द्वारा आने वाले विघ्न का विरोध अच्छी तरह किया जा सके।

इसके पश्चात् सभा विसर्जित हुई।

: २ :

राधे की गिरफ़्तारी ने मज़दूर-क्षेत्रों में हलचल मचा दी। बेचारे रहमत की तो मानो कमर ही टूट गई। रायबहादुर की मिल में काम करने वाले मज़दूरों को जब यह ख़बर मिली, तो सब दिल थामकर रह गए।

एक बूढ़े भिश्ती ने—जो दोपहर को मिल के क्लर्कों की रोटी पहुँचाने जाता था—सबसे पहले यह खबर मिल के मज़दूरों को आकर सुनाई। राधे की गिरफ़्तारी की घटना स्वयं उसने अपनी आँखों से देखी थी। विशेषतः जब उसने कामिनी की बात सुनाई तो मज़दूरों के हृदय फटने लगे।

छुट्टी का समय हुआ; मिल के बाहर निकलकर मज़दूर कई टोलियों में राधे की गिरफ़्तारी के विषय में भाँति-भाँति की बातें कर रहे थे, उनके चेहरे फक पड़े हुए थे। कई कह रहे थे कि अब मिल में हड़ताल कर दी जाय, पर कई बीच में ही किन्हीं भावी आपत्तियों का भय दिखलाकर हड़ताल के विरुद्ध बोल रहे थे।

उधर रहमत जब काफी देर बाद घर लौटा तो हवेली के बाहर ही उसे राधे की गिरफ़्तारी की खबर मिली। वह उल्टे पाँव पीछे लौट पड़ा और फिर जेल के फाटक पर जाकर ही साँस ली। पर सारे दिन प्रयत्न करने पर भी जब मुलाक़ात न हो सकी, तो शाम को निराश हो कर घर लौटा। घर पहुँचकर उसने कामिनी को बेहोश पाया।

वह घबराकर अनवरी से कहने लगा कि "सवेरे से ही लड़की को होश नहीं आया, क्या होगा ?"

अनवरी, जो कामिनी के सिरहाने की ओर उदास मुँह से बैठी हुई उसके मुँह की ओर एकटक देख रही थी, बोली, "दवा-दारू की कोई चिन्ता करो। खड़े-खड़े क्या देखते हो ? क्या बिना दवा के ही लड़की को मारना चाहते हो ? तुम्हारी प्रतीक्षा करते-करते तो यह समय हो गया।"

"क्या करूँ फिर ?" रहमत ने सहमी हुई दृष्टि से एक बार कामिनी की ओर और फिर अनवरी की तरफ देखकर कहा, "सवेरे मैं इसीलिए बाज़ार गया था कि कहीं से कुछ पैसे उधार ही मिल जायं, पर सब तरफ से जवाब ही मिल गया। अब खैराती अस्पताल में ही इसे लिये जाता हूँ।"

"इस समय ले जाने योग्य नहीं है।" अनवरी ने कामिनी की नब्ज़ टटोलते हुए कहा, "जाकर किसी डाक्टर को यहाँ बुला लाओ।"

रहमत के दिल में फिर वही पहला प्रश्न उठा, "और फीस ?" पर उसके कुछ कहने से पूर्व ही अनवरी ने कामिनी के सिरहाने के नीचे से एक मैली पोटली निकालकर उसके हाथ में थमा दी, "लो इसे ले जाओ, जल्दी आना, ऐसा न हो कि देर हो जाय।"

बिना एक भी बात किये रहमत चुपचाप घर से बाहर हो गया। उसका रोम-रोम अपनी पत्नी अनवरी को धन्यवाद दे रहा था। वह रह-रहकर ठण्डे साँस छोड़ता हुआ कहता जा रहा था, "खुदा रहम करना।"

मार्ग में उसने वह पोटली खोलकर देखी। उसमें चाँदी की दो चूड़ियाँ, कुछ छल्ले, एक टूटी हुई हँसली और एक जोड़ा कान की बालियाँ थीं।

सर्राफा बाज़ार से जब रहमत लौटा तो अँधेरा हो गया था।

यद्यपि उसने बड़ी अन्यमनस्कता से काम किया था, जो कुछ किसी ने दिया, लेकर लौटना चाहता था, पर तौलते-तुलाते काफी देर हो गई।

❀ ❀ ❀ ❀

डाक्टर ने नाड़ी देखी। आँखों की पलकें पलटकर देखीं। नाड़ी देखते-देखते उसकी दृष्टि कामिनी की बाँह पर खुदे हुए कुछ हिन्दी के अक्षरों पर पड़ गई। यह कामिनी का नाम था।

नाम को पढ़कर डाक्टर हैरान हो गया। वह अनवरी तथा रहमत की ओर देखकर बोला, "यह लड़की तो हिन्दू है।"

"हाँ जी" कहकर रहमत ने कामिनी के विषय में सारी व्यथामयी कथा डाक्टर को कह सुनाई। पर डाक्टर के मस्तक की सलवटें बतला रही थीं कि उसे अभी तक सन्तोष नहीं हुआ।

दोनों स्त्री-पुरुष बड़ी उत्सुकतापूर्वक, साथ ही भयभीत होकर डाक्टर से प्रश्न कर रहे थे, "इसे कब तक होश आयगा, जान का तो कोई खतरा नहीं, इसका मुख इतना पीला क्यों पड़ गया है?"

डाक्टर ने किसी भी बात का उत्तर नहीं दिया, पता नहीं, वह क्या सोच रहा था और प्रश्नों का उत्तर देने के स्थान में उसने उलटे प्रश्नों की भरमार प्रारम्भ कर दी, "और तुमने इसे अपने पास क्यों रख छोड़ा है? किसी हिन्दू के हवाले नहीं कर सकते थे; अपने घर खिला-पिलाकर तुम इसका धर्म नष्ट करना चाहते हो।" (रहमत की ओर देखकर) "अच्छा, मेरे साथ चल, दवाई दिये देता हूँ। पर इस विषय में कुछ करना अवश्य पड़ेगा। मैं स्थानीय हिन्दू-सुधारक-सभा का सदस्य हूँ। एक हिन्दू लड़की को मुसलमानों के अधिकार में रहने देना मेरे लिए असह्य है।"

डाक्टर की उपर्युक्त बातों ने अनवरी के हृदय पर भयंकर आघात किया, रहमत का भी यही हाल था। दोनों के दिल की धड़कन एक

ही साथ चल रही थी, उनसे एक ही स्वर निकल रहा था—"कामिनी हमसे छिन गई समझ लो।"

रहमत ने कोई उत्तर नहीं दिया, पर अनवरी से न रहा गया। वह बोली, "आप क्या कह रहे थे, हमें तो यह लड़की पेट से जन्मी सन्तान से भी बढ़कर प्रिय है। आप हवेली वालों से पूछकर देखें—इसका पिता जाता हुआ इसको मुझे सौंप गया है। मेरे पति और उसके पिता अभिन्न मित्र हैं। आप···"

बीच में ही डाक्टर बोला, "अच्छा देखा जायगा।" (रहमत से) "चल भई, दवा ले आ मुझसे।" और झटपट बाहर हो गया। पीछे-पीछे उसका हैंड-बेग उठाये रहमत जा रहा था।

: ३ :

मज़दूरों की ओर से अभी तक कोई निश्चित पग नहीं उठाया गया। रायबहादुर सेठ भानामल ने भी कदाचित् अपनी योजना कुछ दिनों के लिए स्थगित कर दी प्रतीत होता है। हवेली खाली कराने की आज्ञा भी अभी तक है। गैरहाज़िर मज़दूरों के विषय में भी कोई विशेष सूचना नहीं निकली। अग्नि न तो भाड़ के समान भड़की ही है और न उसके बुझ जाने की ही सम्भावना है।

प्रतिदिन की भाँति आज भी रायबहादुर की मिल का पहला भोंपू बजा। फिर दूसरा, और इसके बाद तीसरा। परन्तु मिल में रोज़ाना जैसी चहल-पहल न थी। बहुत कम संख्या में मज़दूर काम पर आये थे और वे भी दुविधा में फँसे हुए थे। मिल के बाहर मज़दूरों और तमाशबीनों की भीड़ जमा होती जा रही थी। पुलिस के सिपाही भी बाहर तैनात थे।

यह रंग देखकर मैनेजर के होश गुम हो गए और उसने सेठजी को फोन द्वारा सारी परिस्थिति से अवगत कराया। उत्तर में राय-

साहब ने कहा, "यदि आधे आदमी भी काम पर आ गए हों, तो कोई चिन्ता नहीं। फाटक बन्द करके काम प्रारम्भ कर दो। किसी को अन्दर से बाहर और बाहर से अन्दर न आने-जाने दिया जाय।" मैनेजर ने सेठजी की आज्ञा का पालन किया।

काम शुरू हो गया।

फाटक बन्द कर दिया गया।

बाहर के मज़दूरों का साहस टूटने लगा। उन्हें इस बात की आशा नहीं थी कि सहसा इतने व्यक्ति काम पर चले जायंगे। अन्दर के मज़दूर भी धैर्यपूर्वक नहीं थे। वे भी घड़ी-घड़ी खिड़कियों और रोशन दानों में से बाहर की परिस्थिति को देख रहे थे।

मिल की मशीन चले अभी कोई एक घण्टा ही हुआ था कि बाहर अचानक—'इन्कलाब जिन्दाबाद' और 'रायबहादुर भानामल मुरदाबाद' के नारे लगने प्रारम्भ हो गये। मिल का बाहरी मैदान जनता से भरना प्रारम्भ हो गया।

अन्दर वे सब मज़दूर इस गगन-भेदी शब्द को सुनते ही काम छोड़कर खिड़कियों पर आकर खड़े हो गए। अधिकारियों ने इस दशा में किसी को रोकना उचित न समझा।

भीतर के मज़दूरों ने देखा कि दूर से मज़दूरों का एक भारी जत्था चला आ रहा है। उनके आगे एक नव-निर्मित नेता नारे लगाता हुआ आ रहा है।

यह रहमत था।

मैदान में आते ही उसने गला फाड़-फाड़ कर कहना प्रारम्भ किया, "मज़दूर भाइयो, मुझे बोलना नहीं आता। मैं एक बिना पढ़ा-लिखा आदमी हूँ। पर इस समय जो अग्नि मेरे हृदय में सुलग रही है, उसके दर्शन आपको भी कराता हूँ। राधे ने क्या अपराध किया था? उसने तुम्हारे दुःखों का वर्णन किया था, उसने किसी का अपमान भी

नहीं किया था। हमारे मालिक ज़बरदस्ती ही उस बेचारे के पीछे पड़ गए। उसको पकड़ कर जेल में बन्द करा दिया। ज़रा उसकी लड़की की हालत तो जाकर देखो, उसी समय से वह बेहोश पड़ी है। पता नहीं जियेगी या मरेगी! दवा-दारू के लिए पैसा नहीं, पानी तक देने वाला उसके घर में कोई नहीं। वह यों ही तड़प-तड़प कर मर जायगी।

"मैं कहता हूँ—यदि आप संगठन से नहीं रहेंगे तो आप सबकी भी यही अवस्था होकर रहेगी। अभी दो ही वर्ष बीते हैं। जब आप सबने एक संगठित हड़ताल की थी, तब आपकी सभी मांगें मंजूर कर ली गई थीं। परन्तु तब की उदारता आज हम पर अत्याचार के रूप में प्रकट हो रही है। आप में जितने भी व्यक्ति तनिक भी स्वाभिमान रखते हैं, उन सबको मिल-मालिक कभी पाँच, कभी दस, कभी बीस करके पृथक् करते रहेंगे। भाइयो, आज पिछली सब बातों को भूलकर इकट्ठे हो जाओ और अपने मालिकों से कह दो—हम इकट्ठे ही जियेंगे, इकट्ठे ही मरेंगे। फिर देखना कि कौन आपकी ओर क्रूर दृष्टि से देखने का साहस कर सकता है......।"

भीड़ में से और साथ ही मिल के अन्दर से भी बड़े ज़ोर की आवाज़ें सुनाई दीं, "हम इकट्ठे ही जियेंगे और इकट्ठे ही मरेंगे। हमें कोई भी शक्ति अलग नहीं कर सकती।"

रहमत बोलता गया, "भाइयो, यह सब आपकी कहने की ही बातें हैं, यदि कुछ करके दिखाओ तो विश्वास हो।"

फिर आवाज़ें आईं, "हम सब-कुछ करने को तैयार हैं।"

रहमत—"करना-कराना इसमें क्या है, जबतक सब इकट्ठे नहीं होते। आप में से आधे तपती धूप में खड़े भुन रहे हैं और आधे अन्दर कैदियों की तरह बन्द हैं। तोड़ दो फाटक को, और हो जाओ इकट्ठे। और फिर सभी जी खोलकर छाती-से-छाती मिलाकर एक बार कहो—"हम इकट्ठे जियेंगे और इकट्ठे मरेंगे।"

भीतर और बाहर की आवाज़ें टकराईं, "हम सब एक हैं, दुनिया की कोई भी शक्ति हमें अलग नहीं कर सकती। हम इकट्ठे जियेंगे और इकट्ठे ही मरेंगे।" और इसके साथ ही मिल का फाटक अररा कर टूट गया। दूसरे ही क्षण मिल के अन्दर शून्य का साम्राज्य था और बाहर अपार जन-समूह उमड़ रहा था। ६ हज़ार मज़दूरों का समूह एकत्रित हो गया।

इधर यह हो रहा था, उधर मिल के आफिस में फोन-पर-फोन खटक रहे थे।

रहमत के भाषण ने और भी कई मज़दूरों पर जादू का-सा प्रभाव किया। अब यह भीड़ एक जलसे की शक्ल में बदल गई। बीच का स्थान खाली करके बोलने के लिए एक ऊँचा-सा मंच बना लिया गया। पुलिस के सिपाही इस जन-समूह के चारों ओर घूमते हुए किसी सरकारी आज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे थे।

सबका ध्यान सामने की सड़क की ओर गया, उन्हें 'घूँ-घूँ' करती एक कार आती दिखाई दी।

कार सभी की पहचानी हुई थी। उसे देखकर भीड़ में एक बार घोर निस्तब्धता छा गई। रायबहादुर कार से उतर कर प्रलयंकारी क्रोध के साथ काँपते घेरा तोड़कर मंच पर जा पहुँचे। उनके साथ पाँच-छः व्यक्ति और भी थे। वही उस दिन वाले उनके पैसे से ख़रीदे हुए गुर्गे।

रायबहादुर के हाथ में चमड़े का एक हंटर था। उसको सनसनाते हुए कड़ककर बोले, "चले जाओ......बदमाशो...नमक हरामो...... कौन है तुम्हारा नेता......उसको ज़रा देखूँ मैं अच्छी तरह ?"

"रहमत, रहमत है हमारा नेता" एक साथ कई आवाज़ें आईं।

"क्यों बे धूर्त !" रायबहादुर ने रहमत की ओर आँख निकाल कर कहा, "राधे के बाद अब तू उसका उत्तराधिकारी बना है।...निकालूँ तेरी लीडरी ? बोल।"

"सेठजी" रहमत ने सामने ज़रा तनकर कहा, "जबान सँभाल कर बोलो ज़रा।"

बात अभी उसके मुँह से अच्छी तरह निकल भी न पाई थी कि रायबहादुर का हंटर उसकी पीठ पर तड़ातड़ बरसना शुरू हो गया।

रायबहादुर पर सारी भीड़ एक साथ आक्रमण करना ही चाहती थी कि मार खाते हुए रहमत ने चिल्लाकर कहा, "भाइयो, खबरदार यदि हाथ उठाया तो मेरा लहू पियोगे, इनको अपनी मर्ज़ी पूरी कर लेने दो।"

उठे हुए हाथ एकदम नीचे झुक गए। आँखों से निकलती हुई लपटें धीमी पड़ गईं।

रहमत गिर पड़ा। फिर भी हंटर ज्यों-का-त्यों बरसता रहा और जबतक रायबहादुर का हाथ थक न गया, तबतक हंटर बरसता ही रहा।

रहमत बेहोश हो गया।

मार-मार कर हाँफते हुए रायबहादुर साहब भीड़ को चीरते हुए मिल के आफिस में जा पहुँचे।

मज़दूरों ने रहमत के बेहोश शरीर को चारपाई पर रख लिया और एक भारी जलूस की शक्ल में शहर के प्रमुख बाज़ारों में फिराया।

छः हज़ार हृदय एक ही लड़ी में गुँथे थे, और एक ही स्वर के साथ धड़क रहे थे।

: ४ :

रायबहादुर ने यह स्वप्न में भी न सोचा था कि यह घटना इतनी जल्दी भीषण रूप धारण कर लेगी। उनकी यह धारणा थी कि उनके रौब तथा क्रोध के कारण यह काम सफल हो जायगा। पर हुआ इसके बिलकुल विपरीत। विशेषतः रायबहादुर ने रहमत पर हाथ छोड़कर जो

ग़लती कर दी थी, उसने तो इस समस्या को और भी पेचीदा बना दिया। सारे शहर में हाहाकार मच गया। शहर की देश-भक्त सभा-समितियों की सहानुभूति मज़दूरों के पक्ष में थी। रायबहादुर के प्रति सब ओर घृणा प्रदर्शित की जाने लगी—उनके लिए कोठी से बाहर निकलना कठिन हो गया।

इसका परिणाम यह हुआ कि मज़दूरों का यह आंदोलन केवल रायबहादुर की मिल तक ही सीमित न रहकर और भी विस्तृत तथा भयंकर रूप धारण कर गया। दूसरी मिलें भी इसके जादू के प्रभाव से बच न सकीं। केवल चौधरी यूसुफ के कारख़ाने के मज़दूर ही उनकी कुटिल नीति के कारण सम्मिलित न हो सके।

इसी दिन सायंकाल श्रद्धानंद-पार्क में मज़दूरों की एक विराट् सभा हुई, जिसमें सारे शहर के मज़दूरों तथा जनता ने भारी संख्या में उत्साहपूर्वक भाग लिया। भरी सभा में रहमत का लहू-लुहान शरीर नंगा करके दिखाया गया। जनता विक्षुब्ध हो उठी। प्रत्येक ने रायबहादुर के इस घृणास्पद कृत्य की ज़ोरदार निन्दा की।

मिल में पूर्ण हड़ताल हो गई, पर यह हड़ताल मज़दूरों को भी मंहगी पड़ी। उनके तीन महीने वेतन रुके हुए थे। किसी के भी घर खाने-पीने को नहीं था। बेचारों ने अपनी सफलता की आशा में ये महीने किसी भाँति बिताये थे। किसी के पास यदि दो-चार पैसे रखे भी थे, तो वे भी इन दिनों में समाप्त हो गए थे। उधार ले-लेकर खाना प्रारम्भ किया; पर पिछले पैसे वापस किये बिना कब तक कोई उधार देता। महाजनों ने मुँह मोड़ लिया। साथ ही उनके दरवाज़ों पर रात-दिन तक़ाज़े वालों की भीड़ रहने लगी।

बेचारे मज़दूर न आगे के रहे, न पीछे के। पर हालत ज्यों-ज्यों बिगड़ती जाती थी त्यों-त्यों रायबहादुर के अत्याचार कम न होकर बढ़ ही रहे थे। उनको यह भली-भाँति विदित था कि इस हीन परिस्थिति

में मज़दूर चार दिन भी नहीं बिता सकते। उनको सोलहों आने विश्वास था कि पाँच-सात दिन में हड़ताल सबका काफिया तंग कर देगी और अन्त में भूखे मज़दूर स्वयं ही उनके पैरों में आ झुकेंगे। उनकी यह निश्चित धारणा थी कि यदि मैंने इस समय ज़रा भी ढील से काम लिया तो मज़दूर सिर पर सवार हो जायंगे।

यही कारण था कि जब शहर के कुछ गण्यमान्य व्यक्ति मिलकर रायबहादुर के पास परिस्थिति को सुलझाने गए तो उन्होंने बार-बार यही कहा कि चाहे जो-कुछ हो, परन्तु मैं इस समय झुकने के लिए बिलकुल भी तैयार नहीं। न ही इस विषय में वे किसी डेपुटेशन के साथ कोई बातचीत करने को ही उद्यत थे। साथ ही उन्होंने यह भी धमकी दे दी कि वे तीन महीनों के लिए मिल बन्द करके पहाड़ पर चले जायंगे।

डेपुटेशन निराश लौटा। मज़दूरों तक भी समाचार पहुँच गया। सबने मरने का दृढ़ निश्चय कर लिया और सर्वसम्मति से मिल के सामने जब तक पूर्ण हड़ताल जारी रखने का निश्चय कर लिया, जब तक कि उनका साढ़े तीन मास का वेतन न दे दिया जाय।

: ५ :

डाक्टर की दवा से कामिनी को कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। बेहोशी तो दूर हो गई, परन्तु ज्वर ज्यों-का-त्यों था। बेचारी अनवरी दुहरी विपत्ति में फँसी थी। एक तो कामिनी, जिस पर उसका मातृवत् स्नेह था, बीमार थी, दूसरे उसके पति की खाट भी उसके बराबर ही लग गई।

रहमत वैसे तो देखने में तगड़ा जवान प्रतीत होता था, पर मार के घावों के कारण उसका सारा शरीर फटा जा रहा था। हजारों मज़दूर उसको रक्षार्थ तैयार थे, हर बात की देख-भाल और उपचार पूछे

ध्यान से किया जा रहा था, पर अनवरी के हृदय की कौन जान सकता था ? उस पर हर समय क्या बीत रही थी ! वह रह-रह कर मन में कहती—"पता नहीं क्या होने वाला है !" उस दिन वाली डाक्टर की बातों ने तो उसकी रही-सही चेतना भी हर ली थी। वह सोचती—"क्या कामिनी मुझसे छीन ली जायगी ? और इससे अलग होकर क्या मैं जीवित रह सकूँगी ?"

रात के बारह बजे का समय था। सारा वातावरण शान्त था। सभी कोठरियों के आगे खाटों की कतारें लगी हुई थीं। रात्रि का प्रथम पहर तो भीषण गर्मी तथा उमस के कारण सबने जागकर बिताया था, पर अब कुछ-कुछ हवा मिलने से नींद आ गई थी।

रहमत की खाट बाहर दरवाजे के आगे थी, पर अनवरी को अन्दर ही रात काटनी पड़ी। वह भी सोकर नहीं, बैठकर—कामिनी के सिरहाने बैठकर। रहमत को भी अभी ही नींद आई थी। सारी रात वह भयंकर टीस से कराहता रहा था या घड़ी-घड़ी उठकर कामिनी की खाट तक फेरे लगाता रहा था।

सरसों के तेल का दीपक उसकी कोठरी में जल रहा था। प्रकाश कम हो जाने के कारण अनवरी ने बत्ती ऊँची की। इस समय वह तारे गिनने में व्यस्त थी।

बत्ती ऊँची करके वह कामिनी की खाट के समीप आई, कामिनी को उसने जागृतावस्था में पाया। वह उसके दोनों कन्धे पकड़कर, मुँह पास में ले जाकर बोली, "कामो !"

"चाची" कामिनी ने कुछ धीमी आवाज़ में कहा, "आ मेरी बच्ची।" कहकर उसने कामिनी का सिर अपनी गोद में रख लिया।

"चाची, बाबूजी कहाँ हैं ?" कदाचित् कहते-कहते उसे ध्यान आया कि यह कोई सपना देखकर जागी है।

"दिन निकलने पर बाबूजी आ जायंगे।" अनवरी ने उसका मस्तक चूमकर कहा।

"और चाचा कहाँ है?"

"वह देख, बाहर सोये हुए हैं।" कहकर ज्यों ही अनवरी ने बाहर देखा—रहमत अन्दर की ओर आ रहा था। शायद कामिनी की आवाज़ से वह जाग गया था।

"यह देख, मैं अपनी बेटी के पास खड़ा हूँ।" रहमत ने पूरे प्रयत्न से अपने दुःख को कामिनी से छिपाने का प्रयत्न करते हुए कहा।

"चाचा, मेरे पास आओ।" कहकर कामिनी ने उसकी ओर देखा और फिर बोली, "चाचा, बाबूजी नहीं आयंगे?"

अनवरी के पास से कामिनी का सिर अपने घुटनों पर लेकर, उस पर हाथ फेरता हुआ रहमत बोला, "बेटी, घबरा मत, तेरे बाबूजी जल्दी ही आ जायंगे।"

"चाचा, वे कहाँ होंगे—जेल में?" कामिनी ने भारी आवाज़ में कहा।

रहमत उसका कुछ भी उत्तर न दे सका। उसकी आँखें डबडबा आईं।

"सो जा बेटी, शोक न कर, खुदा सब भला करेगा। लेट जा, अच्छी तरह।" कहकर रहमत अनवरी से कहने लगा, "जरा तू भी बाहर खाट पर लेटकर कमर सीधी कर ले, तमाम रात बैठे रहने से थकान हो गई होगी। यदि तू भी बीमार पड़ गई तो इस लड़की की कौन खबर लेगा?"

रोकते-रोकते भी अनवरी के मुँह से निकल ही गया, "हम अभागों के पास इसे कौन रहने देगा?"

"पागल मत बन, कैसी अशुभ बातें कर रही है!" और रहमत ने उसे आँख के संकेत से समझाया कि कामिनी के आगे इस अशुभ

प्रकरण को न छेड़े। पर कामिनी के मोह में उन्मत्त अनवरी को कुछ भी न सुनाई दिया। उसके रुके हुए धैर्य का बाँध टूट पड़ा और वह रो-रोकर कामिनी को बार-बार चूमने लगी।

कामिनी को यह बात, और रो-रोकर अनवरी के मुँह चूमने का रहस्य, समझ में न आया। वह अपने कमज़ोर, पीले हाथों से अनवरी के आँसू पोंछती हुई बोली, "मैं कहाँ जाऊँगी चाची, तुम्हें छोड़कर। चाहे कुछ भी हो जाय, पर मैं तुझे छोड़कर नहीं जाऊँगी।"

"तू तो नहीं जायगी, पर···" वह चुप हो गई। बात करते-करते अनवरी के इस चुप हो जाने के कारण कामिनी सन्देह में पड़ गई।

बार-बार उसके पूछने और रहमत के रोकते रहने पर भी अनवरी ने डाक्टर वाली बातें उसको विस्तार से कह दीं।

कामिनी कुछ भी न समझ सकी, न वह और कुछ पूछ ही सकी। वह रो रही थी।

रहमत ने फिर अपने वाक्य दुहराये, पर अनवरी ने एक ही बात कहकर उसे निरुत्तर कर दिया, "जो दो घड़ी हैं, वह तो इसके साथ बैठकर काट लेने दो। कहीं मैं मर तो नहीं जाऊँगी। जाओ, तुम अपनी खाट पर जाकर सो रहो।"

रहमत ने फिर कुछ न कहा। उसकी पीठ पीड़ा से फटी जा रही। टूटे हुए दिल से वह अपनी खाट पर जाकर लेट गया।

\+ \+ \+

प्रातःकालीन दिनकर की प्रथम सुनहली किरण रहमत के मुख पर पड़ी। वह उठा। ज़रा-सी झपकी लग जाने के कारण उसे अपनी तबियत कुछ हल्की जान पड़ी। पीड़ा भी कुछ कम हो गई थी।

कामिनी की ख़बर लेने के लिए वह अन्दर गया। दोनों अभी सो रही थीं। चारों हाथों ने दो शरीरों को इस प्रकार जकड़ रखा था

कि मानो दोनों को एक-दूसरे से बिछुड़ जाने का भारी भय है। वे नींद का मधुर आनन्द ले रही थीं।

रहमत ने धीरे से कामिनी की नब्ज़ देखी ज्वर रात से कुछ कम था।

प्यार के अथाह सागर में आकण्ठ-निमग्न दोनों चेहरों को देखते-देखते रहमत को काफी देर हो गई। इस स्वर्गीय सम्मेलन ने रहमत के दुःख को कुछ देर के लिए हल्का कर दिया। वह एक अपूर्व आनन्द का अनुभव कर रहा था।

अकस्मात् उसका यह सुख-स्वप्न भंग हो गया, जब बाहर कोई कोलाहल उसे सुनाई दिया, "खाली करो, झटपट खाली करो, सब कोठरियों को एकदम खाली करो!"

वह घबराकर जल्दी से बाहर निकला।

सारी हवेली में कुहराम मचा हुआ था और सब तरफ "खाली करो, खाली करो" की आवाज़ें आ रही थीं।

"आह खुदा अब कहाँ जायं?" उसके मुँह से एक दर्द-भरी चीख़ निकल पड़ी।

पुरुषों के कहने-सुनने, लाख खुशामद करने तथा अबला स्त्रियों के रोने-चिल्लाने के बावजूद भी रायबहादुर के आदमियों ने कोठरियों से सामान निकाल-निकाल कर बाहर फेंकना प्रारम्भ कर दिया।

सामान बाहर फेंकने वाले तीस-चालीस व्यक्ति थे और इतनी ही कोठरियाँ। फिर ग़रीबों के घर में सामान ही कितना होता है कि जो एक-एक आदमी को कोठरी खाली करने में बहुत समय लगता।

रहमत ने बिना कुछ कहे अन्दर जाकर अनवरी को जगाया, कामिनी को अनवरी ने उठा लिया और रहमत ने उसकी खाट उठा ली और बाहर खुले आकाश के नीचे लाकर बिछा दी। कपड़ा बिछाकर उसे लिटा दिया गया।

दोनों आँखें एकटक दृष्टि से सब व्यापार देख रही थीं। रहमत हवेली के उस भाग में चला गया, जहाँ कुछ मज़दूर रायबहादुर के आदमियों से झगड़ रहे थे। जाकर सबको चुप तथा शान्त रहने की चेतावनी देकर वह दर्द-भरी आवाज़ में बोला, "घबराते क्यों हो, कर लेने दो, जो करते हैं। यदि खुदा को हमारा इस दुनिया में रहना मंजूर नहीं है तो तुम ज़बर्दस्ती क्यों करते हो? आशा लगाये रहो उसकी, देखते जाओ, जो होता है।"

फिर किसी ने कुछ न कहा।

थोड़ी देर में सब कोठरियाँ खाली हो गईं। हर एक में ताला लगा दिया गया और रायबहादुर के आदमी वापस चले गए। छोटे-छोटे चिथड़ों, मिट्टी के बर्तनों और टूटी-फूटी खाटों से सारा मैदान भर गया। मज़दूर, उनकी स्त्रियाँ व बाल-बच्चे विषाद-भरी दृष्टि से यह सब देख रहे थे।

◆

चौथा भाग

अन्तर्द्वन्द्व

: १ :

रायबहादुर के पुत्र शेखर के गुण, कर्म और स्वभाव की तुलना यदि रायबहादुर से की जाय तो ज़मीन-आसमान का अन्तर प्रतीत होगा। कदाचित् इसका प्रमुख कारण यह है कि शेखर का सारा जीवन अपनी पुण्य-श्लोका माता से अधिक प्रभावित हुआ है।

पुराने विचारों की महिला होने के कारण पार्वती नई सभ्यता से बहुत कम प्रभावित हो सकी है। इतना होते हुए भी उसने अपने मुख से पति के विरुद्ध एक शब्द भी कभी नहीं कहा। उसके जीवन का एक-मात्र उद्देश्य है पति-भक्ति; यह बात दूसरी है कि इस अन्ध-पति-भक्ति ने उसकी सारी ज़िन्दगी को शूलों की शय्या बना दिया है। पत्नी की ओर से पूरी स्वच्छन्दता मिलने के कारण रायबहादुर ऐशो-आराम के अथाह सागर में तेज़ी से बहते चले जा रहे हैं, पर तो भी पार्वती की सन्तुष्टि में कोई इतना भारी अभाव नहीं। वह उन महिलाओं में है, जो पति की प्रत्येक उचित-अनुचित आज्ञा को ईश्वरीय सन्देश समझती हैं।

पार्वती के स्वभाव की कोमलता, वाणी में माधुर्य और व्यवहार की उदारता ने घर के नौकरों के अतिरिक्त पशुओं तक को मन्त्र-मुग्ध किया हुआ है। यदि उसके प्रभाव से कोई बचा है तो वह केवल उसके पतिदेव, जो प्रतिक्षण 'ओल्ड फैशन्ड' और 'अनकल्चर्ड' कह-कहकर उसका तिरस्कार करते रहते हैं।

पुरानी सभ्यता से प्रभावित होते हुए भी पार्वती ने कभी अपनी पुरातनता का हठ नहीं किया और न कभी नवीनता पर नाक-भौं ही सिकोड़ी। उसने अपने सारे आचरण, कामना तथा आवश्यकताएं पति-भक्ति में ही भुला दी हैं। इतना होते हुए भी वह अपने पति के अन्य-मनस्क तथा मनोरंजन-प्रिय स्वभाव को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकी।

पार्वती की आयु इस समय चालीस से कुछ अधिक ही होगी, पर अभी तक उसके किसी भी अंग पर वृद्धावस्था का चिह्न स्पष्ट प्रकट नहीं होता। उसके शारीरिक गठन में अभी तक यौवन का मादक स्फुरण है। उसके चेहरे का रंग तपे हुए सोने जैसा है। उसकी मृदु तथा मोहक मुस्कान में तो मानो दया, स्नेह तथा त्याग के भाव स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं।

उसका पति क्योंकि प्रायः रोगी तथा उद्विग्न रहता है, इसलिए वह हर समय उसकी सेवा में ही लगी रहती है। वैसे पति की ओर से उसे इस एकनिष्ठ सेवा के बदले गाली तथा अप्रसन्नता के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता।

कभी-कभी पार्वती के धैर्य का बाँध टूट जाता है, जबकि वह पति के द्वारा अपने निर्दोष नौकरों का अपमान होता देखती है।

ऐसा प्रतीत होता है कि ये नौकर अजीब मिट्टी के बने हैं जो अपने मालिक के हर समय के तिरस्कार तथा फटकार से भी तंग नहीं आते। परन्तु इसका कारण भी पार्वती थी। मालिक के पास से अनादृत और तिरस्कृत हुए नौकरों को जब मालकिन के सहानुभूति तथा प्यार में सराबोर दो-चार शब्द प्राप्त हो जाते तो उनके हृदय तथा मस्तिष्क की सारी वेदनाएं दूर हो जातीं थीं। वे अपने तिरस्कार को भूलकर फिर उसी नवीन उत्साह तथा प्रेम से काम-काज में लग जाते।

पार्वती का कद मँझला और शरीर कुछ भारी है, परन्तु है गठीला

तथा स्फूर्ति से ओत-प्रोत। उसके विस्तृत ललाट पर प्रतिक्षण एक अद्भुत तेज दृष्टिगोचर होता है। उसका प्रत्येक शब्द थोड़ी-सी मुस्कराहट लिए मुँह से निकलता तथा दृष्टि में एक विशेष माधुर्यमयी लचक रहती।

इसी सौभाग्यवती महिला के गर्भ से शेखर ने जन्म लिया था

शरीर की लम्बाई के अतिरिक्त और सब विशेषताएं शेखर ने माँ के जीवन से ही प्राप्त की प्रतीत होती हैं। वह छरहरे बदन का नवयुवक है। मुखाकृति, स्वभाव तथा अन्य शारीरिक विशेषताओं को देखते हुए यह कहते अत्युक्ति न होगी कि वह अपनी माँ की ही प्रतिकृति है। उनके स्वभाव में इतना अन्तर तो अवश्य है कि माँ की अपेक्षा शेखर कुछ अधिक गम्भीर है। वह प्रत्येक बात को समझकर उसके परिणाम पर पहुँचने का प्रयत्न करता है। यह बात धनी वर्ग के व्यक्तियों में बहुत कम देखने को मिलती है; क्योंकि चिन्तन करने, किसी वस्तु के चरम परिणाम तक पहुँचने की क्षमता प्रकृति ने धनिकों को न देकर निर्धनों को ही दी है।

शेखर अपने इतने बड़े परिवार में अकेला ही लड़का है। सुख के वैभवपूर्ण क्षणों में, नौकर-चाकरों की छाया में खेलते हुए उसने अपने जीवन के बीस-बाईस वसन्त व्यतीत किये हैं। अभी तक स्कूल और कालेज की निर्जीव पुस्तकों से ही उसका सम्बन्ध अधिक रहा है। आश्चर्य की बात है कि असीम वैभव में पले हुए शेखर में यह गरीबों वाली आदत—चिन्ता करने की कहाँ से आ गई। उसे अपने पाठ्यक्रम की पुस्तकों के वे अनुच्छेद, जिनमें किसी दुखी की व्यथा का सजीव चित्रण होता था, आज भी ज्यों-के-त्यों कण्ठस्थ हैं। वह यदा-कदा अपने एकाकी जीवन में उनको दुहरा लिया करता है।

पिछले कई दिनों से शेखर का चित्त अत्यन्त उद्विग्न है। वह ज्यों-त्यों रायबहादुर के कारनामे तथा मज़दूरों की हड़ताल के समाचार

सुनता है, त्यों-त्यों उसके अन्तस्तल में सहस्रों बिच्छुओं के दंशन की पीड़ा का अनुभव होता है। यदा-कदा शून्य में बैठकर वह रो भी लेता है। इससे अधिक वह कर ही क्या सकता है? वह उस माँ का बेटा है, जिसने विवाह के दिन से लेकर आज तक कभी भी अपने पति के सम्मुख ज़बान तक नहीं खोली। वह उसी माँ के खून से बना हुआ है। वह सब-कुछ देखता है, सुनता है, पर खून के घूँट पीकर चुपचाप ही सह लेता है।

मध्याह्न का एक बजने वाला है। भोजन का समय व्यतीत हो चुका है, पर पार्वती अभी तक कोठी के बरामदे में भूखी ही टहल रही है। रह-रह कर उसकी निगाह कोठी के बाहर जाने वाली सड़क पर जाती है, तुरन्त फिर अन्दर जाकर रसोइए से कहती है—"चूल्हे में आग बुझ न जाय।" और फिर अपने मन-ही-मन कहती है—"कहाँ चला गया, सवेरे ही से बाहर गया हुआ है—न रोटी, न पानी?"

वह फिर बाहर निकली, पर अबकी बार उसे निराश न लौटना पड़ा। शेखर धीरे-धीरे कोठी में आ रहा था। उसकी चाल धीमी, मुख-मंडल विषाद से परिपूर्ण तथा आँखें सजल थीं।

पार्वती ने बाहर से ही रसोइए से कहा, "तवा रख दे, मैं आई।"

सम्पन्न परिवार की गृहिणी होते हुए भी पार्वती अपने पति तथा पुत्र को स्वयं ही भोजन बनाकर खिलाती थी।

इस बात के उत्तर में एक साथ ही दो आवाज़ें आईं, एक अन्दर से और दूसरी बाहर से। अन्दर से "अच्छा जी, रख दिया।" बाहर से शेखर ने खिन्न स्वर में कहा, "माता जी, मेरे लिए रोटी न बनाना, आज तबिअत ठीक नहीं।"

शेखर की आवाज़ में एक भय-मिश्रित उद्विग्नता तथा कम्पन निहित था और आँखों में आँसू डबडबा रहे थे।

वह जो-कुछ बाहर से सुनकर आया था, संक्षेप में माता को सुना दिया। पार्वती पहले ही यह सब सुन चुकी थी।

शेखर से पुनः भोजन के लिए आग्रह करने का पार्वती को साहस नहीं हुआ।

दोनों चुप थे, स्तब्ध तथा मूक-चित्रवत्।

चारों आँखें सजल थीं।

"माता जी" शेखर ने निस्तब्धता भंग करते हुए कहा, "मैं पिता जी से मिलना चाहता हूँ।"

"किस लिए ?" उसके कथन का आशय समझते हुए भी पार्वती ने प्रश्न किया।

"उनसे इस विषय में कुछ पूछना चाहता हूँ।"

"न बेटा, ऐसा न करना।"

"माता जी, अब मेरे धैर्य का बाँध टूट चुका है। यदि अब भी आप पूछने की आज्ञा न देंगी तो मेरा जीवन सुरक्षित नहीं।

बेटे के पिछले शब्दों ने माता के स्नेह तथा ममता से परिपूर्ण हृदय को एक बारगी हिला दिया, "पर बेटा, तू तो उनके स्वाभाव से भली-भाँति परिचित ही है, उन्होंने क्या कभी किसी की बात मानी है?"

"माता जी, मानें या न मानें; परन्तु एक बार मुझे उनके कमरे में जाने दीजिए। मैं उनके चरणों में लेट जाऊँगा। यद्यपि मैंने हवेली में जाकर स्वयं अपनी आँखों से वहाँ की स्थिति नहीं देखी, तथापि जो कुछ सुनकर आ रहा हूँ, बड़ी ही दर्दनाक हालत है उन बेचारे निरपराध तथा निःसहाय मज़दूरों की।"

पार्वती ने इसके उत्तर में कुछ न कहा और शेखर यों ही उठकर रायबहादुर के कमरे की ओर चल पड़ा।

: २ :

"पिता जी, उन बेचारों पर रहम करो।"

"क्या कहा, रहम करूँ ? शेखर बस सावधान; यदि तूने उन लोगों के सम्बन्ध में एक शब्द भी कहा।"

"न पिता जी, इतना अत्याचार न कीजिए।"

"ओ नालायक, अपने पिता को अत्याचारी कहते हुए तुझे लज्जा नहीं आती? दूर हो जा, मेरे सामने से।"

"पिता जी·········पिता जी।"

"बस, मैं इस सम्बन्ध में एक भी शब्द नहीं सुनना चाहता! मेरे कार्यों में हस्तक्षेप करने का तुझे कोई अधिकार नहीं।"

शेखर निराश होकर खड़ा हो गया। इस समय उसका रोम-रोम क्रन्दन कर रहा था। बीच-बीच में क्रोध की लालिमा भी उसके मुख पर आ झलकती थी, पर वह बड़े प्रयत्नपूर्वक अपने विचारों पर अधिकार किये था।

वह क्रोध तथा निराशा के भयंकर आघात से प्रेरित होकर रायबहादुर के कमरे से बाहर हो गया।

बाहर कुछ ही दूर खड़ी हुई पार्वती धड़कते हुए हृदय से उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। वह रायबहादुर का उत्तर सुनना चाहती थी, पर शेखर का रंग-ढंग देखकर उसे पूछने की आवश्यकता नहीं हुई। बिना पूछे ही उसने सब-कुछ समझ लिया।

अपने कमरे की ओर न जाकर शेखर कोठी के बड़े फाटक की ओर चल पड़ा।

पार्वती चुपचाप उसके पीछे-पीछे आ रही थी।

फाटक में जाकर उसने ज़रा पीछे को ओर मुड़कर देखा और पार्वती को सम्बोधित करके कहा, "माता जी, आप जायं, मैं अभी आ जाऊँगा।"

पार्वती ने कुछ भी उत्तर न दिया। आँसुओं से डबडबाती हुई आँखों से केवल एक बार उसकी ओर जी भरकर देखा। इन आँखों में जो प्रश्न निहित था, वह शेखर से छिपा न रहा। वह बोला, "मैं

आकर रोटी खाऊँगा, ज़रा हवेली तक हो आऊँ।" और बिना कुछ उत्तर पाये ही वह कोठी से बाहर हो गया।

पार्वती निश्चेष्ट खड़ी उसे देखती रही।

× × ×

हवेली में जाकर शेखर ने जो दृश्य देखा, उससे उसका हृदय बैठ गया, रोमांच हो आया। इसका कारण कुछ तो यह भी था कि वह भरी दोपहरी में तीन बजे वहाँ पहुँचा था। गरम-गरम लू चल रही थी, धूप इतनी तेज़ थी कि मकानों के अन्दर बैठे हुए लोग भी परेशान थे; पर चालीस निराश्रित मज़दूर-परिवार उस समय हवेली के मैदान में बिना किसी छाया के धूप में ही पड़े थे। किसी ने खाट खड़ी करके थोड़ी-सी छाया कर ली थी, तो किसी ने दो-चार लकड़ियाँ खड़ी करके टाट तान लिया था। वृक्षों का तो हवेली के मैदान में निशान भी नहीं था।

हवेली में इस समय स्त्रियों तथा बच्चों के अतिरिक्त कोई नहीं था। इस बात ने शेखर को बहुत प्रभावित किया। सारे मज़दूर सवेरे से ही मिल के बाहर धरना दिये बैठे थे।

धूल और धूप में फैले हुए सामान, छाया के लिए व्याकुल बच्चों और लम्बी-लम्बी साँसें लेती हुई मज़दूरों की स्त्रियों को देखकर उसका दिल बैठ गया।

स्त्रियों में, यह किसी को भी पता नहीं था कि वह रायबहादुर का लड़का है। यदि पता लग जाता तो शायद सब इकट्ठी होकर उसे घेर लेती और खूब हृदय के गुब्बार निकालतीं।

शेखर ने एक सिरे से हवेली का चक्कर लगाना शुरू किया। हर एक कोठरी के दरवाजे पर खड़ा होकर वह हर वस्तु को बड़े ध्यान से देखता, सोचता और बीच-बीच में ठण्डे साँस भरता हुआ आगे चल पड़ता।

इसी तरह उसने, पहले दाहिनी ओर की कतार खत्म की, फिर दूसरी ओर मुड़ा जो बड़े फाटक से घुसते हुए बिलकुल सामने ही पड़ती है।

मज़दूरों के बच्चे प्यास से बेचैन थे, नल के चारों ओर भीड़ लगी हुई थी।

बाहर से तमाशबीन तथा हमदर्द सड़क पर से जाते हुए हवेली के अन्दर वाले दुखदायी दृश्य को देख रहे थे। कोई-कोई अन्दर भी चला आता और कभी-कभी इन दर्शकों की अच्छी खासी भी इकट्ठी हो जाती।

कोठरियों के आगे से होकर जाता-जाता शेखर एक जगह ठिठक-कर खड़ा हो गया। कदाचित् इतना भयावना दृश्य उसने पिछली किसी भी कोठरी में नहीं देखा था। एक सुकुमारी नवयुवती खाट पर रुग्णा-वस्था में पड़ी हुई थी, जिसकी कोमल-काली अलकें उसके चन्द्रमा के समान मुख पर प्रलयकालीन मेघों की भाँति छा रही थीं। उसे देख-कर उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो किसी स्वर्गीय अप्सरा ने ग़रीबों में जन्म धारण किया है।

यह कामिनी थी, जिसकी चारपाई पर धूप आ गई थी। धूप के कारण उसका ज्वर फिर बढ़ गया था। वह पीड़ा से छटपटा रही थी। उसकी चाची (अनवरी) इधर-उधर खाटें खड़ी करके, ऊपर कपड़े टाँग कर, उसे धूप से बचाने का प्रयत्न कर रही थी।

शेखर तनिक और चारपाई के पास आ गया और उसने अनवरी से पूछा, "इस लड़की को क्या तकलीफ है?"

वह चारपाइयों को ज़रा ध्यानपूर्वक जोड़ती हुई बोली, "अरे भाई, हमारी तकलीफों को क्या पूछते हो, हम तो उस बूढ़े रायसाहब की जान को रो रहे हैं। मनुष्य के खून का प्यासा शत्रु भी इतना नहीं करता, जितना उसने हमारे साथ किया है। इस भीषण गर्मी और

तेज़ धूप में उसने हमें घरों से निकाल दिया। अब कहाँ जायं ? एक कौड़ी भी पास नहीं है, जो और कहीं जाकर चैन से दिन काटते। तनख़्वाहें अलग मार लीं और घरों से भी हाथ धोना पड़ा। हमारी तो ख़ैर कोई बात नहीं, पर यह कोमल लड़की ज्वर से पीड़ित है। इसके बाप को सिपाही पकड़ ले गए हैं।"

"तो क्या यह यह राधे की लड़की है ?" शेखर ने हैरानी से सिर से पैर तक देखकर प्रश्न किया।

"हाँ भैया" उसने दोनों मिली हुई खाटों पर टाट डालते हुए कहा, "भाई, तुम कुछ जानते हो क्या, जरा देखना तो इसे कितना ताप है, सवेरे तो तनिक हल्का था।"

शेखर ने रुग्णा के हाथ को अपने हाथ में लिया। उसको ज्वर १०३ डिग्री से कम नहीं प्रतीत हुआ। उसने फिर पूछा, "भाई, इसका और भी कोई रिश्तेदार है।"

"ईश्वर के अतिरिक्त इस बेचारी का कौन है। माँ इसे छोटी-सी आयु में ही छोड़कर मर गई थी। पिता ने बड़े प्रेमपूर्वक पाली थी। अब इसके साथ क्या बीतेगी ? हमारे साथ पहले ही इनका बड़ा प्रेम है, खुदा रहम करे, मुझे तो इस समय इस लड़की के जीवन के सामने सब-कुछ भूला हुआ है। तब ही ठीक समझो जो ये स्वस्थ हो जाय।"

शेखर ने मन-ही-मन इस अद्भुत मुसलमान स्त्री को प्रणाम किया। एक दूसरे धर्म की लड़की के साथ इतना मोह, माता से बढ़कर। शेखर का हृदय द्रवित हो उठा। इस कोमलांगी बालिका को उसने एक बार फिर ध्यान-पूर्वक देखा और उसको 'हाय-हाय' करते देखकर कहने लगा, "तुम्हें क्या बहुत कष्ट है ?"

कामिनी ने कोई उत्तर न दिया। उसके मुँह से केवल 'पानी' शब्द ही निकला साथ ही उसने आँखें ऊँची करके सहानुभूति की मूर्ति इस सुन्दर युवक की ओर ध्यान से देखा। ज्वर से जलती हुई कामिनी

की आँखों में शेखर के मोहक दर्शन की थोड़ी-सी झाँकी ने ठण्डक पैदा कर दी और उसने आँखें नीची कर लीं।

अनवरी नल पर पानी लेने गई और इधर शेखर भी कामिनी की चारपाई के पास से चल पड़ा, पर उसके पैर आगे न बढ़ सके।

दो-चार कदम जाकर वह खड़ा हो गया। दो-एक मिनट खड़े रहने के बाद वह फिर पीछे लौट पड़ा और कामिनी की खाट के पास आकर खड़ा हो गया।

कुछ सोचने के उपरान्त वह अनवरी से बोला—

"माई, इस लड़की को तो 'टाईफाइड फीवर' है शायद।"

"वह क्या होता है ?" अनवरी ने सहमी हुई आवाज़ से पूछा।

"यानी, मियादी बुखार।"

"भाई, मियादी बुखार तो बहुत बुरा होता है।"

"नहीं, डर की कोई बात नहीं। पर इसको इतनी गर्मी में बाहर रखना ठीक नहीं।"

"ठीक तो नहीं, पर जायं कहाँ ? खुदा ने यह विपत्ति जो डाल दी।"

"इसको अस्पताल ले आओ।"

"अरे भाई, अस्पताल में हम ग़रीबों की कौन पूछता है ?"

"अच्छा आपका आदमी कहाँ है ?"

"भाई, मेरा आदमी भी उसी अत्याचारी, अधर्मी रायबहादुर की जान को रोने गया है, सवेरे का। और कहाँ जाता ? बिना खाये-पिये गया है। आगे ही मार से उसका शरीर छलनी हो गया। बहुतेरा मना किया कि मत जा। सारी रात दर्द के कारण चिल्लाता रहने पर भी अब फिर चला गया। मेरी एक भी न सुनी।"

"क्या, आपके आदमी को भी रायबहादुर ने मारा था ?"

"हाँ, भाई, उसका नाश होगया है। उसके शरीर में रह-रहकर कीड़े चलेंगे, जिसे वह ग़रीब मज़दूरों की खून-पसीने की मेहनत से बढ़ाये

हुए है। कभी आप आकर ही देखना, पीठ में नील के लोथड़े पड़े हुए हैं। खुदा उसका नाश करे।

शेखर में इससे अधिक सुनने की सामर्थ्य नहीं थी। उसका हृदय रो रहा था और आँखें सूखी थीं। शायद क्रोध की भयंकर अग्नि की लपटों ने उसको सुखा दिया था। अब और अधिक देर ठहरना उसके लिए असम्भव था।

"माई, लो मैं बड़े डाक्टर के नाम चिट्ठी लिखे देता हूँ, इसको जल्दी अस्पताल ले आओ। यदि आप कहें तो मैं इसको पहुँचाने का प्रबन्ध कर दूँ।"

"इस नारकीय दुनिया में यह देवता कहाँ से आ गया?" अनवरी ने एक बार नज़र भरकर शेखर की ओर देखा। कामिनी भी खाट पर पड़ी हुई उस ओर देख रही थी।

शेखर कुछ देर रुककर बोला, "अच्छा माई, यदि इसे अस्पताल नहीं ले जाना चाहतीं, तो मैं आप ही जाकर इन्तज़ाम करता हूँ। डाक्टर दोनों समय घर आ जाया करेगा। फीस या दवाई की क़ीमत तुम्हें नहीं देनी पड़ेगी, पर अब इसे यहाँ धूप में न रखो, अन्दर ले जाओ। इसका बुखार बढ़ता जा रहा है।"

कृतज्ञता से भरी दृष्टि से उसकी ओर देखकर अनवरी बोली, "पर भाई, कहाँ ले जायं इसे? और तो कोई जगह है नहीं।"

"इसकी कोठरी कौन-सी है?"

अनवरी ने कामिनी की बेल से आच्छादित कोठरी की ओर संकेत किया।

शेखर उस कोठरी के दरवाजे पर पहुँचा और मुँह में उँगली डालकर कुछ देर खड़ा सोचता रहा। उसके मुख पर इस समय विचित्र प्रकार की भावनाएं आ-जा रही थीं। कभी तो आवेश की रक्तिम

आभा चमकने लगती और कभी किसी भावी आशंका की पाण्डुर छवि अपना घेरा डाल देती।

खड़ा-खड़ा वह कई बार एक-दो कदम कोठरी की ओर बढ़ा और कई बार पीछे हटा। उधर अनवरी—जिसकी तरफ उसकी पीठ थी—उसका यह रंग-ढंग अवाक् होकर खड़ी देख रही थी।

कुछ देर इसी दुविधा में पड़े रहने के बाद शेखर ने आवेशपूर्ण निर्द्वन्द्वता के साथ कमर मोड़ी और हवेली के आँगन में दूर तक नज़र फेंकी। कदाचित् किसी मतलब की वस्तु को देखकर वह धीरे-धीरे कदम बढ़ाता हुआ नलके की ओर चल पड़ा।

"अरे भाई, तेरा भला हो; यह क्या करने लगा तू, हम तो पहले ही मुसीबत भुगत रहे हैं।" पुकारती हुई अनवरी उसके पीछे दौड़ी, पर उसके वहाँ तक पहुँचने के पूर्व ही शेखर ने ईंट की दो-तीन भारी चोटों से कोठरी का ताला तोड़ दिया।

सहमी हुई आवाज़ में अनवरी ने उसके पास आकर कहा, "यह क्या अन्धेर मचाने लगा तू और हमें बँधवाने के लक्षण कर दिये।

"माई, तुम्हारी तरफ कोई नहीं देख सकता।" जोश में कहता हुआ वह कामिनी की खाट के पास पहुँचा और सिरहाने की ओर से उसे पकड़कर अनवरी से कहने लगा, "माई, उधर से खाट को पकड़ ज़रा।"

मंत्र-मुग्ध की भाँति अनवरी ने पांयत की ओर से खाट पकड़ ली और दोनों ने उसे कामिनी की लहलहाती हुई लताओं में लाकर रख दिया।

ताला टूटा हुआ देखकर हवेली के कई बच्चे तथा स्त्री आ जुटे। इस काम से उपरति पाकर शेखर जा ही रहा था कि उसने बाहर से कुछ व्यक्तियों को भी आते हुए देखा। एक चारपाई उनके कन्धों पर थी। बेलों वाली कोठरी के पास ही उसे उन्होंने लाकर रख दिया।

अनवरी ने दूर से ही देख लिया था। वह जल्दी से उस चारपाई के पास जा पहुँची।

यह रहमत था। वह मिल के आगे पिकेटिंग पर खड़ा-खड़ा धूप के कारण बेहोश हो गया था।

शेखर के क्षत-विक्षत हृदय को एक चोट और लगी।

भीड़ में से किसी ने ज़ोर से कहा, "रायबहादुर का लड़का।"

"हाँ, मैं उनका लड़का हूँ।"

मज़दूरों ने उसको पहचान लिया था।

मज़दूरों के कुछ कहने से पूर्व ही उसने सबको सम्बोधित करके कहा, "तोड़ दो सारी कोठरियों के ताले और अपना-अपना सामान अन्दर रखो।"

तपती हुई जेठ की भीषण दोपहरी में अचानक सावन की वर्षा पड़ने वाली घटा देखकर जो सान्त्वना मिलती है, ठीक वही अवस्था इन चालीस मज़दूरों तथा स्त्रियों की हुई। सब अवाक् हो उसकी ओर ताक रहे थे।

"मैं कहता हूँ तोड़ दो ताले, मैं स्वयं रायबहादुर के साथ सुलट लूँगा। ऐसा करने पर कानूनी दृष्टि से तुम्हें कोई कुछ भी नहीं कह सकता, क्योंकि तुमसे अनियमित ढंग से मकान खाली कराये गए हैं। कोई क़ानून मालिक-मकान को इजाज़त नहीं देता कि वह महीना-पन्द्रह दिन का नोटिस दिये बिना ही अधिकार के बल पर किरायेदारों से मकान खाली करा सके।"

इस ललकार ने सबका भय दूर कर दिया।

इधर रहमत को अन्दर ले जाकर लिटा दिया गया और उधर ताले टूटने शुरू हो गए।

इसके बाद शेखर वहाँ से चला गया। जाते हुए वह कामिनी की कोठरी का नम्बर भी ध्यान से देखता गया।

यह सब-कुछ जादू के खेल की तरह हो गया। कइयों को तो अभी तक यह मालूम नहीं हुआ था और वे एक दूसरे की ओर ताक रहे थे कि मामला क्या है? इसे रायबहादुर ने भेजा था या स्वयं ही आया था।

: ३ :

जितनी देर रहमत उपस्थित रहा, किसी तरह का उपद्रव न हुआ। सारे मज़दूर मिल के मैदान में धरना दिये नारे लगाते रहे। पर जब गर्मी के कारण रहमत को मूर्च्छा आ गई तो उसको घर पहुँचाया गया। इसके बाद इस भीषण जन-समूह की हालत बिगड़नी शुरू हो गई।

मज़दूरों के इस भीषण शोर तथा उपद्रव को सुनकर मैनेजर ने अपने क्वार्टर के चौबारे की खिड़की खोलकर यह सब दृश्य देखा। मैनेजर का क्वार्टर मिल के अन्दर ही सटा हुआ था। जब मज़दूरों ने उस ओर देखा तो मैनेजर ने हाथ के संकेत से उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। सारी भीड़ उस खिड़की के नीचे इकट्ठी हो गई। सबके निराश तथा दुखी दिलों में आशा की ज्योति जगमगाई कि कदाचित् मैनेजर का दिल बदल गया हो या रायबहादुर ने ही कोई शान्ति का सन्देश फोन पर दिया हो।

सब मज़दूर ऊँची गर्दन किये खड़े थे। मैनेजर ने इस भाँति ललकारना प्रारम्भ किया:—

"देखो, मैं तुम लोगों को सलाह देता हूँ कि चुपचाप अपने-अपने घरों को चले जाओ, नहीं तो याद रखो, एक-एक को पकड़कर इस बदमाशी का मज़ा चखाया जायगा।"

मैनेजर के इन शब्दों ने सबकी आशाओं पर पानी फेर दिया। पर क्रोध की अन्दर-ही-अन्दर सुलगती हुई आग में, इन शब्दों ने हवा के झोंके का काम किया। आग और भी बढ़ गई। सबका दिल बाँसों

उछलने लगा। भूख-प्यास, गर्मी और निराशा के सताए हुए मजदूरों को मैनेजर के शब्दों ने उत्तेजित कर दिया।

मैनेजर के उत्तर में हवेली के एक मज़दूर ने चिल्लाकर कहा, "बाबू साहब, किन घरों को लौटें हम ? घर तो तुमने पहले ही छीन लिये और हमको बेघर-बार का कर दिया है।"

उत्तर में मैनेजर ने कहा, "वे घर क्या तुम्हारे बाप के थे ? मालिकों के घर थे उन्होंने खाली करा लिये। तुम घरों के क्या लगते हो ?"

इधर से एक और बोला, "देखो बाबू जी, जले पर नमक न छिड़को—'गरीब की आह' बुरी होती है, खुदी खुदा का वैर होता है।"

"जाओ, जाओ, बको मत। अभी यदि दो-तीन सिपाही आ गए तो सब भागते ही नज़र आओगे।" मैनेजर ने धमकी देते हुए कहा।

"यह अरमान भी निकाल लीजिए न, बाकी क्यों रखते हैं ?" भीड़ में से किसी ने कहा।

एक और मनचला बोला, "बेटा, तू भी फिर चौबारों में न बैठ सकेगा, तुझे भी······" एक दूसरे बूढ़े मज़दूर ने उसके मुँह पर हाथ रखकर रोक दिया। पर ऊपर के एक और वाक्य 'चुप रह बेवकूफ' ने कई और मज़दूरों को भड़का दिया। मैनेजर के वाक्य का पहला भाग 'चुप रह' तो थोड़ों के ही कानों मे पड़ा था, पर आख़िरी हिस्सा 'बेवकूफ' जिसको शायद मैनेजर ने पूरा ज़ोर लगाकर कहा था—सबने सुना। यही कारण था कि मैनेजर के इस वाक्य ने मज़दूरों की भड़की हुई क्रोधाग्नि में घी का काम किया।

"······उतर तो ज़रा नीचे, तेरी बोटी-बोटी ना अलग कर दी तो, ······आया है ब ़ा साहूकार का बच्चा।" सैंकड़ों कण्ठों से ऐसे वाक्य निकल रहे थे।

परिस्थिति बिगड़ती हुई जानकर मैनेजर ने खट से खिड़की बन्द कर ली। यदि वह खड़ा रहता तो· शायद मज़दूरों का दल बेकाबू न

भी होता, पर ज्यों ही उसने खिड़की बन्द की, सबके सिरों पर क्रोध का भूत सवार हो गया—ईंट, पत्थर, काँच, सोटा, लकड़ी—जो जिसके हाथ में आया उठाकर दे मार, दे मार शुरू कर दी।

ज़रा-सी देर में सब खिड़कियाँ टूट गईं।

इधर से हटकर सारी भीड़ वर्कशाप की ओर बढ़ी और शीशे की दीवारें चकनाचूर कर दीं। यह सब-कुछ आँख झपकते ही हो गया।

मिल के बाहर भी दूर तक कुहराम मच गया—तार और फोन खटकने लगे।

इधर भीड़ में यह आवाज़ सुनाई देने लगी, "फूँक दो मिल को, ईंट-से-ईंट बजा दो।"

बहुत सम्भव था कि यह सब क्रियात्मक रूप धारण कर लेता, यदि उधर से पुलिस का जत्था आकर घेरा न डाल देता।

'तड़ातड़' पुलिस के डंडे बरसने शुरू हो गए। जिधर जिसको रास्ता मिला, निकल भागा। जो मुखिया बनकर दूसरों को उकसा रहे थे—पुलिस की हिरासत में ले लिये गए। बहुत-से मज़दूर घायल हुए, शेष भाग खड़े हुए।

पर, दर्शकों का ताँता बढ़ता ही जा रहा था।

: ४ :

रायबहादुर आज अपने कमरे में धीमी चाल से पीठ पीछे हाथ किये इधर से उधर, उधर से इधर टहल रहे हैं। उनके सामने कुर्सी पर खिन्न-मन शेखर बैठा है।

रायबहादुर इस समय क्रोध से जल रहे हैं। घूमते-घूमते वे शेखर के सामने तनकर खड़े हो गए और ज्वालामुखी के विस्फोट के सदृश उनके मुख से निकला, "कम्बख्त, नालायक तुझे शर्म नहीं आती। मेरा पुत्र होकर मुझसे ही विद्रोह? यह तेरे प्रोत्साहन का ही परिणाम है

जो उन्होंने कल मिल की हजारों रुपयोंकी सम्पत्ति नष्ट-भ्रष्ट कर दी।"

ज़रा सिर ऊँचा करके शेखर बोला, "पिता जी, यह मेरे प्रोत्साहन का नहीं, प्रत्युत आपकी हिंसा तथा आपके मैनेजर के दुर्व्यवहार का फल है। मैंने सब-कुछ सुना है।"

रायबहादुर उसकी बात की ओर ध्यान दिये बिना ही बोले, "यह तेरी नालायकी का परिणाम है। तुझे ताले तोड़ने का क्या अधिकार था, जब कि वे मेरी आज्ञा से लगाये गए थे? तू कल का छोकरा क्या मुझसे अधिक बुद्धि रखता है?"

शेखर नीचे को मुँह किये हुए बैठा रहा। उसकी ओर से कोई उत्तर न पाकर रायबहादुर फिर भड़के, "जानता है, तेरी इस बेहूदगी का क्या परिणाम होगा?"

जानने के लिए शेखर ने ऊपर को देखा।

"मैं तुझे सम्पत्ति के सब अधिकारों से वंचित कर दूँगा। तुझे कौड़ी-कौड़ी के लिए दूसरों का मुँह ताकना पड़ेगा।"

इससे शेखर के हृदय को बहुत चोट पहुँची। उसने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया, "पिता जी, इस सम्पत्ति के पीछे मैं अपनी आत्मा की आवाज़ को नष्ट नहीं कर सकता। मेरी छाती में भी मानव-हृदय है। हवेली के जिन मज़दूरों को आपने तपती हुई धूप में बाहर निकलवा दिया था, उनकी वह अवस्था देखकर मुझसे न रहा गया। एक लड़की को मैंने देखा, जो भयंकर ज्वर में भी मकान से बाहर निकाल दी गई थी और वह जलती हुई धूप में मौत से खेल रही थी। यह अत्याचार मैं किसी भी दशा में सहन नहीं कर सकता, चाहे इसके बदले मुझे कुछ भी कष्ट उठाना पड़े।" शेखर का शरीर काँप रहा था।

"अरे बेवकूफ, तू अभी कल का बच्चा है, तुझे पता नहीं, ये लोग जूतों से ही बस में आते हैं।" रायबहादुर ने क्रोध से आग-बबूला होकर कहा।

"पर पिताजी, वे तो इससे दिन-प्रतिदिन बेकाबू होते जा रहे हैं—आपकी इस जूते की मार से।"

रायबहादुर और भी भड़के, "चुप रह निर्लज्ज! तू कहाँ से आया है बुद्धिमान् बनकर मुझे शिक्षा देने? दूर हो जा मेरी आँखों के आगे से।"

"मैं चला जाऊँगा पिताजी, यदि आप कहेंगे तो मैं फिर आपको मुँह भी न दिखलाऊँगा, पर आप मेरी यह बात अवश्य मान लें।"

"क्या बकता है! मैं उनका पिछला सब वेतन दे दूँ और उनके आगे झुक जाऊँ? तू तो वेतन की कहता है और मैंने यदि उनसे मिल बन्द होने तथा उसकी बिल्डिंग को हानि पहुँचाने का हर्जाना कौड़ी-कौड़ी करके न वसूल किया तो मेरा नाम बदल देना। बड़ा वेतन दिलाने चला है। आज शाम से पहले ही तू देखेगा कि उनका सामान कोठरियों से निकलवा कर सड़क पर फिंकवा दूँगा। हवेली सब खाली करवा ली जायगी।"

शेखर के मुख की अरुणिमा व शरीर की कँपकपी यह स्पष्ट कर रही थी कि उसके हृदय में कितना तूफान मचा हुआ है। वह अपने हृदय में छिपी हुई ज्वाला को सँभालता हुआ बोला, "पिता जी, आप उनको हवेली से बाहर नहीं निकाल सकते। यह बिलकुल असम्भव है।"

आज से पूर्व रायबहादुर ने अपने बेटे की इतनी उद्दण्डता कभी नहीं देखी थी। मारे क्रोध के उनका सिर चक्कर खाने लगा। वे चोट खाये हुए सर्प की भाँति फुफकारते हुए बोले, "असम्भव! इसका परिणाम तू अभी थोड़ी देर में ही देख लेगा। तेरे जैसे कुपुत्र की अपेक्षा तो मैं यों ही अच्छा था। चला जा निर्लज्ज, दूर हो जा मेरे सामने से। क्यों मेरे जख्मों पर नमक छिड़कता है?"

"बहुत अच्छा पिता जी, पर याद रखियेगा; यदि आपने दुबारा हवेली के मज़दूरों से छेड़-छाड़ की·········।"

इससे पूर्व कि शेखर अपनी बात पूरी करता, थप्पड़ के 'ताड़-ताड़' शब्द ने उसका मुँह बन्द कर दिया। वह दुबारा बोलने को हुआ ही था कि रायबहादुर के जूते की ठोकर ने यह समस्या सुलझा दी।

अब शेखर वहाँ और न ठहरा। वह कोठी से बाहर चला गया। उसकी आँखों में आँसू तथा दिल में इतने अरमान थे कि जिनका भार वहन करना उसके लिए एकदम असम्भव हो रहा था।

शेखर चला गया, किधर चला गया रायबहादुर को इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं थी। वे अपनी धुन में मस्त थे।

उन्होंने झटपट टेलीफोन का रिसीवर उठाया—"हैलो मि० चन्द्र-मणि, जल्दी हवेली में जाओ······हाँ, हाँ, हवेली में······क्या कहा, किसलिए ?·········इसलिए कि सब कोठरियाँ एकदम खाली करा लो······मुझे पता है कि तुमने कराई थीं, पर नालायक शेखर ने फिर उनको सामान अन्दर रखने की आज्ञा दे दी····· हाँ अभी जाओ······ हाँ, हाँ,···जितने आदमी हो सकें, साथ ले जाओ; और सुनो···बेशक, दस-बीस मज़दूर भी लगा लेना और सब सामान उठाकर बाहर सड़क पर फिंकवा दो···हाँ, हाँ, सड़क पर, अपने-आप इकट्ठा करते फिरेंगे। हवेली का फाटक बन्द करके उसमें ताला लगा दो···बस···और फौरन यह काम करके मुझे इत्तिला दो।"

रायबहादुर ने हाथ से रिसीवर रखा ही था कि चपरासी ने कहा, "वेटिंग रूम में कुछ सज्जन बैठे हैं।" और उसने कुछ विजिटिंग कार्ड उनके सामने रख दिए।

"अच्छा, उनको यहाँ ही बुला ले।" और रायबहादुर ने सिगार सुलगा लिया।

भेंट करने वालों में कुछ सोशलिस्ट तथा कुछ मज़दूर-कार्यकर्ता थे।

रायबहादुर सबसे कुछ अन्यमनस्कता से मिले। सब ही सज्जन मेज़ के चारों ओर पड़ी हुई कुर्सियों पर बैठ गए।

रायबहादुर ने स्वागत-प्रश्न करने के उपरान्त आने का कारण पूछा।

सोशलिस्ट नेता धीरेन्द्र शास्त्री ने कहा, "सेठ जी, आपने तो मामला बहुत ही नाज़ुक बना दिया है।"

रायबहादुर पहले ही से ताड़ गए थे कि यही किस्सा शुरू करने वाले हैं, इसलिए उन्होंने पहले ही मन में कुछ उत्तर सोच लिये थे। वे तुरन्त ही बोले, "शास्त्री जी, मैंने तो अपनी ओर से कोई ग़लत क़दम नहीं उठाया, पता नहीं इन लोगों के सिर पर मौत नाच रही है या······!"

मौलाना फज़ल इलाही ने ज़रा शोक प्रकट करते हुए कहा, "सुना है, कल आपकी बिल्डिंग को बहुत नुकसान पहुँचा।"

"हाँ, साहब।"

"अब क्या होगा······?" पंडित रामदुलारे ने पूछा, पर सेठ जी के उत्तर देने के पूर्व ही शास्त्रीजी बोले, "लखनऊ के म्यूज़ियम में उनकी पुरानी हाँडी, तवे तथा कपड़े भिजवा देंगे। आखिर यह भी तो ऐतिहासिक वस्तुएँ हैं, काफी रुपया मिल जायगा सेठजी को।"

इस व्यंग्यपूर्ण हास्य ने रायबहादुर को और भी उत्तेजित कर दिया। वे बोले, "शास्त्रीजी, क्षमा करना, इन धूर्तों से जिनका काम पड़ता है, वे ही जानते हैं। दूसरों को तो मखौल ही सूझती है।"

"पर सेठजी" पंडित जी बोले, "अब तो सारा शहर ही उनका साथ दे रहा है, हम भी इसीलिए आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं कि आप उनकी माँगों पर ध्यान दें।"

"क्या?" रायबहादुर ने पूछा।

"यही कि कानपुर के सभी नेता बीच में पड़कर इस मामले को निपटायेंगे। यदि तीन दिन में कोई निर्णय न हुआ तो स्थानीय सभी मिलों के मज़दूर हड़ताल कर देंगे।"

आवेश में आकर रायबहादुर बोले, "फिर, कर देने दीजिए न। आप ही जब भूखों मरेंगे, तब नानी याद आ जायगी और फिर अपने-आप पैरों में आकर नाक रगड़ेंगे।" रायबहादुर ने यह कहकर अपने दोनों पैर आगे बढ़ा दिए।

"नहीं सेठजी।" मौलाना फज़ल इलाही बोले, "आप ज़रा बाहर का वातावरण देखें तो पता लगे। नगर की सारी जनता की सहानुभूति इस समय उन्हें प्राप्त है। लोग उन्हें भूखों न मरने देंगे।"

"इन बातों का रायबहादुर पर कुछ प्रभाव पड़ा, उनके सब मनसूबे टूटने प्रारम्भ हो गए।

"और सेठजी" शास्त्रीजी ने कहा, "आपने भी तो कमाल कर दिया, क्या मजाल थी, जो हवेली के किरायेदार आपके सामने टिक सकते। उनके हवेली से निकाल दिये जाने की घटना ने जितनी मज़दूरों की सहायता की है, उतनी उन्हें वर्षों में भी प्राप्त नहीं होती।"

जल-भुनकर रायबहादुर बोले, "शास्त्री जी, आप उनकी वकालत करने आये हैं क्या?"

"सेठ जी, जब सारा शहर ही उनकी वकालत कर रहा है, तो मेरे जैसा तुच्छ व्यक्ति यदि न भी करे तो उनका क्या बिगड़ जायगा? चाहता हूँ कि अब इस अग्नि को शान्त करने का कोई उपाय सोचना चाहिए।"

इस बीच में रायबहादुर बहुत ठण्डे पड़ गए थे। पहले जैसी तेज़ी-तर्रारी अब नहीं थी। ज़रा गम्भीरतापूर्वक वे बोले, "तो फिर आप क्या चाहते हैं?"

"सेठ जी, अब तो समझौते के अतिरिक्त और कोई भी चारा नहीं हो सकता।" पंडित जी ने उत्तर दिया।

"समझौता?" रायबहादुर फिर ज़रा जोश में आ गए और बोले,

"क्या आपकी यह मन्शा है कि मैं उन टके-टके के आदमियों के सामने समझौते के लिए प्रार्थना करूँ ?"

शास्त्री जी—"वे टके-टके के हैं बेशक, पर सेठ जी, रुपये भी तो उनसे ही मिलते हैं। यदि टके न हों तो वह भी न हों। इसलिए उनके आगे समझौते की प्रार्थना करने में अपमान नहीं। यह तो केवल आपका भ्रम है।"

"आपको मुझसे समझौते की आशा नहीं करनी चाहिए।" रायबहादुर ने क्रोध से कहा।

"सेठ जी" ला० जयगोपाल बंसल ने ज़रा तेज़ी से कहा, "क्षमा करना, मैं ज़रा खरी-खरी सुना रहा हूँ। आपने हवेली के मज़दूरों को ही अपना शत्रु नहीं बनाया, प्रत्युत इससे सारा शहर ही आपका विरोधी हो गया है। यदि आपने अब भी बुद्धिमत्ता से काम न लिया तो यह समस्या उग्र रूप धारण कर लेगी और सारे देश में इसकी ही चर्चा छिड़ जायगी।"

रायबहादुर फिर भड़क उठे और काँपते हुए बोले, "क्या मैंने किसी के घर डाका डाला है ?"

"डाका मारने में कमी ही क्या छोड़ी है, बिना नोटिस दिये तीन महीने का वेतन दबाकर और साथ ही ४० मज़दूरों को घर-बार से हीन करके आपने उन्हें सड़कों पर बिठा दिया, यह डाका नहीं तो और क्या है ?"

"निकाला है तो मैंने उनको अपने मकान से ही मकान उनके बाप के तो नहीं थे।"

"ठीक है, उनके बाप के नहीं थे।" पंडितजी ने कहा, "पर वेतन तो उनके बाप का था, जिसके बदले उन्होंने तीन महीने आपकी मिल में जी तोड़कर परिश्रम किया था।"

"किसी को मेरे निजी कार्यों की आलोचना करने का कोई अधिकार नहीं।" रायबहादुर ने उन्हें धमकी देते हुए कहा।

"तो क्या आप किसी समझौते की कोई बातचीत करने को तैयार नहीं हैं?" मौलाना फज़ल इलाही ने तनिक निर्णयात्मक लहजे में कहा।

धौंकनी की भाँति साँस लेते हुए रायबहादुर बोले, "जिन्होंने मेरा हज़ारों रुपयों का नुकसान कर दिया है, क्या उनसे मैं समझौता करूँ? मौलाना साहब, आप कैसी बच्चों वाली बातें कर रहे हैं?"

"पर क्या आप जरा बतलायेंगे कि यह सब क्यों हुआ?"

"अपने किसी निजी कार्य के उत्तरदायित्व के लिए मैं बाध्य नहीं हो सकता।" रायबहादुर उठकर चलने को तैयार होते हुए बोले।

उठकर चल पड़ने का अर्थ था, उन भले आदमियों को निरादृत करके चले जाने का संकेत।

"तो हमें आपकी ओर से कोई आशा नहीं करनी चाहिए?" सबके साथ उठते हुए शास्त्री जी ने रायबहादुर से प्रश्न किया।

"बिलकुल नहीं।" कहकर रायबहादुर कमरे से बाहर हो गए।

"जैसी आपकी इच्छा।" मौलाना फज़ल इलाही ने कहा; और सब वहाँ से चले गए।

: ५ :

मैनेजर की उद्दण्डतापूर्ण बातों ने स्थिति और भी शोचनीय कर दी। गिरफ्तारियों और लाठियों की मार भी उसको न सुधार सकी। मिल के आगे धरना बराबर जारी था, गिरफ्तारियाँ भी बन्द नहीं हुईं। जिधर जाइये, उधर इसी की चर्चा छिड़ी थी।

वास्तव में इतनी देर तक भूख और अत्याचार से टक्कर लेने की सामर्थ्य इन भूखे-नंगे मज़दूरों में नहीं थी, पर एक छोटी-सी घटना ने

उनका उत्साह द्विगुणित कर दिया—हारे-थके दिलों में फिर नई धड़कन पैदा कर दी। वह थी शेखर की ताले तुड़वाने वाली घटना।

इसके अतिरिक्त सर्वसाधारण की सहानुभूति भी आज उनके प्रति बढ़ती जा रही थी, यहाँ तक कि कई स्थानों में उनके भूखे परिवारों की सहायता के लिए चन्दे भी एकत्र किये जाने लगे थे।

जिस सेठ भानामल के प्रति मज़दूरों में घोर घृणा का हाहाकार नृत्य कर रहा था, उसी के एक-मात्र पुत्र शेखर ने, उनको अद्भुत उत्साह प्रदान किया था!

पिकेटिंग अभी तक जारी थी। सब मज़दूरों ने 'करो या मरो' का प्रण ठान लिया था।

सन्ध्या का समय था। कामिनी अपनी कोठरी में अकेली ही लेटी हुई थी। अनवरी अभी-अभी वहाँ से उठकर अपने घर गई थी। उसे कामिनी तथा रहमत के लिए खाने का प्रबन्ध भी तो करना था।

कामिनी लेटी हुई किसी मधुर स्मृति में मग्न थी। उसके कानों में किसी के प्यार और सहानुभूति से ओत-प्रोत अमृतमय ये वचन गूँज रहे थे, "माई, इसका और भी कोई रिश्तेदार है?" वह सोच रही थी, इतनी सहृदयता? पीड़ित एवं निर्धनों के लिए इतना दर्द? और वह भी रायबहादुर के बेटे में। क्या वह कोई देवता था? डाक्टर भेजा, फीस और दवा-दारू का खर्च अपने-आप से ही किया; पिता के लगाये हुए ताले तुड़वाकर फेंक दिये; निर्धनों, निराश्रितों को फिर आश्रय दिया। क्या ये लक्षण किसी मनुष्य में मिल सकते हैं? और कामिनी के नेत्र उसकी प्रेम-भरी श्रद्धा के प्रभाव से झुक गये। उस सुन्दर, सुगठित नवयुवक की प्रेम-भरी दृष्टि, स्वच्छता का आलोक फैलाता हुआ उसका मुख कामिनी की आँखों के आगे घूमने लगा। वह आँखों के रास्ते उसके अन्तस्तल तक पहुँच गया।

कोठी में सन्ध्या का अन्धकार बढ़ता जाता था। कामिनी का चित्त

इस समय कुछ स्वस्थ था, पर पिता का वियोग उसके हृदय को उद्वेलित कर रहा था। वह अचानक उठकर बैठ गई और खाट से नीचे उतरकर धीरे-धीरे बाहर आकर अपनी बेल के नीचे खड़ी हो गई। उसने एक सरसरी नज़र उस पर दौड़ाई। उसे देखकर उसका हृदय भर आया। कई दिनों से भयंकर गर्मी तथा धूप होने और पानी न मिलने के कारण सब पौधे कुम्हला गए थे—कहीं-कहीं तो बेल की पत्तियाँ सूख भी गई थीं।

अपने युग-युग के परिश्रम, साधारण श्रम की नहीं, तथा अपनी साधों के भण्डार को इस तरह बर्बाद होता देखकर कामिनी का हृदय रो उठा। उसके मन में आया कि बाल्टी लेकर अभी नल की ओर चल दे, पर जब उसने देखा कि बिना बाल्टी लिये ही जब पैर लड़खड़ा रहे हैं, तो दिल मसोसकर रह गई। फिर भी वह निश्चिन्त न बैठ सकी और घर के अन्दर रखे हुए पानी के एक घड़े को उसने कामिनी की बेलों में डाल ही दिया। इस थोड़े-से पानी से इतने दिन की प्यासी बेल की तृप्ति नहीं हुई। थोड़ी देर में ही सब पानी न जाने किस दिशा में विलीन हो गया? कामिनी का हृदय मसोस उठा था। उसने बेल की कोमल और पतली पत्तियों को दोनों हाथों से उठाकर चूम लिया और किसी गम्भीर विचार में तल्लीन हो गई।

उसकी मुद्रा तब भंग हुई जब बाहर फाटक पर उसने कुछ कोलाहल सुना।

उसका अनुसरण करके वह डगमगाती चाल से हवेली के फाटक पर जा पहुँची।

भीड़ में कुहराम मचा हुआ था।

इतने में ही, दरवाजे में दोनों हाथ फैलाये, टाँगें चौड़ी किये, किसी को उसने दरवाजा रोके हुए देखा। जो गरज-गरजकर बाहर से आने वालों को कह रहा था, "इस हवेली का मालिक मैं । तुम इसमें कदम नहीं रख सकते।"

बाहर से कई आवाज़ें इकट्ठी ही आईं, "आप निस्संदेह मालिक हैं, उनके सुपुत्र हैं; पर हम रायबहादुर की आज्ञा का पालन किये बिना कैसे लौट सकते हैं ?"

"आप लोग क्या चाहते हैं ?" युवक ने पूछा।

"हम. हवेली की सब कोठरियों को खाली कराना चाहते हैं।" सबसे आगे खड़े हुए रायबहादुर की मिल के मैनेजर चन्द्रमणि ने उत्तर दिया।

"अच्छा तो चले जाओ मेरे ऊपर से" कहकर शेखर दरवाज़े के मार्ग में निश्चल होकर लेट गया।

यह दृश्य देखकर कामिनी काँप उठी। यह वही शेखर था जिसकी मधुर स्मृति ने कामिनी के कोमल हृदय को पराभूत कर दिया था।

सड़क पर बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई थी। शेखर ने उन्हें हवेली में प्रवेश करने की आज्ञा दे दी थी, पर उनके लिए यह कार्य किले की सुदृढ़ प्राचीर को लाँघकर जाने से कम दुष्कर न था। उचितानुचित का भान भी उनको था। क्या वे अपने भावी मालिक की छाती पर पैर रख अन्दर चले जायँ ! किसमें था इतना साहस ? ऊपर से समस्त नगर-निवासियों तथा मज़दूरों का आक्रमण भी उन पर होने को तैयार था यदि वे यह अनुचित कार्य कर बैठते तो।

सब पीछे हट गए। मैनेजर साहब अपनी साहसी सेना को मुक़ाबला किये बिना ही वापस लौटा ले गए। सारा आकाश 'शेखर ज़िन्दाबाद', 'शेखर ज़िन्दाबाद' के गगनभेदी नारों से गूँज उठा।

वह कपड़े झाड़ता हुआ उठा। हज़ारों व्यक्तियों की भीड़ उसे घेरकर खड़ी हो गई। अनेक हृदय उसका गुण-गान कर रहे थे। एक हृदय ऐसा भी था, जिसने अपने स्वरूप को ही भुला दिया था, जिसने अपनी चेतना ही खो दी थी। यह था सबसे पीछे खड़ी हुई एक सुकुमारी नवयुवती कामिनी का हृदय।

शेखर हवेली में घुसा। उसके पीछे अपार जन-समूह उमड़ा चला आ रहा था। इस समय शेखर का मुख-मण्डल किसी विजय की प्रसन्नता से देदीप्यमान हो रहा था। एक अपूर्व तेज उसकी आँखों से निकल रहा था। हवेली मैदान में पड़ी हुई एक खाट के सहारे वह आकर खड़ा हो गया और प्रभावपूर्ण शब्दों में बोला, "मेरे निर्धन भाइयो, मैं कुछ कहना चाहता हूँ, ज़रा शान्ति से सुनिये।"

सबसे पीछे खड़ी कामिनी का कोमल शरीर कदली-दल के समान रह-रहकर काँप रहा था। अनवरी ने उसे अन्दर जाने का संकेत किया, पर उसने कुछ भी ध्यान न दिया। आख़िर उसने, कामिनी को सहारा देने के लिए अपनी गोदी में ले लिया।

शेखर ने बोलना शुरू किया, "मेरे प्यारे अभागे साथियो, मैं यह जानता हूँ कि मेरे पिता ने आप लोगों को बहुत कष्ट पहुँचाया है। इसी से मेरा सोना तथा खाना भी असम्भव हो गया है। मैं सम्पन्न घराने में जनमा तथा अपने माँ-बाप की इकलौती सन्तान होने के कारण वैभव के सुखद पलने में झूला हूँ। मुझे आज तक यह नहीं पता था कि निर्धनता क्या होती है तथा मुसीबत किसे कहते हैं। मेरी यह धारणा थी कि समस्त संसार मेरी भाँति ही चैन की बाँसरी बजाता होगा, पर इस घटना ने मेरी यह धारणा बदल दी है। मुझे इसने व्याकुल कर दिया। मैंने अपने जीवन में पहली बार ही यह दृश्य देखा है, जिससे मैं बिलकुल अनभिज्ञ था—ग़रीब तथा मज़दूर का जीवन।"

इन अल्प शब्दों ने श्रोताओं पर इतना प्रभाव किया कि हवेली का वातावरण एकदम बदल गया। सभी ओर घोर निस्तब्धता छा गई सभी मन्त्र-मुग्ध हुए बैठे रह गए। देखने से ऐसा प्रतीत होता था कि ये सब निर्जीव मूर्तियाँ बैठी हैं।

कामिनी की आत्मा मानो उसके शरीर में रही ही न थी। वह निर्निमेष दृष्टि से उसकी ओर देख रही थी। वह किसी स्थायी आनन्द

का अनुभव कर रही थी, उसका कोमल हृदय धीरे-धीरे, ऊपर-नीचे साँस-मात्र ले रहा था। वह कहाँ है, इसी दुनिया में या किसी अन्य स्थान पर, उसको ज्ञान नहीं था। उसकी दृष्टि शेखर के दमकते हुए चेहरे पर अटकी हुई थी। उसे शेखर के यह शब्द सुनाई दे रहे थे—"मैंने धनिकों का संसार देख लिया है, पर अब जो आनन्द मुझे इन ग़रीब मज़दूरों के जीवन में मिला है, इसका शतांश भी मुझे वहाँ उपलब्ध नहीं था।

"मेरे मित्रो, आप यह सोचते होंगे कि मैं आपकी सहायता करने आया हूँ। पर वास्तविक बात यह है कि मैं ध[illegible] संसार से उकताकर घबराकर आज आपके पास शरण लेने आया हूँ। मुझे अपने संसार में रहने के लिए जगह दो। मैं आज से आपका साथी हूँ। आपके ही साथ रहूँगा, आपके साथ मरूँगा।"

इस बीच में बाहर से और भी काफी जनता अन्दर आकर एकत्रित हो गई थी, हवेली का मैदान खचाखच भरा हुआ था। सब तरफ नर-मुण्ड ही दिखलाई दे रहे थे।

शेखर की पिछली बातों को सुनकर सभी श्रोताओं के हृदय आँखों की राह पिघल-पिघलकर बह रहे थे। फिर एक बार उत्साह-भरी आवाज़ें गूँज उठीं—"शेखर ज़िन्दाबाद।"

शेखर बोलता गया—"जहाँ ग़रीबों के रक्त को चूसकर शराब तैयार की जाती है, जहाँ मज़दूरों के कलेजों के रक्त, मांस तथा मज्जा से केक, बिस्कुट तथा पेस्ट्रियाँ तैयार की जाती हैं, जहाँ गरीबों की आर्त्त-ध्वनि को मीठे गीत के रूप में सुनकर अपना मनोरंजन किया जाता है और जहाँ अत्याचार और अनाचार को अपने मनोरंजन का साधन बनाया जाता है, उस संसार से मुझे घृणा हो गई है। मैं आज से उससे सम्बन्ध-विच्छेद करके आप लोगों में आया हूँ। मैं आप लोगों के साथ रहकर मेहनत, मज़दूरी करूँगा और पूरे हित की दृष्टि से आप

लोगों का साथ दूँगा। मुझे शरण दो, आशीर्वाद दो, धैर्य दो, जिससे मैं आपकी सेवा भली-भाँति कर सकूँ।"

शेखर ने, हृदय को उद्वेलित कर देने वाले इन वाक्यों से, लगभग सबको ही रुला दिया। इसका इतना भारी प्रभाव पड़ा कि नारे लगाने भी भूल गए।

अन्त में अपने भाषण को समाप्त करते हुए शेखर ने कहा, "मेरी एक बात और सुनो। आप लोग, मिल के सामने धरना दिये बैठे सभी भूखे मज़दूरों को वहाँ से उठा लाओ। वे क्यों—अपने प्राणों की बलि दे रहे हैं? किस बात पर? केवल कुछ महीनों के वेतन के बदले? इस तुच्छ वेतन से अधिक उनके जीवन का महत्त्व है। जब तक उनके शरीर में बल तथा हृदय में विश्वास है, वे इतनी क्या, इससे अधिक धन-राशि कमा सकते हैं। वे नाहक क्यों अपने जीवन को संकट में डाल रहे हैं। पूँजीपतियों तथा धनिकों के लिए उनके इन प्राणों का कोई महत्त्व न सही, पर मेरे लिए तो वे अमूल्य मोती हैं। मैं इन अमूल्य मोतियों को इस प्रकार धूल में मिलते नहीं देख सकता। जाओ, जल्दी जाओ और मेरा सन्देश उन तक पहुँचाकर उन्हें वापस लौटा लाओ। उनको मेरी ओर से यह कहना कि तुम लोग जिनके हृदय-परिवर्तन करने के लिए यह संकट उठा रहे हो, उनके हृदय पत्थर के टुकड़े हैं। चाहे आप अपनी जान की बाज़ी लगा दें, पर मैं यह दावे के साथ कहता हूँ, उन पर इसका नाम-मात्र भी प्रभाव न पड़ेगा! आपकी करुणापूर्ण अवस्था उनके मनोरंजन का साधन है, आपके आँसुओं को वे अपनी सफलता समझते हैं।"

शेखर इतना कहकर बैठ गया। जनता तितर-बितर हो गई। सब मज़दूरों का एक भारी जत्था रायबहादुर की मिल की ओर चल दिया।

हवेली बिलकुल खाली हो गई।

अभी तक हवेली की कुछ स्त्रियाँ तथा मज़दूर उसके चारों ओर खड़े थे। शेखर ने उनसे कहा, "मैं अब सदा तुम्हारे साथ हूँ। जाकर आराम करो।

सब मौन धारण किये चले गए।

शेखर ने देखा—उसकी बाईं ओर किसी खाट के सहारे एक संक्षिप्त-सा आकार अन्धकार में दिखाई दे रहा है। कोठरी से आ रहे तेल के दीपक के धीमे प्रकाश में उसकी प्रतिच्छाया काँपती नज़र आ रही थी।

"ओह, इतनी कमज़ोरी की अवस्था में तुम यहाँ क्यों खड़ी हो? तुम्हें अपनी खाट पर ही रहना चाहिए था। चलो, मैं तुम्हें छोड़ आऊँ" और शेखर उसकी कोमल-सी कलाई को पकड़ कर कोठरी की ओर चल पड़ा। शेखर जब कामिनी को कोठरी की ओर ले जा रहा था तब वह थर-थर काँप रही थी। इसका कारण उसे मालूम न था। संकोच तथा लज्जा की प्रथम झाँकी आज कामिनी के मुख पर देखने को मिली। आज तक कामिनी का हृदय अबोध बालिका का हृदय था, पर आज इस स्वच्छ सरोवर में प्रेम-चन्द्रिका की रश्मियाँ प्रथम बार पड़ीं। प्रेम क्या चीज़ है, इसे कामिनी का भोला हृदय अभी जानता न था। पर आज इस अपूर्व युवक की बातों ने, उसके मानवी प्रेम ने, और उसकी विलक्षण मुखाकृति ने कामिनी का हृदय अपनी ओर खींच लिया। विशेषतः शेखर की त्याग-वृत्ति ने तो कामिनी को वशीभूत ही कर लिया। उसके हृदय में अभी से ऐसे सूक्ष्म एवं कोमल भाव उत्पन्न होने लगे थे जिनका उसे कभी स्वप्न में भी ध्यान नहीं था। वे भाव क्या थे—सेवा, सहानुभूति, त्याग तथा बलिदान की भावना।

"क्या मैं भी कुछ कर सकती हूँ?" यही एक प्रश्न था जो बार-बार कामिनी के मन में उठ रहा था और बराबर वह प्रश्न कर रही

थी, "क्या मैं असमर्थ हूँ, यह काम करने के लिए? क्या मैं अपने दुखी भाइयों के लिए कोई काम नहीं कर सकती? एक इतने बड़े घर का नवयुवक सब ऐश्वर्य पर लात मारकर सेवा के कंटकमय पथ पर प्रसन्नता से आ सकता है तब भी क्या मैं कुछ नहीं कर सकती।"

उसके हृदय में कोई कहता, "तू सब-कुछ कर सकती है, तुझमें असीम शक्ति है।"

उसका हृदय आज कुछ बेचैनी अनुभव कर रहा था। कभी-कभी वह आशा के आकाश में उड़ने लगती और कभी निराशा के समुद्र में डूबने-उतराने लगती।

हवेली के मैदान से कोठरी तक पहुँचाने के थोड़े से समय में ही इतने विचार कामिनी के मन में घूम गए और इतनी तेज़ी से कि कदाचित् स्वप्न की चाल भी इतनी तेज़ नहीं होती।

शेखर ने बिना कुछ कहे-सुने यों ही उसे बेलों वाली कोठरी तक पहुँचा दिया और उसे चारपाई पर बिठाकर स्वयं बाहर निकल आया। बाहर आते हुए उसे यह भास हुआ कि उसकी कोई प्रिय चीज़ कहीं रह गई है। उसे अभी तक यह अनुभव हो रहा था कि कामिनी की गोरी तथा सुकुमार कलाई उसके हाथों में थिरक रही है। उसके मस्तिष्क में इस समय अद्भुत विचार आ-जा रहे थे।

◆

पाँचवाँ भाग

शेखर और कामिनी

: १ :

सन्ध्या हो गई थी। कई घण्टे की निरन्तर प्रतीक्षा करने के उपरान्त रायबहादुर के लिए मैनेजर का टेलीफोन आया, जिसने उनकी कमर ही तोड़ दी। शेखर का अपने ऊपर यह दूसरा प्रहार हुआ जानकर उनका खून खौलने लगा। शेखर ने फिर हवेली खाली कराने में विघ्न डाला। रायबहादुर की दृष्टि में इससे बढ़कर कोई और गुनाह नहीं हो सकता था। परन्तु साथ ही उन्हें मैनेजर की अदूरदर्शिता पर भी कम क्रोध नहीं आया। क्या वह शेखर को बहलाकर अन्दर नहीं जा सकता था? यह कौन-सा बड़ा काम था? ऐसे कुपुत्र को तो यदि घोड़ों की टापों के नीचे भी कुचला जाता तो मुझे और भी प्रसन्नता होती।

इन्हीं विचारों में डूबते-उतराते वे कोठी के बाहरी बरामदे में टहल रहे थे और सोच रहे थे, "इस अपराध के परिणामस्वरूप उस अयोग्य बेटे के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए और मैनेजर को क्या दण्ड देना चाहिए?"

उनकी विचार-मुद्रा तब भंग हुई जब कि उन्हें कोठी के फाटक से एक ऐसा व्यक्ति आता दिखाई दिया जिससे मिलना उनको अपना समय नष्ट करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं जँचा। इन्हीं सज्जन की प्रचार-मनोवृत्ति तथा साहस से इस बार रायबहादुर को हिन्दू-सुधार-सभा का प्रधान पद प्राप्त हुआ था। भले ही यह पद म्युनिसिपल कमेटी

की सदस्यता की भाँति प्रसिद्धि प्राप्त करने का कोई उत्तम साधन न हो, परन्तु फिर भी इसके द्वारा कई प्रकार के लाभ थे। इससे रायबहादुर हिन्दुओं की एक प्रसिद्ध संस्था के प्रमुख व्यक्ति समझे जाते थे।

चेहरे से क्रोध का भाव दूर करके कृत्रिम मुस्कराहट लाकर रायबहादुर उसकी ओर लपके।

डाक्टर मोतीलाल पेंगोरिया हिन्दू-सुधार-सभा के बड़े उत्साही कार्यकर्ता हैं। प्रैक्टिस तो आपकी नाम-मात्र को ही चलती है—और वैसे भी आपने कुछ रुपया देकर डाक्टर की उपाधि खरीदी है—हाँ, सुधार-कार्यों से अपना निर्वाह मजे में चलाए जा रहे हैं।

इनके हाथ में सभा का शुद्धि-विभाग है। जब से मुसलमानों में तनज़ीम की लहर प्रारम्भ हुई है, तब से ही इनके हृदय में हिन्दू जाति की उन्नति के भाव जाग्रत हुए हैं।

सभा के अधिवेशन में वे अपने कार्य को बड़े लम्बे-चौड़े विवरण से बतलाते हैं कि "इस वर्ष अमुक स्थान में इतने आदमी शुद्ध करके हिन्दू जाति में पुनः शामिल किये गए, इतने विधर्मियों चंगुल में फसे अछूतों को उनके यहाँ से निकाल क वैदिक धर्म में दीक्षित किया गया और इस काम में इतना धन व्यय हुआ आदि।" पर यह सब कार्य इनके नगर में रहते हुए ही होता रहता है। न ही कभी किसी ने उनके द्वारा खर्च की गई धन-राशि का हिसाब माँगा है और न कभी किसी ने उनकी बातों की सत्यता जानने की कोशिश ही की।

हाथ मिलाने के उपरान्त रायबहादुर उन्हें अपने [illegible] रूम में ले गए और कुशल-प्रश्न के बाद पूछा—

"कहिए डाक्टर साहब, आज कैसे कृपा की?"

"केवल दर्शनों के लिए ही उपस्थित हुआ हूँ, सेठ जी!"

"सुनाओ, सभा का क्या हाल-चाल है? इधर तो बहुत दिनों से कोई बैठक भी नहीं की, क्या बात है?"

"सेठ जी, क्या कहूँ धर्म की ओर किसी की भी रुचि नहीं रही। गत मास बैठक बुलाई गई थी। ६० सदस्यों में से केवल ११ ही उपस्थित हुए। कोरम भी पूरा न हो सका, जिससे कोई कार्यवाही न की जा सकी। हमारी जाति को पता नहीं क्या हो गया है कि किसी को धर्म-कर्म का कोई ख़याल ही नहीं रहता। दूसरी जातियाँ दिन-प्रति-दिन उन्नति के उत्तुङ्ग शिखर पर पहुँचती जा रही हैं और हमारी जाति अवनति के अतल गर्त्त में गिरती जा रही है। मुसलमानों की तनज़ीम ने जो गत वर्ष की रिपोर्ट प्रकाशित की है, वह तो आपने पढ़ी होगी। वे हज़ारों व्यक्तियों को मुसलमान बना चुके हैं; यदि यही हाल रहा तो हिन्दू जाति कुछ ही दिन की मेहमान और है। सैकड़ों अछूत भाई वैदिक धर्म को त्यागकर मुसलमान बन रहे हैं, यहाँ किसी के कान पर जूँ तक नहीं रेंगती।"

डाक्टर साहब के लम्बे भाषण से सेठ जी को ज़रा भी दिलचस्पी नहीं थी और न ही उनको अपनी चिन्ता कोई और बात सुनने देती थी। वे चाहते थे कि किसी तरह यह बला टल जाय; परन्तु डाक्टर साहब अपनी वक्तृता जारी रखी—

'भला ऐसी अवस्था में हमारी जाति कितनी देर तक सुरक्षित रह सकेगी? ऐसी अनाथ, हिन्दू-जाति का इतना घोर अपमान? बड़े-बड़े हिन्दू नेता और सुधारक क्यों नहीं चुल्लू-भर पानी में डूब मरते?"

"तो क्या कोई नई घटना घटित हुई है?" सेठ जी ने डाक्टर साहब के भाषण से प्रभावित होकर पूछा।

"सेठ जी, क्या बताऊँ अनर्थ हो गया, हिन्दू जाति की नाक कट गई और इसमें बहुत-कुछ दोष आपका……।"

"मेरा दोष है?" सेठ जी ने बीच में टोकते हुए पूछा।

"जी हाँ, आपका है। क्योंकि एक तो आप हिन्दू-सुधार-सभा

के सभापति हैं और इससे भी बड़ी बात यह है कि अनर्थ आपकी हवेली में ही हुआ है।"

"मेरी हवेली में?" सेठ जी ने डाक्टर के मुख की ओर ताकते हुए कहा—"आपको भ्रम होगा।"

"भ्रम हो सकता था यदि मैंने स्वयं न देखा होता।"

"क्या?"

"उस दिन मैं आपकी हवेली में एक बीमार लड़की को देखने गया था। मेरे पैरों तले से जमीन खिसक गई जब मैंने उस हिन्दू लड़की को मुसलमान के अधिकार में देखा। मेरा ख़याल है या तो वह मुसलमान बना ली गई होगी या शीघ्र ही बना ली जायगी। मैंने स्वयं उस लड़की को एक मुसलमान औरत के हाथ का खाते-पीते देखा है।"

उसके अनन्तर डाक्टर साहब ने उस दिन की सब घटना ज़रा बढ़ा-चढ़ा कर सेठ जी को सुना दी।

सेठ जी के हृदय पर इस सब माथा-पच्ची का कोई प्रभाव नहीं हुआ, क्योंकि वे ऐसे भ्रमात्मक विचारों को कभी के तिलांजलि दे चुके थे। यदि वे हिन्दू-सुधार-सभा के प्रधान थे तो भी यह ढोंग उन्होंने अपने निजी स्वार्थ को समक्ष रखकर, हिन्दू-समाज में मान तथा आदर प्राप्त करने के विचार से रचाया हुआ था। वैसे वे दिखलाने के लिए कभी-कभी पूजा-पाठ भी करते थे और समय पड़ने पर मंच से प्रभावपूर्ण भाषण भी दे देते थे, तथापि यह केवल आडम्बर-मात्र था। हाथी के दाँतों की भाँति। डाक्टर साहब को भी वे खूब समझते थे कि। कितने पानी में हैं।

डाक्टर साहब की इन बातों को सुनकर सेठ जी ने कल्पित चिन्ता का भाव प्रदर्शित करते हुए कहा, "डाक्टर साहब, यह तो वास्तव में बड़ी लज्जा की बात है।"

"सेठ जी, केवल चिन्ता प्रदर्शित कर देने और इस काम को

लज्जास्पद बताने-मात्र से ही काम नहीं चलेगा। यदि अब भी साहस से काम लिया जाय तो हम उस बालिका का उद्धार कर सकते हैं।"

सेठ जी को जब यह मालूम हुआ कि वह लड़की राघे की है, तो वे गम्भीर विचार-मुद्रा में तल्लीन हो गए। अब उन्हें अपने विरोधियों से बदला लेने का एक और नवीन उपाय मिल गया।

"पर सेठ जी" डाक्टर साहब ने चिन्ता प्रदर्शित करते हुए कहा, "यह काम जल्दी-से-जल्दी होना चाहिए। सम्भव है वे लड़की को कहीं छिपा दें।"

"पर आपको मालूम है कि मैं आजकल कितनी उलझन में फँसा हुआ हूँ ?"

कुछ देर चुप रहकर सेठ जी बोले, "डाक्टर साहब, मेरे विचार में इस काम को अभी कुछ दिन के लिए स्थगित रखें तो अच्छा है। इस समय मेरी सारी शक्ति दूसरी ओर लगी हुई है। कारोबार मेरा अलग तबाह हो रहा है और लोगों की निगाहों में मैं वैसे खटकने लगा है।"

"पर सेठ जी, यह काम तो आपकी और भी सहायता करेगा।"

"किस तरह ?"

"सुनो मैं आपको बतलाऊँ, इससे आपको तीन बड़े-बड़े लाभ हो सकते हैं।"

"कौन-कौन से ?"

"एक तो यह कि जिस जनता की नज़रों में आप आजकल खटक रहे , उसका ध्यान उससे हटकर दूसरी ओर लग जायगा। साथ ही आपको इस धार्मिक कार्य में व्यस्त हुआ देखकर जनता की सहानुभूति प्राप्त हो जायगी। ऐसा करने से आप सरकार की कृपा के पात्र भी बनेंगे। तीसरे आप अपने प्रतिद्वन्द्वियों से बदला भी भली प्रकार ले सकेंगे।"

"डाक्टर साहब, बात तो आपकी उचित है पर इसमें एक भय भी तो है।"

"क्या ?"

"यदि मामला बढ़ गया—हिन्दू-मुसलमानों में विरोध बढ़ गया जैसा कि पहले भी कई बार हो चुका है तो उपद्रव हो जाने की भी आशंका है।"

"होने दो उपद्रव, हमें इससे क्या मतलब ?"

"फिर भी खतरा तो है ही न।"

"कोई खतरा नहीं, हमें इसके कारण अपना कार्य नहीं रोकना चाहिए। उपद्रव होने से भी तो हमें एक प्रकार से लाभ ही होगा। आजकल हमारे सबसे बड़े शत्रु सोशलिस्ट हैं, जिन्होंने 'आज़ादी-आज़ादी' चिल्लाकर इन लोगों को अपने प्रभाव में ले लिया है। ये उपद्रव ही इस समय इनके सम्मान को ठेस पहुँचा सकते हैं, उसकी महत्ता कम कर सकते हैं, उसे हानि पहुँचा सकते हैं। सोशलिस्ट केवल धनिक वर्ग के ही शत्रु नहीं, प्रत्युत धर्म को भी मिटा देना चाहते हैं। जिसने एक बार इस संस्था में कदम रखा उसने ही सदा के लिए धर्म-कर्म को तिलांजलि दे दी।"

"तो फिर आप क्या चाहते हैं ?"

"सेठ जी, मैं तो एक ही बात कहता हूँ जब तक हम वीरतापूर्वक मैदान में नहीं निकलेंगे, हमारा कोई भी काम सफल नहीं हो सकता।"

"इसका तात्पर्य ?"

"इसका तात्पर्य यह है कि इस समय हिन्दू लड़की का धर्म बचाने के लिए हमें·······"

"पर यदि हिन्दू-मुस्लिम उपद्रव तक नौबत पहुँच गई तो सैकड़ों जानें जायंगी।"

"जाने दो, कोई परवाह नहीं। यदि दस-बीस प्राणियों की बलि

देकर हम हिन्दू-धर्म की रक्षा कर सकें तो क्या यह सौदा महंगा है?"

"तो क्या आप भी मरने के लिए तैयार हैं?" सेठ जी ने जान-बूझकर तीखा व्यंग्य किया।

"सेठ जी, यह आपने बड़ी अजीब बात कही है। भला मुझे मरने में क्या संकोच? पर मेरे और आप-जैसे सुधारक यदि बलिदान होने को तैयार हो जायं तो फिर हिन्दू जाति का सुधार कौन करेगा? साथ ही यहाँ तक नौबत भी नहीं आ सकती, जबकि हमारी एक ही अपील पर हजारों हिन्दू 'सर पर कफन बाँधकर मौत के घाट उतरने' को तैयार हो जाते हैं।"

"पर डाक्टर साहब, मेरी बात मानिए, फिलहाल कुछ देर के लिए कम-से-कम आध महीने के लिए इस मामले को न उठायं। क्योंकि मैं बहुत व्यस्त हूँ। जब वातावरण अनुकूल होगा तो आपको बुलाकर मैं इस सम्बन्ध में सारा कार्य-क्रम तैयार कर लूँगा।"

"पर यदि तब तक उस लड़की को उन्होंने कहीं इधर-उधर कर दिया तो?"

सेठ जी इस बात से अनभिज्ञ न थे कि रहमत और राधे में आपस में कितना प्रेम है और यह मूर्ख डाक्टर इस छोटी-सी बात को कितना बढ़ाना चाहता है। वे बोले—

"नहीं डाक्टर साहब, इसका तनिक भी भय नहीं, बशर्ते कि आप इस बात का कहीं भी उल्लेख न करें।"

"अच्छा, जो आपकी आज्ञा। ओह, ठीक और भी एक बात बड़ी ज़रूरी करनी थी। इस बार सदस्यों की ओर से मासिक चन्दे की आय बहुत कम हुई है और इसी कारण कई मास से सुधार का कार्य बन्द पड़ा है, नया बजट भी बनाना है।"

सेठजी ने ज़रा अन्यमनस्कता से कहा, "ख़ैर, अभी और कुछ काम चलाओ कोई-न-कोई ढंग निकालूँगा ही।"

"मेरा विचार है कि समाचार-पत्रों में एक अपील छपवाई जाय। आप तो यह अच्छी तरह जानते हैं कि रुपये के बिना कोई काम सफल नहीं हो सकता।"

"बहुत अच्छा।"

"उधर और भी चिट्ठियाँ आ रही हैं। वहाँ के शुद्ध किये हुए अछूतों को तनज़ीम वाले बहका रहे हैं। मेरी सलाह है कि मैं स्वयं वहाँ जाकर इसका यथोचित प्रबन्ध करूँ।"

"बहुत अच्छा।"

"पर कोष में तो……"

सेठ जी ताड़ गए कि यह बिना कुछ लिये यहाँ से नहीं उठेगा।

डाक्टर साहब जरा चुप रहकर फिर बोले, "फिलहाल कोष को यदि थोड़ी-सी रकम आप पेशगी……"

सेठ जी ने सौ रुपये का नोट देकर मुश्किल से अपना पिंड छुड़ाया।

अँधेरा बढ़ गया था, अब डाक्टर साहब वहाँ से विदा हुए। बाहर निकलकर उन्होंने एक ताँगा किराए पर किया।

मार्ग में शराब की एक दूकान आई, पिछली तरफ ताँगा खड़ा करके डाक्टर साहब ने कोचवान को नोट देकर धीरे से उसके कान में कुछ कहा।

कोचवान नोट लेकर शराब की दुकान की ओर चल दिया और डाक्टर साहब ताँगे में बैठे उसकी प्रतीक्षा करने लगे।

: २ :

शेखर की आज्ञा का सब मजदूरों ने पालन किया। पिकेटिंग समाप्त हो गई। सब लोग उसके शुभ दर्शन के लिए हवेली की ओर चल पड़े।

जो बेचारे अब तक अपनी डावाँडोल परिस्थिति में टूटे हुए दिल

से ज्यों-त्यों करके गले पड़ा ढोल बजा रहे थे, शेखर-जैसा नेता पाकर कृतकृत्य हो गए। उसके सहानुभूति से परिपूर्ण शब्दों ने उनके क्षीण शरीर तथा आत्मा में अपूर्व बल, साहस तथा शक्ति का संचार कर दिया और उन्हें यह अनुभव होने लगा कि वे प्राण रहते-रहते पूँजीवादी वर्ग क्या, एक बार समस्त संसार का भी वीरतापूर्वक मुक़ाबिला कर सकेंगे।

हवेली में एक बार फिर चहल-पहल हो गई। पर रात अधिक हो जाने के कारण शेखर ने सबको अपने-अपने घर जाने की सलाह दी। साथ ही उसने एक 'मज़दूर-संघ' बनाकर शहर के सब मज़दूरों से उसका सदस्य बनने की अपील की।

शेखर का यह दृढ़ निश्चय सुनकर कि वह अब अपनी कोठी पर वापस नहीं जायगा, यहीं उनके पास रहेगा; हवेली-निवासियों को चिन्ता हुई। इतने बड़े आदमी के रहने के लिए उन लोगों के पास कहीं भी ढंग की जगह नहीं थी और न ही कोई अच्छी चारपाई या बिस्तरा।

चारों ओर निगाह दौड़ाने के उपरान्त सबने आख़िर राधे की कोठरी को ही उपयुक्त स्थान ठहराया। यही एक कुटिया थी जिसको देखने से यह प्रतीत होता था कि यहाँ कोई रहता है। सामान भी वहाँ औरों की अपेक्षा सुसंस्कृत था। लेकिन वास्तव में बात यह थी कि कामिनी की बेलों ने उसकी कमी को ढक लिया था।

इससे भी बड़ी एक और चिन्ता थी, शेखर को खाना खिलाने की। यदि कामिनी इस समय रोग-शय्या पर न होती तो यह चिन्ता उन्हें न सताती। उसकी सुन्दर भोजन बनाने की कला से सभी परिचित थे। आख़िर बाज़ार से रोटी लाने का निर्णय हुआ और यह काम एक हिन्दू मज़दूर को सौंपा गया।

हवेली के मैदान में एक चारपाई पर शेखर बैठा था और बहुत-से मज़दूर उसके चारों ओर घेरा डाले खड़े थे। थोड़ी देर बातचीत करने

के उपरान्त शेखर को रोटी खाने के लिए कहा गया और इसके साथ ही एक स्वच्छ तौलिए से ढका हुआ थाल उसके सामने रख दिया गया।

थाल में दाल-शाक की पाँच-छः कटोरियाँ और पराँठे देखकर शेखर ने मुस्कराकर समीप ही खड़े मज़दूरों से पूछा, "क्या मेरे सब साथी ऐसा ही भोजन करते हैं?"

किसी ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया।

शेखर ने थाल को अलग सरकाते हुए कहा, "मालूम होता है मेरे साथियों ने अभी तक मेरा विश्वास नहीं किया है। मैं वैसा ही खाना खाऊँगा जैसा आप लोग खाते हैं।"

"नहीं साहब" एक वयस्क मज़दूर ने जरा आगे बढ़कर कहा, "हमारे लिए आपने पहले ही कौन कसर रखी है। हम आपके उपकारों का बदला किस प्रकार चुका सकते हैं?"

"पर आपको यह मालूम होना चाहिए कि मैं भी अब एक साधारण मज़दूर हूँ। मैं आप लोगों में से किसी के चूल्हे के आगे बैठकर किसी वृद्धा माता के हाथ की बनी रोटी खाऊँगा।"

सब एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे।

इसी समय अकस्मात् शेखर की दृष्टि पीछे खड़ी हुई अनवरी पर पड़ी और वह बोल उठा, "मैं इस माता की रसोई में बैठकर खाना चाहता हूँ।"

सब ही अवाक् रह गए। अन्त में एक ने निर्णयात्मक लहजे में कहा, "यह तो मुसलमान है।"

"मुझे पता है" शेखर ने फिर एक श्रद्धाभरी निगाह से अनवरी की ओर देखते हुए कहा, "इनका क्या मज़हब है, यह जानने की मुझे आवश्यकता नहीं; मैं इनकी सेवा-वृत्ति तथा आध्यात्मिक पवित्रता देख चुका हूँ। हिन्दू और मुसलमान होने के भाव अपवित्र आत्माओं में रहते हैं। यह मेरा सौभाग्य होगा कि आज मैं इस देवी-तुल्य माता

के हाथ का बना भोजन करूँगा । मुझे इससे भारी प्रसन्नता होगी ।"

"जैसी आपकी इच्छा" कहकर उन्होंने शेखर को धीरे-धीरे अनवरी की कोठरी तक पहुँचाया ।

सबसे पहले उसने रहमत की चारपाई पर बैठकर उसको धैर्य तथा सान्त्वना दी और फिर रोटी खाने के लिए अनवरी के चौके में जा बैठा ।

कामिनी यद्यपि बीमार व कमज़ोर थी, फिर भी अनवरी ने उसे सहायता के लिए अपने पास बिठा लिया । क्योंकि हिन्दू रीति से रोटी बनाने और परोसने से वह सर्वथा अनभिज्ञ थी ।

कामिनी ने थाली, कटोरी और गिलास अपने घर से ला दिये ।

शेखर के जीवन में यह प्रथम ही अवसर था कि धार्मिक ढोंगों को मिटाकर उसने रोटी खाई और कदाचित् यही कारण था कि उदर-पूर्ति के अतिरिक्त उसे भारी आत्म-सन्तोष भी प्राप्त हुआ ।

रोटी खिलाने के पश्चात् मज़दूरों को उसके सुलाने की चिन्ता हुई और बहुत-कुछ सोच-विचार करने के बाद इस कार्य के लिए कामिनी की 'शान्त कुटी' ही उपयुक्त समझी गई ।

बेल के झुरमुट के नीचे उसकी चारपाई लगाई गई । बहुत भाग-दौड़ करके मज़दूरों ने साफ चादर, तकिया, दरी आदि लाकर बिस्तरा बिछा दिया; परन्तु शेखर ने इसे भी अंगीकार न किया; सब कपड़े उठा दिये और कहा, "गर्मी का मौसम होने के कारण कपड़ों की वैसे भी आवश्यकता नहीं है और तकिए मेरे पास एक के बजाय दो हैं" अपने हाथों की ओर संकेत करके शेखर ने कहा ।

मज़दूरों ने बहुत आग्रह किया पर उसने एक न मानी ।

आखिर शेखर की ही बात मानकर सब मज़दूर अपने-अपने स्थान को वापस लौट गए । आज उनके हृदय उत्साह से उछल रहे थे ।

बेरोजगारी और ग़रीबी की हालत में होते हुए भी आज वे अपने में किसी अद्‌भुत शक्ति को पा मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे थे।

शेखर उसी तरह खाली खाट पर लेट गया। उसके हृदय में दबी हुई बेचैनी एक बार फिर जाग उठी। वह कामिनी की चितवन में गोते खाने लगा। अपने सिर के ऊपर झूलती हुई कामिनी की अधमुरझाई बेलों की तुलना वह उस सजीव कामिनी की कोमल कलाई से कर रहा था। उसे इन दोनों में कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता था। वह भी कोमल यह भी कोमल; वह भी सुन्दर यह भी सुन्दर; वह भी मुरझाई हुई और यह भी कुम्हलाई हुई। उसे सब एक-सा ही लग रह।था।

कामिनी की खाट आज अनवरी ने अपने दरवाजे के सामने बिछाई थी। रहमत इस समय सो चुका था।

साफ किये हुए बर्तन जब कामिनी अपनी कोठरी में रखने गई तो उसने शेखर को सोया हुआ देखा और जाकर अनवरी से कहने लगी, "चाची, वह तो बेचारा सिर्फ़ खाट पर ही सोया हुआ है। न कपड़े बिछे हैं और न तकिया ही लगा है।"

"सच, अनवरी ने आविश्वसनीय लहजे में कहा, "खाली खाट पर ही ?"

"हाँ चाची !"

"बेटी, तू भी तो निरी बच्ची है" अनवरी ने प्रेम-मिश्रित क्रोध में उससे कहा, "अन्दर से कोई कपड़ा उठाकर तुमसे नहीं बिछाया जा सकता था; बेचारा बड़े घर का लड़का है। जा, रानी बेटी। मैं ही चली जाती; पर मुझे शर्म लगती है। मालूम होता है तेरे चाचा की भी आँखें लग गई हैं; नहीं तो वे ही चले जाते। देख धीरे से जाना; कहीं गिर न जाना ।जाकर उसे कोई अच्छा-सा कपड़ा दे आ !"

कामिनी का दिल धड़कने लगा। वह सोचने लगी—कैसे कहूँगी

'उठिए' बिछा दूँ पर इसमें हर्ज भी क्या ?

वह उठी और धीरे-धीरे घर की ओर चल पड़ी।

शेखर की आँखें बन्द थीं—पता नहीं नींद के कारण या किसी की चिन्ता में। वह यह शब्द सुनते ही चौंक पड़ा, "उठिए, जरा दरी बिछा दूँ; मूँज की खाट है चुभती होगी।"

"ओह, नहीं आप कोई कष्ट न उठायें। मुझे कोई कष्ट नहीं। बड़े आराम से लेटा हूँ।" उसने सिरहाने खड़ी कामिनी की ओर देखकर कहा।

पर कामिनी वहाँ से न हटी और न कुछ बोली। उसी तरह दोनों हाथों में दरी थामे वह खड़ी रही। शेखर की बात उलटने की उसमें हिम्मत नहीं थी। इस शान्त किन्तु दृढ़ आग्रह ने शेखर को परास्त कर दिया। जो कई आदमियों के मिन्नत करने पर भी कुछ कपड़ा बिछाने को तैयार न हुआ था वह इस बालिका के मूक आग्रह के सामने टिक न सका और कुछ कहे बिना ही खाट से खड़ा हो गया।

कामिनी ने दरी बिछाई। शेखर बैठने ही लगा था कि वह बोली, "जरा ठहरिए।"

मानो किसी ने बलात् उसे रोक दिया वह खड़ा हो गया। दरी के ऊपर खद्दर की एक सफेद चादर बिछ गई और वह लेट गया।

कामिनी अब भी निश्चिन्त न हुई। तकिए पर गिलाफ चढ़ाने लगी—वही गिलाफ जिसकी फूल-पत्तियाँ अभी अधूरी ही थीं।

गिलाफ चढ़ाकर वह शेखर के सिरहाने की ओर आ खड़ी हुई। चाहे वह कुछ न बोली हो पर शेखर के कानों को सुनाई दिया, मानों कोई कह रहा था—"सिर उठाइए।"

उसने सिर उठाया और कामिनी ने तकिया रख दिया।

प्यार का देवता दोनों ओर इस समय किसी सूक्ष्म रूप में इधर-से-उधर, उधर-से-इधर; अपने बन्धन दृढ़ कर रहा था।

कामिनी जाने के लिए बेलों की ओर बढ़ी ही थी कि शेखर ने पूछा, "आपका नाम क्या है ?"

"जी, कामिनी" वह जाती-जाती रुक गई ।

"और यह सुन्दर बेल भी शायद कामिनी की है–क्यों ?" किसी ने शेखर के मुँह से बलात् निकलवा दिया वह लज्जित था ।

कामिनी ने इस प्रशंसा का कोई उत्तर नहीं दिया ।

"कामिनी जी, यदि आपका जाना अत्यन्त आवश्यक न हो तो मैं आपके साथ दो-चार बातें करना चाहता था ।" उसने बड़ी कठिनाई से बलपूर्वक ये शब्द मुँह से निकाले ।

कामिनी लौट पड़ी; परन्तु इस भाँति जैसे कोई प्रतिमा हो । वह आकर उसकी खाट के पास खड़ी हो गई ।

"कामिनी जी, आप बैठ क्यों नहीं जातीं ?"

मानो किसी ने कामिनी पर जादू कर दिया । एक निर्जीव पुतली की तरह वह खाट की पट्टियों पर बैठ गई ।

शेखर भी उठकर बैठ गया और बोला, "अब आपकी तबियत कैसी है ?"

कामिनी को इस समय अपने ऊपर बड़ी खीझ आ रही थी कि उसे आज क्या हो गया है । उसके मुँह से बात क्यों नहीं निकलती और क्यों वह अपने-आप में विलीन होती जाती है । जो राह चलतों के साथ बात करने को उत्सुक रहती थी उसकी वह चंचलता आज किस अज्ञात दिशा को चली गई । इस समय मानो किसी ने उसके गले को जोर से दबाया हुआ था ।

न बोलना मूर्खता समझ उसने जोर लगाकर कहा, "अब तो बुखार उतर गया है ?"

शेखर ने कामिनी की परिस्थिति को समझा । वह इस समय बड़ी

दुविधा में पड़ी थी। उसकी इच्छा उससे बात करने की थी; पर कामिनी को इस भारी विपत्ति में फँसा देख, उसने विचार पलट दिया और उसको विदा करने के ढंग से बोला, "ईश्वर को धन्यवाद है, जाइए अब आराम कीजिए यदि हो सके तो मेरे लिए एक लोटा पानी भेज दीजिएगा।" कामिनी बाहर निकली और एक लोटा पानी भरकर उसकी खाट के नीचे रख आई और फिर अपनी खाट पर जाकर पड़ रही।

वह हृदय पर भार लेकर लौटी। वह सोच रही थी—"कहते थे बातें करनी हैं। पर ओह, मैं कितनी अभागिन हूँ। मन में कहते होंगे—ऐसी मूर्ख के साथ क्या बातें करूँ; भला क्या मुझे मौत आजाती जो मैं उनसे बोल पड़ती? पता नहीं, मेरे असभ्यता-पूर्ण व्यवहार से वे कितने असन्तुष्ट हुए होंगे। कितने उत्साह से उन्होंने मुझे बुलाया था मानो वे मुझे बहुत प्यार करते हों। पर अब, अब तो मैं उनके दिल में अपने लिए केवल एक-मात्र घृणा ही छोड़ आई हूँ।"

इसी समय अनवरी ने पूछा, "कपड़े दे आई?"

"हाँ चाची।" कामिनी ने दुःखित हृदय से कहा, "लेते नहीं थे, जबरदस्ती ही दे आई हूँ।"

"कितना मस्त-हृदय है!" अनवरी ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा, "पता नहीं घर पर कैसे नर्म गद्दों पर सोता होगा, बात-बात पर नौकर हाथ जोड़े खड़े रहते होंगे, नाना प्रकार के व्यंजन भोजन में मिलते होंगे। बेचारा शीश-महलों में से निकलकर कहाँ आ पड़ा। या मेरे अल्लाह, माई के लाल को गर्म हवा न लग जाय।" कहकर अनवरी ने एक ठंडी आह भरी।

कामिनी ने उसकी बातें सुनीं, पर बड़ी उद्विग्नता पूर्वक। मानो वह कोई अपनी प्रिय चीज़ वहाँ खो आई थी।

: ३ :

रात बीती, प्रभात हुआ। हवेली के सारे मजदूर स्त्रियाँ तथा बच्चे सोये थे; केवल कामिनी की ही आँखों में नींद नहीं थी। रात्रि का अत्यधिक भाग उसने करवटें बदल-बदल कर ही काटा था; किसी अज्ञात शक्ति ने उसकी आँखों तथा हृदय पर अधिकार कर लिया था। इस समय दो भावनाएं उसके अन्तर में हाहाकार मचा रही थीं, एक तो शेखर का प्रेम तथा ममता से पूर्ण वार्तालाप तथा दूसरी उसके प्रिय पिता की चिन्ता, दुःख तथा निराशा से भरी याद।

वह बराबर देख रही थी—लोहे के शलाखों के पीछे जेल की गर्मी और उमस से भरी कोठरी और उसमें ऊँघते हुए अपने पिता को। आह, पता नहीं किसी ने रोटी का टुकड़ा या पानी का घूँट भी उन्हें दिया होगा कि नहीं ? अब उन्हें कौन प्यार से कहता होगा—"बाबूजी, रोटी ठण्डी हो रही है। किसकी मीठी मुस्कराहट से उनका थका, मेहनत से चूर-चूर हृदय आराम पाता होगा !"

इसी भाँति के विचारों में उलझी हुई कामिनी आँसू पोंछती हुई, पता नहीं क्या सोचकर धीरे से खाट से उठी और दबे पैरों अपनी कोठरी की ओर चल पड़ी।

नीचे लटकी हुई बेल को ऊपर करके वह जरा झुककर अन्दर घुसी।

अन्दर जाकर उसने जो-कुछ देखा उससे कामिनी का दिल मसोस उठा।

शेखर मीठी नींद में लम्बे-लम्बे साँस ले रहा था। कामिनी का रात वाला बिस्तर—पैरों की ओर रखा हुआ था। वह नंगी खाट पर ही तकिए की जगह हाथ लगाए लेटा हुआ था।

कामिनी को कँपकँपी-सी आ गई। वह सिरहाने की ओर खड़ी होकर उस तपस्वी के गम्भीर मुख को देख रही थी। उसने भगवान्

बुद्ध का जीवन-चरित्र पढ़ा था; आज वही सिद्धार्थ का साक्षात् रूप उसके समक्ष था। उस सुन्दर मुख के दर्शनरूपी अमृत को वह दोनों आँखों से पी रही थी। उसका हृदय यही चाहता था कि वह प्रलय तक इसी स्वर्गीय सुख का अनुभव करती रहे, न उसकी नींद टूटे और न ही इसकी तृप्ति का अन्त हो।

पर इस अमृत-सुख में विघ्न पड़ गया, जब उसकी खाट के समीप रखा हुआ लोटा अचानक बिल्ली के ऊपर से निकलने के कारण गिर गया।

नींद में शेखर कदाचित् कोई सुख-स्वप्न देख रहा था। एकाएक लोटे के गिरने के 'खड़ाक' शब्द से उसकी आँख खुल गई।

कामिनी उसके सिरहाने की ओर खड़ी थी, उसे बिल्ली की इस हरकत पर रह-रह कर क्रोध आ रहा था, वह पसीने-पसीने हो रही थी।

शेखर उठ बैठा, "कामिनी जी!"

रात वाली अवज्ञा ने कामिनी की लज्जा दूर कर दी थी, वह धीरे-धीरे बोली, "हाँ!"

"तुम यहाँ कब से खड़ी हो? बैठ जाओ। मैं सपने में तुम्हें देख रहा था।" शेखर ने प्यार-भरी निगाह से उसकी ओर देखकर कहा।

कामिनी ज़रा मुस्करा कर बैठ गई। रात वाला संकोच अब उसमें नहीं था। वह बोली, "आपने बिस्तर क्यों हटा दिया?"

"इसकी कोई आवश्यकता न थी।" शेखर ने मीठे स्वर में कहा, "उस समय तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सका।"

"मैं, और मेरी आज्ञा।" बालिका के कोमल हृदय ने कहा, "यह मैं क्या सुन रही हूँ?"

"तुम्हारी तबिअत अब कैसी है, जरा दिखाओ तो हाथ?" शेखर ने अपना हाथ बढ़ाते हुए कहा।

कामिनी ने अपना हाथ बढ़ा दिया।

"बुखार तो अब नहीं मालूम देता?"

"नहीं, तबिअत भी कुछ हल्की है।"

"क्या तुम रोजाना इतने सवेरे उठती हो?"

"नहीं, यों ही नींद उचट गई थी आज।"

"पर तुम्हारी आँखों से तो मालूम होता है कि तुम बहुत कम सोई हो?"

कामिनी ने कोई उत्तर न दिया, पर इसी बीच उसे रात वाली घटना का ध्यान हो आया। वह बोली, "चिन्ता के कारण नींद नहीं आई।"

"पिता जी की चिन्ता के कारण?" शेखर ने पूछा।

कामिनी यही प्रसंग छेड़ना चाहती थी, पर यह नहीं सोच सकी थी कि किस प्रकार प्रारम्भ करे। उसकी यह कठिनाई अपने-आप दूर हो गई। वह बोली, "जी हाँ।"

"कामिनी जी, क्या मैं आपकी चिन्ता दूर करने में कुछ सहायता कर सकता हूँ।"

"बाबू जी से मिलने को मेरा मन बहुत करता है।" कामिनी ने आँखें भरकर कहा।

"यह तो बहुत मामूली-सी बात है। दिन चढ़ने पर मैं तुम्हें ले चलूँगा। जेलर मेरा परिचित है। उसका लड़का भी मेरा सहपाठी है।'

कृतज्ञता के आँसू कामिनी के नेत्रों में छा गए।

"कामिनी जी!" कुछ देर चुप रहने के बाद शेखर ने कहा, "तुम्हारे पास खद्दर का धोती-कुर्ता होगा?"

"बाबूजी के कपड़े पड़े हैं, उस दिन मैंने उनके लिए धोकर रखे थे, क्यों, लाऊँ?"

"हाँ, मुझे जरूरत है।"

अन्दर जाकर कामिनी दोनों कपड़े निकाल लाई।

"कामिनी जी, आप कितनी अच्छी हैं।" कपड़े लेकर उसने धन्यवाद के लहजे में कहा।

कामिनी बराबर सोच रही थी—"मेरे जैसी तुच्छ लड़की को—जो उसके नौकरों की बराबरी भी नहीं कर सकती—'तुम' और 'जी' कहता है। यह कैसा भोला मनुष्य है!"

"अच्छा कामिनी जी" उसने प्यार के ढंग से कहा, "जाकर तुम थोड़ा-सा सो लो, दिन चढ़े चलेंगे तुम्हारे बाबू जी से मिलने। तुम कुछ पढ़ी हुई भी मालूम होती हो। तुम्हारी बात-चीत का ढंग बड़ा मधुर एवं कोमल है।" वह अपने इस बेढंगे प्रश्न पर मन-ही-मन लज्जित हो गया।

"जी, मैं कक्षा सात तक पढ़ी हुई हूँ" कामिनी ने अपनी तुच्छ-सी शिक्षा के विषय में संकोचपूर्वक कहा।

"पर इतनी अच्छी बोल-चाल तो उच्च शिक्षा प्राप्त लड़कियों की भी नहीं होती।"

कामिनी पर नशे का-सा जादू छा गया।

"अच्छा, फिर जाओ दो घड़ी आराम कर लो। पूरी नींद न लेने के कारण कहीं तुम्हारा स्वास्थ्य फिर न बिगड़ जाय!"

कामिनी उठी, मानो वह बन्धन के संसार में उड़ रही थी।

शेखर ने एक बार फिर पूछा, "क्या यह सुन्दर बेल तुम्हारे ही हाथों से लगाई हुई है?" कामिनी ने केवल निगाह नीची करके ही इसका उत्तर दिया और वह कोठरी से बाहर हो गई।

: ४ :

ठंडे और कठोर लोहे में से भी एक-आधी चिनगारी निकल ही आती है, जब कि हथोड़े की भारी चोट उस पर पड़ती है।

रायबहादुर का हृदय भी चाहे लोहे के समान ही कठोर और ठंडा था, पर ज्यों ही दिन चढ़े उठने पर जब उन्होंने सुना कि उनके जीवन का एक-मात्र सहारा सदा के लिए अपने घर और इष्ट-जनों से नाता तोड़कर ग़रीब मज़दूरों में जा बसा है, तो उनकी आँखों के आगे अन्धेरा छा गया, उनके हाथों के तोते उड़ गए। उन्होंने अपने हृदय को बहुतेरा ढाढ़स दिया, उस जैसे नालायक और कुल-कलंक पुत्र के लिए घृणा के बहुतेरे बाँध बाँधे; पर इस ख़बर ने, पुत्र-वियोग के तूफ़ान ने, सब बाँध तोड़ दिये। दिल अन्दर-ही-अन्दर जलने लगा।

प्रातःकालीन दक्षिण समीर चल रहा था, फूलों से भरपूर रायबहादुर की कोठी के आगे का बगीचा पूरे वासन्तिक यौवन पर था, पर आज उनको उसमें भी आग की लपटें निकलती दिखाई देती हैं।

वह बड़ी बेचैनी की अवस्था में कोठी के सामने के दालान में इधर-उधर टहल रहे थे कि सामने से पार्वती आती दिखाई दी।

रात-भर जागते रहने और पुत्र-वियोग में रोते रहने के कारण उसकी आँखें सूजी हुई थीं। आते ही उसने कातर स्वर में कहा, "यह क्या कर बैठे हो जी आप, हाय मेरा शेखर। मेरे तो प्राण निकले जा रहे हैं।"

शायद पार्वती को रात ही यह खबर मिल चुकी थी, पर इससे आगे न बोल सकी और जमीन पर ही बैठ गई। उसे इस अवस्था में देखने की क्षमता रायबहादुर के अतिरिक्त किसी और में शायद नहीं हो सकती।

रोते-रोते उसका कंठ अवरुद्ध हो गया।

रायबहादुर इसके दुःख को दिल से महसूस कर रहे थे और उससे भी बढ़कर अपनी पीड़ा को। पर वे इतने मूर्ख नहीं थे कि अपने किये कामों से एक कदम भी पीछे हटते। क्रोध से बोले,

"तुझे क्या हो गया है ? चला गया है तो जाने दे। मर तो नहीं गया, आप ही झख मारकर लौट आयगा।"

धैर्य के साथ ही पार्वती की स्त्री-स्वभाव-सुलभ नम्रता एवं लज्जा भी जाती रही। वह बोली, "मेरी गोद सूनी करना चाहते हो क्या ? मैंने मर-मर कर, बड़ी-बड़ी मिन्नत-मनौतियों के बाद एक यही प्राप्त किया था। मैं उसके बिना मर जाऊँगी, नहीं तो वापस बुलाने का प्रयत्न करो, मेरे शेखर को।" पार्वती की दुःख-भरी ध्वनि से समस्त वातावरण गूँजने लगा।

"मरती है, तो मर जा।" रायबहादुर ने क्रोध से कहा, "जा, चली जा तू भी उसके पास, यदि तुझे बेटे का दर्द है तो। मुझे उसने कहीं का भी न छोड़ा, मेरे नाम को कलंक लगा दिया। मेरे किये-कराये पर पानी फेर दिया। मेरी ओर से तो कल मरता हो, आज मर जाय।"

कहने को तो रायबहादुर कह गए, पर उनके चेहरे पर उड़ रही हवाइयाँ बतला रही थीं कि उनका हृदय भी कम बेचैन नहीं।

"रक्षा कीजिए" पार्वती धड़ाम से सेठ जी के पैरों पर गिरकर बोली, "मुझे मार दो, घर से निकाल दो, मेरा सब-कुछ छीन लो; पर मेरा शेखर मुझको ला दो। मेरा शेखर······" और वह दोनों हाथ उनके बूटों पर रगड़ती हुई चिल्लाने लगी।

"दूर हो जा मेरे आगे से।" रायबहादुर ने बूट की ठोकर से उसे हटाते हुए कहा, "मेरे पास तेरी बकवास सुनने के लिए समय नहीं।"

आँसुओं के साथ मानो पार्वती का हृदय भी पिघल-पिघल कर बह रहा था।

रायबहादुर कुछ और कहने वाले ही थे कि सामने चपरासी आता हुआ दिखाई दिया, जिसके हाथ में एक पोटली थी।

"हुजूर, एक आदमी अभी दे गया है।" कहकर चपरासी ने दोनों हाथों से पोटली रायबहादुर को पकड़ा दी।

क्रोध से काँपते हुए हाथों से रायबहादुर ने पोटली खोल ली और उसकी चीज़ें एक-एक करके भूमि पर पटकने लगे।

पार्वती ने सिर ऊपर को उठाकर उसे देखा। उसने तुरन्त इन चीज़ों को पहचान लिया। वही पैंट, वही कोट, वही हैट, वही बूट और वही टाई, रूमाल, कालर तथा सुनहली जंजीर वाली रिस्ट-वाच। सब चीज़ें वही थीं, जिनको पहनकर कल शेखर कोठी से बाहर निकला था और फिर नहीं लौटा था।

वह जल्दी से उठी और चट से सब चीज़ें जमीन पर से उठाकर छाती से लगा लीं।

जब उसने ऊपर को देखा तो रायबहादुर एक छोटा-सा काग़ज़ का पुर्ज़ा पढ़ रहे थे, जो उनको पोटली में से मिला था।

उसने निर्भयतापूर्वक वह काग़ज़ पति के हाथ से छीन लिया और आँसू पोंछती-पोंछती पढ़ने लगी। उसमें लिखा था—

"पूज्य पिता जी,

आपकी आज्ञानुसार मैं आपको व आपके परिवार को सदा के लिए छोड़ रहा हूँ। ये कुछ वस्तुएँ-जिन पर अब मेरा अधिकार नहीं है-वापस कर रहा हूँ। सँभाल लें। यदि आप मेरी अन्तिम प्रार्थना स्वीकार कर सकें तो मेरी स्नेहमूर्ति माता जी को, जिनके लिए मेरा हृदय अब भी तड़प रहा है, धैर्य तथा सान्त्वना देते रहना। दुखी न होने देना और कह देना—'सहस्त्रों पुत्र मरकर माँ की गोद सूनी कर जाते हैं; मैं तो जीवित हूँ। धैर्य रखें। मेरी याद में रो-रोकर प्राण न खो दें।' बस, अन्तिम प्रणाम।

आपका—

शेखर"

पार्वती पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

उसकी चेतना विलुप्त हो गई।

नौकरों की सहायता से उसे अन्दर पहुँचाया गया। रायबहादुर पत्थर बने वहीं खड़े थे। आँखें सूखी थीं, परन्तु दिल रो रहा था।

: ५ :

राधे को जेल में आए आज कई दिन हो चुके हैं। रायसाहब और उनकी मिल की सब बातें उसके कानों तक पहुँच चुकी हैं। पहले दिन वह अकेला आया था, अब उसके बहुत-से साथी जेल में आ गए हैं। परन्तु अभी तक उसने किसी का साक्षात् दर्शन नहीं किया।

पुलिस कदाचित् अभी तक अभियोग को पूर्णरूपेण नहीं बना सकी है। इसी कारण अदालत में भी उनको पेश नहीं किया गया।

राधे को एक अलग अहाते में रखा गया है। इसका कारण उसका भयंकर अपराधी तथा अन्य सब उपद्रवों का नेता होना है।

वह जब से जेल में आया है एक क्षण के लिए भी कामिनी की चलते समय की अवस्था उसके नेत्रों से ओझल नहीं हुई। वह अपनी लाडली बेटी को जिस बीमारी और मूर्च्छा की दशा में छोड़कर आया था वह तो दूसरे व्यक्तियों के लिए भी हृदय-द्रावक थी। फिर राधे तो अपनी आत्मा को हृदय से निकाल कर फेंक आया था।

राधे के लिए यह चोट साधारण न थी, उसकी कृश आत्मा तथा काया में अब ज़रा-सा भी धक्का सहन करने की शक्ति नहीं थी। जेल में पहुँचते ही उसका स्वास्थ्य बिगड़ना शुरू हो गया। उसको खून की पेचिश होने लगी और शरीर की अवस्था भी क्रमशः क्षीण होती चली गई। कई दिनों से अनाज का एक साधारण भाग उसके पेट में न जा सका था। दोनों समय जेल की रोटी उसके लिए आती; पर वह ज्यों-की-त्यों कोठरी में पड़ी सूखती रहती। उसकी आँखों पर भी इसका गहरा प्रभाव हुआ और दृष्टि क्षीण होने लगी। कानों में भी साँय-साँय होने लगी है। कभी-कभी तो वह इतना घबरा जाता है कि

वह समझता है कि बस अब उसके अन्तिम दिन आ पहुँचे। फिर भी इस असार संसार को छोड़ने से पहले एक बार वह अपनी पुत्री से मिलकर उसको जी-भर प्यार करना चाहता था। पर यह कैसे सम्भव था? यहाँ तो उसकी बात तक पूछने वाला भी कोई नहीं था। मुलाकात करनी तो असम्भव ही थी।

आज सवेरे से राधे का चित्त और भी बेचैन है। उठकर चलना-फिरना भी उसके लिए कठिन हो गया है। वह ज्यों-ज्यों बाहर की ख़बरें, रायबहादुर के अत्याचार तथा मज़दूरों की बेचैनी भरी कहानी सुनता तो वह मन-ही-मन इस आपत्ति के टलने की प्रार्थना करता।

सवेरे का समय है। राधे अपनी कोठरी में पड़ा हुआ कामिनी की चिन्ता में घुल रहा है। वह रह-रहकर सोचता है, उसका क्या होगा? कहाँ-कहाँ भटकेगी और पता नहीं किन-किन मुसीबतों का सामना उसे करना पड़ेगा। रहमत और अनवरी, जो इस समय मुसीबत के दिन काट रहे हैं, उसकी क्या सहायता कर सकेंगे? बीमारी की अवस्था में वह इस दुनिया से चल बसी तो? पर अच्छा ही होगा, भावी आपत्तियों का सामना तो उसे नहीं करना पड़ेगा। मेरी छाती से एक भारी भार उतर जायगा। आह बेचारी मन-ही-मन कहती होगी, 'कैसे माता-पिता के घर जन्म लिया, जहाँ पेट भरने को रोटी और तन ढकने को कपड़ा भी नसीब नहीं होता। जहाँ असीम तथा अटूट कष्टों के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं।' काश! मरने से पूर्व मैं एक बार उसे देख लेता?

वह यही सोच रहा था कि बाहर से आवाज आई, "राधे, ओ राधे के बच्चे, बाहर निकल।"

वह सारा जोर लगाकर उठा और डगमगाता हुआ बाहर निकला।

वार्डर फिर कड़का—"जल्दी चल, क्या टाँगें टूट गई हैं?"

"हुक्म करो जमादार जी।" राधे ने नम्रतापूर्वक कहा।

"मुलाकात है तेरी।"

"मेरी मुलाकात!" राधे ने विस्मित नेत्रों से उसकी ओर देखकर कहा, "कौन है जी, मेरा मुलाकाती?"

पर्चे से नाम पढ़कर वार्डर बोला, "कामिनी—चल जल्दी।"

कामिनी का नाम सुनते ही राधे के निराश मुख-मंडल पर आशा की रेखा दौड़ गई और निर्बल शरीर में अपूर्व बल आ गया।

"अच्छा जी, चलो।" कहकर वह वार्डर के पीछे-पीछे चल दिया।

दूसरे कैदियों की तरह उसे सींखचे और जाली वाले गेट पर नहीं ले जाया गया; प्रत्युत जेलर की विशेष आज्ञा से ड्योढ़ी के पास के एक छोटे कमरे में उसकी मुलाकात का प्रबन्ध किया गया था, जहाँ पर एक मेज और तीन-चार कुर्सियाँ पड़ी थीं। वार्डर को जब मालूम हुआ कि उसकी मुलाकात विशेष रियायत से हो रही है, तो वह अपने असभ्यतापूर्ण व्यवहार के लिए मन-ही-मन अत्यन्त लज्जित हुआ।

राधे कुर्सी पर बैठ गया। वह मन-ही-मन कह रहा था, "क्या सचमुच ही कामिनी मुझसे मिलने आई है?"

इतने में ही दूर से खद्दर धारी नवयुवक के साथ कामिनी को आता हुआ देखा। प्रसन्नता से उसका हृदय धड़कने लगा और पैर काँपने लगे।

दूसरे ही क्षण कामिनी उसकी बाहों में थी। काफी देर तक रोने के सिवा दोनों के मुँह से एक भी शब्द न निकला।

कामिनी ने जब अपने पिता के पीले चेहरे और धँसी हुई आँखों की ओर देखा तो सहम गई। राधे में जीवित रहने के बहुत कम चिह्न अवशिष्ट थे।

यह भेंट दोनों के लिए मानो युगों के बाद होने वाली भेंट थी।

"मेरी बेटी, मत रो, जो तेरे भाग्य में लिखा है, वह तो होकर ही रहेगा—बस कर।" राधे ने अपना कमज़ोर हाथ उसकी पीठ पर फेरते

हुए कहा, पर कामिनी के पास आँसुओं के अतिरिक्त और कुछ नहीं था।

अभी तक पास की कु उस खद्दरपोश सज्जन को राधे ने नहीं पहचाना था—कुछ दृष्टि की कमज़ोरी के कारण, कुछ आँसुओं के कारण। पर ज्यों ही उसने प्रेमपूर्वक उसकी ओर देखा वह बड़े जोर से चिल्लाया—"छोटे रायसाहब? आप यहाँ?" उसे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। उठकर राधे ने उसके चरण-स्पर्श को हाथ बढ़ाया, परन्तु शेखर ने ऐसा करने से रोक दिया।

शेखर ने हाथ जोड़कर सिर नीचा करके कहा, "जी मैं ही हूँ आपका सेवक।"

उसका हृदय कह रहा था—"यह क्या हो रहा है?"

कामिनी की आँखों का जब सारा पानी समाप्त हो गया तो वह जरा हल्की आवाज में बोली, "हाँ बाबू जी" और उसने संक्षेप में शेखर के विषय की सब बातें कह दीं। साथ ही उसने पने प्रति किये गए दयापूर्ण व्यवहार की उसकी बहुत प्रशंसा की।

राधे हृदय में शंका हुई, "क्या यह भी रायबहादुर का कोई चक्र तो नहीं?" पर शेखर के गम्भीरतापूर्ण व्यवहार ने उत्तर दिया "नहीं, बिलकुल नहीं, काँटों के वन में चन्दन का पेड़ होना असम्भव नहीं।"

इस निराशा से परिपूर्ण वातावरण में भी राधे को आशा का दीपक टिमटिमाता दिखाई दिया। उसने एक बार झुककर फिर उनके पैर छूने की कोशिश की; पर फिर शेखर ने रोक दिया। राधे की वाणी में उस महान् आत्मा के लिए एक भी शब्द नहीं था, जिसने उसकी असहाय बालिका को उसके दुःखी तथा निराश्रित साथियों को अपनी सुखद छाया में लेकर असह्य चिन्ता के भार से उन्मुक्त किया था।

"मेरे आदरणीय" शेखर ने प्रेमपूर्ण सहानुभूति के साथ कहा,

"कामिनी के लिए आप तनिक भी चिन्ता न करें। मेरे होते हुए इसकी ओर कोई निगाह नहीं उठा सकता। मैं अपना सर्वस्व देकर भी इसकी रक्षा करूँगा, चाहे मेरी शिराओं में पिताजी का कठोर खून हो, पर मैंने अपनी पवित्र माता का भी दूध पिया है।"

धन्यवाद के भावों से परिपूर्ण राधे का शरीर सुख के समुद्र में गोते लगाने लगा, "ओ मेरे मालिक, तेरी कृपा का बदला मैं कैसे चुका सकूँगा ?"

"यह कोई कृपा नहीं थी, अपने नैतिक कर्त्तव्य का पालन करने से अधिक मैंने कुछ नहीं किया।" शेखर ने नम्रतापूर्वक कहा।

"परमात्मा तुम्हें इसका बदला दे" शेखर के हाथों को चूमते हुए राधे ने कहा।

"मैं आज ही आपके व आपके अन्य साथियों के अभियोग के विषय में किसी योग्य वकील की सम्मति लूँगा और अदालत में मामला लड़ूँगा। आप बिलकुल न घबरायें और कामिनी को भी धैर्य बँधायें।" शेखर ने प्रेम-विह्वल कण्ठ से कहा।

"ईश्वर तुम्हारी सहायता करे।" राधे शेखर के प्रति कृतज्ञता के भाव से लदा हुआ बोला, "मेरी चिन्ता न करो, क्योंकि मैं तो अब कुछ दिन का ही अतिथि हूँ, पर अब उन बेचारों के लिए आप अवश्य प्रयत्न करना, जो······"

बीच ही में कामिनी ने प्रेमपूर्ण शब्दों में कहा, "पिता जी, यह आप क्या कह रहे हैं ? परमात्मा करे, मेरी आयु आपको मिल जाय।"

शेखर ने इसकी पुष्टि करते हुए कहा, "ऐसी बातें करके आप अपनी निःसहाय बेटी का हृदय न दुखायें, यह वैसे ही बहुत दुखी रहती है।"

राधे ने हैरानी से कहा, "आपने यह क्या किया कि इतने ऐशो-आराम पर लात मारकर एक दम त्याग-मूर्ति बन गए ?"

"यह मैंने स्वयं नहीं किया, मेरे पिताजी के अत्याचारों ने बरबस कराया है।"

"ईश्वर उनको सद्बुद्धि दे और आपकी सहायता करे।" राधे ने अन्तरात्मा से आशीर्वाद देते हुए कहा।

"आपकी वाणी सफल हो" शेखर ने श्रद्धा से सिर झुकाकर कहा, "आप हर प्रकार से धैर्य रखें; विशेषकर कामिनी जी की ओर से।"

"मेरे देवता, अब मुझे पूरा सन्तोष है। मैं इसकी ओर से निश्चिन्त हो गया हूँ।" राधे ने गद्गद् स्वर में कहा।

"और कामिनी को यह भी समझा दें" शेखर ने शान्त तथा गम्भीर मुद्रा में कहा, "कि यह आपके शोक में अधिक व्याकुल न हो। आपके आने के बाद शायद यह एक रात भी अच्छी तरह नहीं सोई।"

"मेरी बेटी" राधे ने कामिनी को दृढ़ आलिंगन में लेकर कहा, "तुझे किस बात की चिन्ता है? तेरा पिता कोई चोरी करके जेल में थोड़े ही आया है। तुझे तो इस पर अभिमान करना चाहिए कि तेरा पिता अपने दुखी भाइयों की सेवा करने के अपराध में यहाँ आया है। तू कोई अब निरी बच्ची नहीं है। जरा सोच तो सही, तेरे पिता जैसे हज़ारों मनुष्य रोटी के टुकड़े के लिए भी तरस रहे हैं और मैं घर बैठा रहता? बेटी, इस सेवा के बदले में जिस दिन यह शरीर भी काम आ जायगा तो अपने जीवन को कृतार्थ हुआ समझूँगा। मैं दुखी था, निराश्रित था, मेरी अवस्था दयनीय थी। तेरे आने से पूर्व तेरी चिन्ता ही मुझे सता रही थी, पर अब, जब तेरा भार इस पवित्र आत्मा ने अपने ऊपर ले लिया है, तो मैं सुखी हूँ, अपने--आपको सौभाग्यशाली समझता हूँ। मेरे सारे दुःख-क्लेश दूर हो गए हैं।"

राधे के ये शब्द कामिनी के दुर्बल हृदय के लिए संजीवनी का काम कर गए। उसकी चेतना लौट आई। वह कातरता को तजकर साहसी हो गई। वह अपने-आपको उस समय सन्तुष्ट तथा सुखी अनुभव कर रही थी।

उसका हृदय बार-बार कह उठता था, "मैं किस बात में कम हूँ, मैं ऐसे पिता की पुत्री हूँ। मैं अपने पिता द्वारा छोड़े हुए अधूरे काम को पूरा करूँगी। मैं भारत-माता की सेवा तथा अपने ग़रीब भाइयों की सहायता में अपने जीवन के एक-एक क्षण, एक-एक श्वास-प्रश्वास को पिता के आदर्श की पूर्ति में लगा दूँगी।"

बातों का सिलसिला अभी जारी था कि वार्डर ने नम्रतापूर्वक कहा, "साहब, समय पूरा हो गया है।"

"अच्छा बेटी" राधे ने एक बार फिर कामिनी का मस्तक चूमते हुए कहा, "ईश्वर तुम दोनों को कुशल से रखे।"

"दोनों को" इस शब्द के मुँह से निकलते ही उसके हृदय-प्रदेश में एक विचित्र भावना जाग्रत हुई।

दोनों को विदा करके वह वार्डर के साथ अपनी बैरक की ओर चल पड़ा।

राधे की चाल में अब पहले-जैसी शिथिलता न थी।

◆

छठा भाग

मज़दूर-संघ

: १ :

रायबहादुर की मिल में हड़ताल हुए पूरा एक महीना हो गया। इस बीच में न तो कोई सुलह हुई और न हड़ताल ही बन्द हुई। इधर शेखर के अपूर्व साहस एवं पराक्रम से 'मज़दूर-संघ' की स्थापना हो गई। इस 'संघ' में शहर की लगभग सभी मिलों के मज़दूरों का सहयोग था।

उस दिन क्लब में बैठकर सब मिल-मालिकों ने जो अपूर्व एवं गुप्त योजना इस हड़ताल को विफल करने के लिए बनाई थी, वह सब 'संघ' की स्थापना होते ही मिट्टी में मिल गई।

सभी मिल-मालिकों ने आपस में मिलकर यह निश्चय किया कि जब भी किसी मिल के मज़दूरों में कोई कमज़ोरी एवं गड़बड़ी देखी जाय, तभी निम्नलिखित शर्तों के अनुसार अपना नया कदम उठा दिया जाय कि सबसे पूर्व तो उन 'आन्दोलकों' को नौकरी से हटा दिया जाय, जिन पर मज़दूरों में जरा भी गड़बड़ी फैलाने का सन्देह हो। इसका परिणाम अधिक-से-अधिक भयंकर यह हो सकता है कि हड़ताल और भी उग्र रूप धारण कर लेगी। परिणामस्वरूप जो मज़दूर हड़ताल में सक्रिय भाग लें उनके मुखिया मज़दूरों को तरक्की तथा इनाम आदि देकर अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न किया जाय और मिलों का काम जारी कर दिया जाय या फिर जितना हो सके सख्ती की जाय। यदि कुछ लड़ाई-झगड़े की आशंका हो तो पुलिस

की पूरी मदद प्राप्त की जाय। यह भी निश्चित हुआ कि इस अवस्था में किसी की कोई भी प्रार्थना न सुनी जाय। यहाँ तक कि उनकी ओर से भेजे गए किसी भी प्रतिनिधि या सम्मिलित डेपुटेशन की बात पर कोई ध्यान न दिया जाय और जब यह भली प्रकार अनुभव होने लगे कि अब उनके सारे 'आन्दोलक' अपनी ग़लती को अनुभव करने लगे हैं और पैसे-पैसे के लिए मुहताज हैं तो फिर मिल-मालिकों को यानी हमें कुछ नरमी का रवैया अख्त्यार कर लेना होगा। पर यह कदम बड़ी सावधानी एवं दूरदर्शिता से उठाना होगा। जिससे मज़दूरों पर हमारी घबराहट का कोई प्रभाव न पड़े प्रत्युत वे इसे हमारी महान् कृपा समझें।

रायबहादुर सेठ भानामल ने अपनी चतुरता और दिलेरी से सभी युक्तियाँ बरत कर देख लीं; परन्तु न तो कोई माफ़ी माँगने को तैयार हुआ और न कोई सुलह करने की दरख्वास्त ही उनके पास पहुँची। प्रत्युत यह गुत्थी दिन-प्रतिदिन उलझती ही गई। विशेषतः राय-बहादुर को इससे भारी ठेस पहुँची; जब उन्होंने देखा कि उनका ही लड़का न केवल मज़दूर-आन्दोलकों का मुखिया बना हुआ है, बल्कि उसने २०-२५ हज़ार मजदूरों का एक जबरदस्त संगठन करके उनके आन्दोलन की बागडोर अपने हाथ में ले ली है।

इन असम्भावित घटनाओं को देखकर कभी उनके दिमाग़ से बदला लेने का भूत उतर जाता और वे मज़दूरों से सुलह करने की मन-ही-मन ठान लेते। पर ज्यों ही उन्हें अपनी स्थिति और स्वाभिमान का ध्यान होता; त्यों ही वे अपनी धारणा बदल देते। यही अवस्था उनकी शेखर की ओर से भी थी। पुत्र-वियोग की आग उनके दिल में चुप-चुप सुलग रही थी पर जिद और सांसारिक रौब की गर्मी से उनके ये विचार फिर अन्तराल में विलीन हो जाते। यहाँ तक कि पुत्र के वियोग का दुःख प्रकट करना भी उन्हें अपने महत्त्वपूर्ण

स्थान से उचित प्रतीत न होता था। अतएव वे किसी के सामने भी अपने मन के भाव प्रकट न होने देते थे।

धीरे-धीरे पुत्र-वियोग की दारुण व्यथा ने रायबहादुर के दिल को कुरेदना प्रारम्भ कर दिया और उनका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरने लगा।

मिल के दुबारा चालू होने की उन्हें आशा न थी। वे अब इसी प्रतीक्षा में रहते कि मज़दूरों की ओर से कोई डेपुटेशन आये जिससे वे अपनी विगत त्रुटियों का परिमार्जन करके मज़दूरों के नेताओं से भविष्य में अच्छा व्यवहार करने का आश्वासन देकर इस विपत्ति से छुटकारा पा सकें।

चारों ओर से और कोई चारा न देखकर उन्होंने फिर सभी स्थानीय मिल-मालिकों से मिलकर कोई नया मार्ग निकालने की सोची। उन्हें यह आशा थी कि सम्भव है उनसे मिलकर ही इस झंझट से छुटकारा पाने का कोई उपाय मालूम हो सके। परन्तु कठिनाई यह थी कि न तो वे क्लब में जा सकते थे और न उनके घर पर ही। उन्हें कोठी से बाहर निकलना बड़ा कठिन प्रतीत हो रहा था। उन्हें ऐसा अनुभव हो रहा था कि सारा-का-सारा नगर उनका दुश्मन हो गया है। अन्त में उन्होंने सबको अपनी कोठी पर ही बुलाने का निश्चय किया और सबके पास सूचना भिजवा दी।

रायबहादुर की सूचनानुसार सभी महानुभाव शाम के सात बजे उनकी कोठी पर आ गए। चाय इत्यादि पीने के बाद रायबहादुर ने पिछले दिनों की सब घटनाएं उन सबको विस्तार से सुना दीं। उन्होंने कहा कि मैंने यथासम्भव सभी तरीके इस्तैमाल करके देख लिये, परन्तु इसका परिणाम उल्टा ही हुआ।

सेठ भानामल की बातें सुनने के बाद सेठ गोयनका बोले, "हमने तो सेठजी आपकी सम्मति को ठीक समझा था उस दिन,

परन्तु यदि वह सफल नहीं हुई तो इसमें हमारा क्या क़सूर है ? हम कर ही क्या सकते थे ?"

सेठ गोयनका का यह कोरा जवाब सुनकर रायबहादुर के पैरों तले से ज़मीन खिसक गई। परन्तु सरदार जगजीतसिंह ने यह कहकर उनका मन रख लिया—"यह हमने माना कि हमारे उस दिन के निश्चय से कोई अच्छा परिणाम नहीं निकला, परन्तु इसका यह अर्थ तो नहीं कि हम सब अपने उत्तरदायित्व से छुट्टी पा गए। हम सेठजी की प्रत्येक कठिनाई में अन्त समय तक साथ देंगे।"

ला० ईश्वरदयाल मित्तल बोले, "सरदार साहब ने बिलकुल ठीक कहा है। सेठ जी, घबराने की कोई आवश्यकता नहीं। कोई-न-कोई उपाय किया ही जायगा।"

पं० धर्मदत्त बोले, "श्रीमान् जी, मैंने तो उस दिन भी आप सब महानुभावों की सेवा में निवेदन किया था कि इस रोग में आपकी यह युक्ति नाकामयाब साबित होगी, परन्तु आप लोगों ने उस समय मेरी एक भी न सुनी। ईश्वर करे कि आज हम यहाँ से किसी सुन्दर परिणाम पर पहुँचे बिना न उठें।"

पण्डित जी की इस बात से सब में निराशा और बेचैनी का साम्राज्य छा गया। इस पर मुन्शी ज्वालासहाय बोले, "वास्तव में यदि उस दिन पण्डित जी की बातों पर ध्यान दिया गया होता तो आज यह नौबत ही न आती।"

"ख़ैर, जो बीत गया उसे छोड़ो। अब आगे के लिए क्या सोचना है ?" चौधरी यूसुफ ने जरा तेजी में आकर कहा।

सरदार जगजीतसिंह ने कहा, "असल में यहाँ तक नौबत ही न पहुँचती। सेठ जी की मिल के मज़दूरों की क्या हिम्मत थी जो इस प्रकार डटे रहते। यदि उन्हें रोटी के लाले पड़ जाते तो आकर हमारे ही पैरों पर गिरते।"

"लाले पड़ते ही क्यों ? पहले दस घंटे मेहनत करके सूखी रोटी मिलती थीं और अब बेकार घर बैठे ही चुपड़ी रोटियाँ मिल जाती हैं। उन्हें क्या गर्ज पड़ी है काम करने की ? चन्दा जमा करने वाले सलामत रहें।" सेठ गोयनका ने जरा विनोद के ढंग से कहा।

सरदार जगजीतसिंह बोले, "परन्तु यह चुपड़ी हुई रोटियाँ कब तक मिलेंगी ? अभी जरा नया-नया जोश है, इसलिए। और थोड़े दिन बाद देखना। चुपड़ी रोटियाँ तो दूर रहीं, भुने चने भी मिलने मुहाल हो जायंगे।"

"यह बात तो आपकी लाख रुपये की है।" चौधरी यूसुफ ने हँसकर कहा, "यह सोशलिस्ट लफंगे लोगों का घर फूँक कर तमाशा देखते हैं, गला फाड़-फाड़कर लोगों को भड़काते फिरते हैं। लेकिन जल्दी ही इन लोगों का जोश ठंडा पड़ जायगा।"

पण्डित धर्मदत्त—"पर चौधरी साहब क्षमा करना, जरा आप ही बतलायें, यदि वे लोग इतनी मेहनत करके चन्दा इकट्ठा न करते तो हज़ारों मज़दूरों के बाल-बच्चों का क्या होता ?"

"तभी तो मज़ा आता, जब वे भूखे मरते" मौन भंग करते हुए अचानक रायबहादुर सेठ भानामल बोल उठे, "दो दिन भी नहीं बीतते और वे अपने-आप आकर हमारे पैरों में पड़कर क्षमा माँगते।"

पण्डित धर्मदत्त इसके उत्तर में कुछ कहते-कहते रुक गए। इतने ही में सरदार जगजीतसिंह बोले, "चलो छोड़ो इन बातों में क्या रखा है ? मतलब की बातें करो। बतलाइये, अब फिर इस हड़ताल को किस तरह तोड़ा जाय। सभी मिलों के मज़दूर भड़के बैठे हैं। उनकी यूनियन प्रतिदिन मज़बूत होती जा रही है। कहीं ऐसा न हो कि सभी मिलों के दरवाजे बन्द हो जायं ?"

ला० ईश्वरदयाल मित्तल बोले, "असल बात तो पण्डित जी यह है कि आप कहते हैं कि सेठ जी के सुपुत्र ने मामले को और तूल दे

दिया है। साफ कह देने के लिए जरा मुझे क्षमा करना, आप लोगों को शेखर का आभारी होना चाहिए कि उसने दूसरी मिलों में हड़ताल नहीं होने दी। नहीं तो जैसा उस दिन उन्होंने निश्चय किया था कि यदि एक सप्ताह तक सेठ जी ने मज़दूरों की माँगें न स्वीकार कीं, तो शहर की सारी मिलों के मज़दूर काम छोड़ देंगे। परन्तु यह शेखर का ही साहस एवं चातुर्य था कि उसने आज तक यह नौबत नहीं आने दी। हमें यह मालूम है। उस दिन जब सारे मज़दूर जब सेठ जी की मिल के आगे धरना देकर बैठ गए थे और आमरण अनशन को उन्होंने ओट लिया था तो शेखर के प्रयत्न से ही वे वहाँ से उठे थे। यदि वे वहाँ से उस समय न उठते तो अब तो बिल्डिंग की खिड़कियों के शीशे ही टूटे हैं तब एक ईंट भी नहीं बचती।"

"इसमें कोई सन्देह नहीं" सरदार जगजीत सिंह ने इस कथन की पुष्टि करते हुए कहा, "यह तो मैं भी सुन चुका हूँ। एक ओर उसने 'मज़दूर-संघ' बनाकर हमारे लिए यदि आफ़त खड़ी कर दी है तो दूसरी ओर उन भूलों में अपने व्यक्तित्व से गम्भीरता ला दी है।"

सेठ जी अपने सुपुत्र शेखर के विषय में होने वाली इन बातों को सुनकर मन-ही-मन प्रसन्नता से फूल रहे थे।

ला० ईश्वरदयाल मित्तल—"हाँ मैंने पूछा था कि अब कोई समझौते का मार्ग निकाला जाय। समय बरबाद करने से क्या लाभ?"

"आप ही बतायें" सरदार जगजीतसिंह बोले, "आख़िर कुछ तो सोचा ही होगा आपने, और आज तो आप इस बात में विशेष दिल-चस्पी भी ले रहे हैं, ऐसा मालूम होता है। यदि मैं भूलता नहीं, तो सेठ जी के मज़दूरों के साथ आपकी कुछ बातें भी हो चुकी हैं।"

"हुई जरूर थीं; परन्तु मैं अभी तक किसी सन्तोषजनक परिणाम पर नहीं पहुँच सका।"

"सुनाओ तो, क्या सोचा है आपने।"

सब ध्यान से कान लगाकर सुनने लगे। ला० ईश्वरदयाल मित्तल ने शुरू से आखिर तक सारी बातें सुनाईं। मैं स्वयं ही मज़दूरों से इस सम्बन्ध में मिला था। परन्तु उन्होंने मुझे यही उत्तर दिया, "हमारी ओर से कोई भी निर्णय शेखर कर सकता है। यदि आप कोई समझौते की बातचीत करना चाहते हैं तो उनसे ही बातचीत करें।"

मैंने कहा, "अच्छा तो मैं सेठ जी से इस बारे में सलाह करके कुछ कह सकता हूँ। तो इस समय आप मौजूद हैं, और सेठ जी भी। यदि सेठ जी उचित समझें तो कल शेखर को इस सम्बन्ध में बातें करने के लिए बुला लिया जाय।"

शेखर का नाम सुनते ही सेठ जी का दिल पत्थर हो गया। चाहे वे पहले यह झगड़ा खत्म करना ही चाहते हों; परन्तु शेखर की याद ने उनकी क्रोधाग्नि को और भी भड़का दिया और वे तिनककर बोले, "मैं उस निर्लज्ज की शक्ल तक नहीं देखना चाहता। वह वहाँ का मुखिया है जो पिता के विरुद्ध शर्तें पेश करने के लिए पिता के द्वारा ही अपने पास बुलाया जाय।"

"सेठ जी" पण्डित धर्मदत्त ने अत्यन्त विनीत भाव से कहा, "आप पहले भी कई बार तेजी दिखाकर बहुत-से अवसर अपने हाथ से खो चुके हैं। अब यदि यह अन्तिम अवसर भी आपने खो दिया तो यही समझ लीजिए कि हम सबकी ख़ैर नहीं।"

ला० ईश्वरदयाल ने सेठ जी को सम्बोधित करते हुए कहा, "इसमें हर्ज ही क्या है। आपका बेटा है, आख़िर फिर भी कुछ वह आपका ही पक्ष करेगा।"

"मेरा पक्ष करेगा?" सेठ जी ने दुखी दिल से कराह निकालते हुए कहा, "यदि वह मेरे पक्ष में होता तो उन बाज़ारू गुण्डों में जा मिलता?"

"सेठजी, क्षमा करना। ज़रा सोच-समझकर बातें करो।" चौधरी यूसुफ ने उन्हें समझाते हुए कहा, "यदि आपके ये शब्द उन लोगों के कानों तक पहुँच जायं तो कोई भी बात बननी असम्भव हो जायगी।"

"तो आपका क्या मतलब है?" घृणा-मिश्रित दृष्टि से देखकर सेठजी बोले, "मैं उस कल के छोकरे के सामने अपराधी की हैसियत से पेश होकर अपने बेकसूर होने का प्रमाण दूँ?"

सरदार इन्द्रजीतसिंह ने कहा, "यह कौन कहता है। हमारा मतलब तो दोनों पक्षों के बीच विचार-विनिमय होने से है। अपराधी होने का तो इसमें कोई सवाल ही नहीं उठता।"

सबने उनकी हाँ-में-हाँ मिलाई।

आख़िर दिल पर पत्थर रखकर सेठजी को शान्त होना ही पड़ा। पर इसमें उन्हें सन्देह था कि अभी तक वे इसी गम्भीरता से शेखर से बातचीत कर सकेंगे और अपने विचारों पर पूरा काबू रख सकेंगे। वे धड़कते हुए दिल से बोले, "यदि आपने मेरे हित की दृष्टि से यही निश्चय किया है तो मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं।"

"तो कल सवेरे ही उसे बुलाया जाय?" ला० ईश्वरदयाल मित्तल ने कहा।

"कल सवेरे तो राधे का फैसला सुनाया जायगा। शायद वह न आ सके। शाम का समय रखो।" गम्भीरतापूर्वक चौधरी यूसुफ बोले।

सबने सहमति प्रकट की।

सेठ गोयनका ने कहा, "यहाँ ही बुलाया जाय!"

"सेठ जी से पूछ लो"

"क्यों सेठ जी, आपकी क्या सलाह है?"

सेठजी उसे अपनी कोठी पर बुलाना नहीं चाहते थे। क्योंकि उन्हें भय था कि यदि शेखर की माता को मालूम हो गया तो वह ज़रूर कुछ विघ्न डाल देगी। परन्तु वह कोठी से बाहर भी जाना नहीं

चाहते थे। अन्त में उन्होंने मन-ही-मन यही निश्चय किया कि यहीं जरा अन्धेरे में बुला लेंगे उसकी माता को क्या पता लगेगा ?

उन्होंने स्वीकृति दे दी। शाम के आठ बजे का समय निश्चित हो गया। शेखर को बुलाने का कार्य लाला ईश्वरदयाल मित्तल ने अपने जिम्मे ले लिया।

: २ :

शेखर को अपना घर-बार छोड़े एक महीने से अधिक हो गया। जिस दिन से उसने ग़रीब मज़दूरों का नेतृत्व ग्रहण किया था, उसी दिन से एक क्षण के लिए भी उसने आराम से बैठकर सन्तोष की साँस नहीं ली। मज़दूरों के संगठन एवं मुकद्दमे की पैरवी के लिए उसने जी-जान लड़ा दी।

दो-चार दिन तो उसने कामिनी की शान्ति-कुटी में व्यतीत किये, परन्तु इसके उपरान्त उसे अपना निवास-स्थान बदलना पड़ा। क्योंकि 'मज़दूर-संघ' का सर्वे-सर्वा वही था, इसलिए उसको 'संघ' के दफ़्तर के लिए एक छोटा-सा कमरा अलग किराये पर लेना पड़ा और वहीं पर उसने अपने सोने-खाने तथा उठने-बैठने का भी प्रबन्ध कर लिया। कामिनी की ख़बर लेने प्रायः वह दूसरे-तीसरे दिन हवेली की ओर चला जाता था।

अब उसे अपने जीवन-निर्वाह की भी चिन्ता थी। वह न तो माता-पिता से कोई आशा रखता था और न मज़दूरों पर भार होकर रहना चाहता था।

लोकोक्ति है कि किसी धनी का बेटा यदि भिक्षुक बन जाता है तो उसे भीख भी मोतियों की ही मिलती है। शेखर ने तुरन्त ४०) मासिक का प्रबन्ध अपने निर्वाह के लिए कर लिया। यह उसके लिए पर्याप्त था।

कानपुर के प्रसिद्ध कपड़ा-व्यापारी हीरालाल मोदी को अपने लड़के

के लिए किसी ऐसे सुयोग्य व्यक्ति की आवश्यकता थी, जो उसको भली प्रकार पढ़ा सके। शेखर ने उनके यहाँ पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। उसे ट्यूशन करते हुए कठिनाई से ५-६ दिन ही हुए होंगे कि मोदी साहब का मोटर-ड्राइवर अचानक बीमार होकर अपने घर छुट्टी पर चला गया। शेखर पहले से ही अपनी कार स्वयं चलाया करता था, इसलिए उसने मोदी साहब का यह काम भी सँभाल लिया। इस तरह उसको ट्यूशन के अतिरिक्त कुछ और रुपये भी मिलने लगे।

'संघ' का काम चलाने, बेकार मज़दूरों के लिए खाने-पीने का प्रबन्ध करने, और गिरफ़्तार हुए व्यक्तियों के मुकद्दमे की पैरवी के लिए भी रुपये की भारी आवश्यकता थी। इस कमी को पूरा करने के लिए उसने 'संघ' के प्रत्येक सदस्य से दो आने माहवार चन्दा लेना प्रारम्भ कर दिया। इसको सबने ही प्रसन्नतापूर्वक देना स्वीकार कर लिया।

इस चन्दे की सहायता से ही दो वकील किये गए, परन्तु इन वकीलों से कोई विशेष लाभ दृष्टिगोचर नहीं होता था। क्योंकि शेखर की प्रेरणा से सभी अपराधी मज़दूरों ने अपना-अपना अपराध स्वीकार कर लिया था। जिन मज़दूरों ने मिल की खिड़कियाँ व उनमें लगे हुए शीशे तोड़े थे उन सबने सच-सच बता दिया। अब वकीलों की बहस के लिए केवल एक नुक्ता ही बाकी बचा रह गया। वह यह कि मैनेजर ने उनको अपने असभ्यतापूर्ण व्यवहार द्वारा ही इस अपराध को करने के लिए प्रेरित किया। यदि वह उनके साथ गाली-गलौच से पेश न आकर भद्रतापूर्ण व्यवहार करता, नौकरी से हटाने के लिए कम-से-कम १५ दिन का नोटिस देता तथा पिछला सभी वेतन उनको दे देता तो यह घटना कभी भी न होती।

वकीलों की इस दलील ने मजिस्ट्रेट के दिल पर भी अपना पूरा असर जमा लिया। परन्तु इससे अभियुक्त बरी नहीं हो सकते थे, हाँ सज़ा में कमी हो जाने की अवश्य सम्भावना थी। परिणामस्वरूप यही

हुआ और अन्तिम पेशी पर सबको ६-६ मास के सपरिश्रम कारावास की सजा का हुक्म सुना दिया गया।

राधे के मुकद्दमे को सरकारी जामा पहना दिया गया था। घटना-स्थल के सरकारी गवाहों ने भी खूब झूठी-मूठी बातें मिलाकर उसके विरुद्ध गवाहियाँ दीं। इसके अतिरिक्त राधे ने भी स्वयं अदालत के सामने अपने भाषण में कही गई सारी बातें ज्यों-की-त्यों मंजूर कर ली थीं। उसके भाषण में चाहे कानून-विरोधी कुछ भी भाव नहीं थे फिर भी उसको फाँसने को कुछ ढूँढ़ ही लिया गया।

राधे ने अपने भाषण में सारी बातें पूँजीपति मिल-मालिकों के विरुद्ध कही थीं, परन्तु अदालत की नज़रों में शायद 'पूँजीपति' और 'सरकार' दो अलग वस्तुएँ नहीं थीं। पता नहीं सी० आई० डी० के डायरी देने वालों की कृपा से उसके भाषण की कैसी-कैसी रिपोर्ट लिखी गई थी। साथ ही सरकारी गवाहों की नमक-मिर्च लगी बातों ने तो और भी इस कमी को पूरा कर दिया था।

तात्पर्य यह है कि अदालत की नज़रों में राधे एक विद्रोही सोश-लिस्ट के अतिरिक्त कानून को तोड़ने वाला भी प्रमाणित हो गया। फलतः राधे को भारत-रक्षा-विधान के अंतर्गत तीन वर्ष के लिए जेल भेज दिया गया।

: ३ :

सजा की आज्ञा सुनकर राधे अदालत के कमरे से बाहर निकला। उसके दर्शनों के लिए मज़दूरों की भारी भीड़ बाहर जमा थी और 'राधे ज़िन्दाबाद' 'मज़दूर-संघ ज़िन्दाबाद' के गगन-भेदी नारों से कान पड़ी आवाज़ भी सुनाई नहीं देती थी।

कामिनी, रहमत और शेखर उसके साथ-साथ ही चल रहे थे। ज्यों-ज्यों कामिनी अपने पिता के जीर्ण-जर्जर शरीर की ओर देखती थी,

त्यों-त्यों उसका दिल कह उठता था, "क्या यह अस्थि-चर्मावशिष्ट कंकाल-मात्र जेल की भीषण यन्त्रणाओं में अडिग रह सकेगा ?"

राधे ने अपनी पहली कई मुलाकातों में कामिनी को बहुत-से उत्साह भरे उपदेश दिये थे। कामिनी पर राधे के उन गुरु-गम्भीर उपदेशों का भारी प्रभाव पड़ा; उसके अन्दर असीम साहस और उत्साह की लहर दौड़ गई थी। इसी कारण आज के इस हृदय-द्रावक दृश्य से कामिनी घबराई नहीं, प्रत्युत पिता के इस अनुपम त्याग, निर्भीक भाषण तथा निःस्वार्थ भावना ने उसमें और भी दृढ़ता उत्पन्न कर दी।

उधर राधे की आँखों में भी यद्यपि इस मातृ-विहीन बालिका के लिए ममता के आँसू थे पर साथ ही अपूर्व धैर्य तथा उत्साह से उसका हृदय परिपूर्ण था। उसके दिल पर कमज़ोरी का किंचिन्मात्र भी प्रभाव नहीं था।

जेल का फाटक समीप आ जाने के कारण सिपाहियों ने भीड़ को पीछे हटा दिया, परन्तु हटाते-हटाते भी कामिनी एक बार दौड़कर राधे से लिपट ही गई। उसकी प्रभावपूर्ण जोशीली आकृति देखकर सिपाहियों को भी हटाने का साहस न हुआ। राधे सिपाहियों की अकड़ से अनभिज्ञ न था। उसने कामिनी को प्यार करके यह कहते हुए विदा किया, "तू इसी प्रकार अपना धैर्य तथा साहस बनाए रखना, मेरे नाम को बट्टा न लगने पाये। भूलना नहीं, समझी।"

कामिनी ने दृढ़ता पूर्वक उत्तर दिया, "मैं अपने पिता जी के पावन पद-चिह्नों पर ही चलूँगी। उनकी भावनाओं को ठेस पहुँचाने का कार्य कदापि न करूँगी।"

इसके बाद राधे आगे बढ़कर रहमत और शेखर से जी खोलकर मिला और फाटक के अन्दर चला गया। पीछे से रहमत ने कहा, "घबराना मत राधे, तुझे शीघ्र ही छुड़ाने का प्रयत्न किया जायगा। कामिनी की चिन्ता भी तू न करना, इसे हम अपनी आँखों की पुतली की तरह रखेंगे।"

राधे ने अन्दर से पीछे की ओर देखते हुए आँखों-ही-आँखों में रहमत की उन बातों का उत्तर दिया और दूसरी निगाह उसने शेखर की ओर डाली। उसकी निगाह में कितनी करुणा निहित थी, यह शेखर ने भली-भाँति पढ़ लिया।

कामिनी की छोटी-सी फुलवारी इन दो-तीन हफ़्तों बाद फिर एक बार स्वर्ग-वाटिका के रूप में बदल गई। कुछ दिन से शिथिल पड़ा उसका उत्साह फिर दूने वेग से बढ़ गया और वह दिन-रात अपनी फुलवारी को सजाने में ही व्यस्त रहने लगी। सारे दिन वह अपनी कोठरी के भीतरी हिस्से को बनाने-सँभालने में लगी रहती। अब उसका हृदय पहले की भाँति राधे के वियोग से व्यथित नहीं था। वह अब राधे की इस कठिन जेल-यात्रा के महत्व को भली-भाँति समझ गई थी। इसका ध्यान करके उसके जीवन में दिन-प्रतिदिन अनेक महत्त्व-पूर्ण परिवर्तन होते जाते थे। इसका एक प्रबल और विशेष कारण यह भी था कि शेखर ने इन दिनों कामिनी को काफ़ी राष्ट्रीय साहित्य पढ़ने को दे दिया था।

शेखर सारे दिन बाहर रहता था। कुछ समय वह अपनी नौकरी में लगाता और बाकी मज़दूर-संघ की सेवा में। जब से उसे इस संघ का प्रधान बनाया गया तब से तो उसका काम बहुत बढ़ गया है। सब काम को व्यवस्थित करने के लिए उसने किराए के उस मकान में संघ का दफ़्तर तो पहले ही खोल दिया था। अब उसके हिसाब-किताब की जाँच करने एवं कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए उसने एक वर्किंग कमेटी भी बना ली है। चन्दे की वसूली का काम भी प्रत्येक मिल के दो-दो चार-चार जिम्मेदार व्यक्तियों को सौंप दिया है। इस प्रकार 'संघ' को हजार-डेढ़ हजार रुपये मासिक की स्थायी आय होने लगी है, और यह सारा धन बैंक में जमा करना प्रारम्भ कर दिया गया है।

इस समय ग़ैर सरकारी और रेलवे-वर्कशाप के सरकारी मज़दूरों

को मिलाकर यह संघ १२ हज़ार मज़दूरों की प्रतिनिधि संस्था है। मज़दूरों को जब यह अनुभव हुआ कि केवल दो आने प्रति मज़दूर के हिसाब से कानपुर के सभी मज़दूरों द्वारा प्रतिमास हज़ार से ऊपर रुपए एकत्रित हो जाते हैं तो उनकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। इससे पूर्व जब भी उनकी हड़ताल असफल हुई थी उसका एक-मात्र कारण खाद्य-सामग्री व पैसे का अभाव था। बेचारे ग़रीब मज़दूरों का पेट जब भूख के मारे कमर से लग जाता तो वे हारकर या कुछ हीन शर्तें मानकर फिर काम करना शुरू कर देते थे। परन्तु अब इस छोटे-से दो आने के चन्दे से उन पर एक अच्छी धन-राशि एकत्रित हो गई। यह जानकर उन्हें अपने अंदर एक असीम साहस, उत्साह एवं जोश का अनुभव होने लगा। यही कारण है कि सेठ जी की मिल में लगभग एक मास से मुकम्मिल हड़ताल है। इस समय मज़दूर पैसे और खाद्य-सामग्री की ओर से बिलकुल निश्चिन्त थे।

कभी-कभी शाम को जब सारे दिन का थका-माँदा शेखर कामिनी के घर आता तो हवेली के मैदान में अपनी प्रतीक्षा में खड़ी कामिनी के मुस्कराहट भरे चेहरे और उसकी बगीची को देखकर उसका मुरझाया मुख-मंडल खिल जाता। कामिनी के वाटिका के प्रति बढ़ते हुए प्रेम को देखकर वह कभी-कभी फूलों के दो-चार गमले भी बाजार से और लाकर रख देता था। अंत में यहाँ तक नौबत पहुँची कि कामिनी के उन छोटे-से घर को फूलों ने ही घेर लिया। कहीं भी थोड़ी-सी खाली जगह न रही।

कामिनी अब पूर्व की भाँति शेखर से शरमाती न थी; प्रत्युत उसका नाम लेकर सम्बोधित करती थी। उसे अब किसी प्रकार का भी संकोच शेखर के साथ बातचीत करने में न था। यहाँ तक कि वह उसके कामों में पूरी दिलचस्पी लेने लगी और 'संघ' के कामों में भी अपनी बुद्धि के अनुसार सलाह देती। शेखर को कामिनी के इस बुद्धि-

चातुर्य एवं अपूर्व उत्साह का पहले अनुमान न था।

जब वह उसके साथ कई बार अपने पिता जी से मुलाकात करने जाती थी तो और भी बातें होती थीं। आज जब से कामिनी अपने पिता राधे से जेल में मिलकर शेख   । वापिस आई है, वह बड़ी उदास है। रह-रहकर उसका मन कह रहा है—"तीन साल के एक लम्बे अरसे के बाद ही मैं अपने पिता जी से मिल सकूँगी।"

उसको घर पहुँचाकर शेखर की इच्छा 'संघ' के किसी आवश्यक कार्य के लिए बाहर जाने की थी, परन्तु जब उसने कामिनी के मुख-मंडल पर चिन्ता और उदासी के चिह्न देखे तो उसने वहाँ जाने का विचार बदल दिया और कामिनी को दिलासा देने के विचार से वहीं ठहर गया।

"कामिनीजी, जरा एक गिलास ठंडा पानी दीजिए।" कहकर वह कामिनी की फैली हुई बेलों के झुरमुट के नीचे पड़ी खाट पर जा बैठा।

थोड़ी देर बाद कामिनी पानी ले आई।

"बैठ जाओ कामिनी जी!" पानी का गिलास हाथ में लेते हुए शेखर ने कहा।

कामिनी बैठ गई।

शेखर के इस ममतापूर्ण व्यवहार ने पितृ-वियोग से मुरझाये हुए कामिनी के मुख-मंडल को एक बारगी खिला दिया और वह सब शोक भुलाकर मुस्कराती हुई बोली, "कहिए।"

"कामिनी जी, जब मैं तुम्हें उदास देखता हूँ तो मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता। अच्छा बताओ, आज तुम उदास क्यों हो?" शेखर ने प्यार-भरे लहजे में पूछा।

कामिनी शेखर को कुछ उत्तर न देने के स्थान में फबक-फबक कर रोने लगी। उसकी आँखों में जेल के फाटक में प्रवेश करती हुई उसके पिता की कर्ति नाच रही थी।

"रोओ मत कामिनी जी!" शेखर ने उसके हाथ को सहलाते हुए कहा, "तुम्हें तो अपने पिता जी के जेल जाने पर अभिमान करना चाहिए। उनका त्याग व बलिदान अवश्य सफल होगा और तुम थोड़े ही दिनों में देखोगी कि हमारे मज़दूर भाइयों के सारे दुःख दूर हो जायँगे। अभिमानियों अभिमान चूर-चूर होकर मिट्टी में मिल जायँगे। तुम्हें रोने की बजाय आज तो हँसना चाहिए।"

उसके इस प्रेमपूर्ण व्यवहार एवं सान्त्वनापूर्ण शब्दों से कामिनी सारे दुःख को भूल गई और उसके शरीर और मन में उत्साह की एक अपूर्व लहर दौड़ गई। उसकी आँखें शेखर की आँखों से जा टकराईं; आँखों के मिलते ही एक अपूर्व आकर्षण ने दोनों के हृदयों में प्रेम की मादक धारा प्रवाहित कर दी। जो प्रेम के बादल इन तीन दिनों से उनके हृदयों में अन्दर-ही-अन्दर घुमड़ रहे थे, वियोग एवं दुःख की प्रबल झंझा के दूर होते ही, बरबस बरस पड़े। शेखर ने कामिनी के दोनों हाथों को बड़ी सरलता से उठाकर चूम लिया। किसी असीम सुख का अनुभव करती हुई कामिनी मानो अपनापन भूल गई और उसका सिर सहसा शेखर के गले से जा मिला।

इसी समय बाहर से आवाज़ आई, "शेखर बाबू!"

"क्या मुझे बुला रहे हो?" शेखर ने बाहर दरवाजे पर आकर पूछा।

"जी हाँ, आपको ही।"

सहमी हुई कामिनी भी डर के कारण उसके साथ-साथ दरवाजे तक आई। उसके अन्दर कुछ ऐसा भय घर कर गया था कि जब कभी वह बाहर से किसी की आवाज़ सुनती तो उसका हृदय बैठने-सा लगता था। पर ज्यों ही आगन्तुक को उसने शेखर के साथ अदब से बातें करते देखा तो उसका भय दूर हो गया।

"आपको ला० ईश्वरदयाल मित्तल ने याद किया है, बाहर उनकी कार खड़ी है।" यह उनका ड्राइवर था।

शेखर को इसका कारण समझने में देर न लगी।

"चलो, मैं आया" कहकर शेखर कोठरी में गया और चप्पल पहन-कर दरवाजे पर खड़ी कामिनी से "मैं जरा काम से जा रहा हूँ" कहकर बाहर निकला और मोटर में जा बैठा।

: ४ :

जेल भी मनुष्यों के लिए एक विचित्र-सी वस्तु है। वह एक विचित्र दुनिया है। वह दुनिया जहाँ पर कोई अपना नहीं होता। कोई दुःख-दर्द को बटाने वाला नहीं होता। कहीं आने-जाने व खुलकर किसी से बातें करने की भी आज़ादी नहीं। कहाँ तक कहें, जेल में मनुष्य को मनुष्य नहीं समझा जाता।

राधे ज्यों ही भीतर के फाटक को पार करके जेल में पहुँचा सिपा-हियों ने उसकी हथकड़ी खोल दी। आज से राधे जेल-कर्मचारियों के हवाले था।

पीली वर्दी वाले जमादार के पीछे-पीछे वह जा रहा था। चहार-दीवारी से कुछ हटकर दुमंजली बारकों के सामने से वह जा रहा था। कई पुराने कैदी अपनी कोठरियों के सीखचों से इस नये आगन्तुक को देख रहे थे। राधे चिन्तित दृष्टि से जेल की प्रत्येक वस्तु को देखता जा रहा था। कहीं नीली वर्दी वाले कैदी चमड़े की पेटी बाँधे इधर-उधर घूम रहे थे, कहीं पीली वर्दी वाले अपने अधीन कैदियों को डरा-धमका रहे थे और कहीं जेल की बड़ी ऊँची बुर्जियों वाली दीवार के अन्दर पतरे डालने वाले, जुलाहे के ताना-बाना निकालने की तरह इधर-से-उधर जल्दी-जल्दी चल-फिर रहे थे।

बारक के आखिरी हिस्से में पहुँच कर उसे हरट के चलने-जैसी आवाज़ सुनाई दी। उससे उसकी प्यास और भी तेज होगई। कचहरी से ही सारे रास्ते धूप में आने के कारण उसको बहुत प्यास लग रही थी।

थोड़ी देर बाद उसने ज़रा नम्रता पूर्वक जमादार से कहा, "यदि आप कहें तो जरा पानी पी लूँ। प्यास के कारण गला खिंचा जा रहा है।"

"यहाँ हरट क्या तेरे बाप ने लगाई है, चला चल" जमादार ने कड़कती हुई आवाज में कहा।

"तो यह क्या है?" वह अब भी यही सोच रहा था कि चबूतरे-नुमा उस गोल चक्कर के पास जा पहुँचा। अन्दर जो कुछ हो रहा था उसे देखते ही राधे की आँखों में मृत्यु-जैसा सन्नाटा छा गया।

वहाँ हरट नहीं, कोल्हू चल रहा था।

राधे ने देखा, छः आदमी उसे खींच रहे थे और सातवाँ उनकी निगरानी करने वाला जमादार था। उसके हाथ में पतला लचकीला-सा बेंत था। जब भी कोई ज़रा धीमा चलता 'कड़-कड़' के कठोर शब्द के साथ वह बेंत उसकी पीठ पर पड़ता और उसकी चाल फिर तेज़ हो जाती।

वे सभी व्यक्ति भूत मालूम होते थे। उन्होंने घुटनों तक का कोई कपड़ा पैरों में बाँध रखा था। कुर्ते कदाचित् उन्होंने अत्यधिक गर्मी के कारण निकाल दिये थे। बहुत मैल और पसीने के कारण उनका मुँह और सारा शरीर इतना काला होगया था कि अफ्रीका के हब्शी भी उनके सामने लज्जित थे। उनके काले शरीर पर पसीने की धारियों ने बहकर उनको भी भयंकर बना दिया था। सभी चेहरों पर एक राक्षसी भाव दृष्टिगोचर हो रहा था। आँखों से भीषण घृणा और अंग-अंग से पैशाचिकता झलक रही थी।

हो सकता है वे सभी कभी आदमी रहें हों, परन्तु जेल की भीषण नरक-तुल्य यातनाओं उनकी मनुष्यता सुखा दी थी। मानवता का कोई भी चिह्न उनमें न था। राधे का हृदय इस भयावने दृश्य से काँप उठा। चलता-चलता वह अचानक अचम्भित होकर खड़ा हो गया। उसे यह ध्यान नहीं था कि वह भी आज उन-जैसा कैदी है और

यह अनुभव उसे तब हुआ जब कि पीछे आते जमादार ने उसे धक्का देते हुए कहा, "आगे बढ़, क्या पैरों में कीलें ठुक गई हैं ?"

दोनों ओर की बारकें खत्म होते ही छोटी-छोटी कोठरियों की कतार शुरू हो गई। हर एक कोठरी से घरर-घरर की आवाज आ रही थी; इन्हें जेल में 'चक्की' के नाम से पुकारा जाता है।

पहले धक्के से डरा हुआ राधे जल्दी-जल्दी इन कोठरियों के आगे से गुज़र रहा था। पर उसकी आँखें फिर भी नहीं मानती थीं इधर-उधर देखने से। वह फिर भी प्रत्येक कोठरी के पिछले हिस्से में खड़े हुए कैदियों को चक्की पीसते देखता जा रहा था। उनमें से कोई-कोई जब थक जाता था तो कोठरी के पास से गुज़रने वाले व्यक्ति को उड़ती नज़र से देख लेता था और साथ ही छालों से भरे हुए हाथों को भी तनिक आराम दे देता था।

छः-सात कोठरियाँ पार कर चुकने बाद जमादार एक कोठरी के आगे जाकर रुका और तालियों के गुच्छे में से एक ताली निकालकर उसने उस कोठरी का ताला खोला।

राधे समझ गया था कि यह कोठरी उसी के लिए खोली गई है। वह बिना कुछ कहे अन्दर चला गया। औरों की तरह ही यह कोठरी भी बहुत तंग थी। अन्दर घुसते ही उसने उसके एक कोने में चक्की और मिट्टी का एक चबूतरा देखा। अब भविष्य में राधे के लिए ये दोनों ही मनोरंजन का साधन थे।

जमादार बाहर से कोठरी का ताला लगाकर चलता बना।

राधे भयभीत पक्षी की तरह डरा-सहमा मिट्टी के चबूतरे पर बैठ गया! चाहे उसने हवालात में कितने ही दिन बिताए हों, परन्तु आज-जैसा सूनापन उसे कभी भी नहीं मालूम हुआ था। परन्तु आज तीन साल के लम्बे अरसे के लिए इस कोठरी के साथ नाता जोड़ते उसका दिल बैठा जा रहा था। वह एक विचित्र असमंजस में काफी देर यों ही बैठा रहा। उसके लिए यद्यपि बाहर भी कोई विशेष

सुख नहीं था, तथापि अपनी कठिन मेहनत से जो वह थोड़ा-बहुत रोटी-कपड़ा प्राप्त करता था, उसमें ही उसे स्वर्गीय आनन्द मिलता था। इस समय उसकी आत्मा बाह्य संसार में विचर रही थी। उसे ऐसा अनुभव हो रहा था मानो उसे त्रिलोक का राजसी वैभव मिल गया हो।

कदाचित् सचमुच उससे राजसी वैभव छीन लिया गया था। कामिनी की लहलहाती बेलों के झुरमुट के बीच किलकारी मारती हुई उसकी एक-मात्र आशा 'कामिनी' दिन-रात उसे जो आनन्द देती थी, वह उसे स्वर्गीय सुख से भी बढ़कर था। कामिनी ही उसके जीवन को जागृति प्रदान करने वाली अद्भुत ज्योति थी।

आज वह उससे अलग था। कामिनी को वह अब नहीं देख सकेगा, उसकी कोकिल के स्वर के समान मादक एवं मधुर ध्वनि भी वह अब नहीं सुन सकेगा। कल तक तो रिहा हो जाने की थोड़ी-बहुत आशा भी थी, परन्तु आज वह भी लुप्त हो गई।

वह इन अद्भुत विचारों में डूबा हुआ ही था कि अचानक बाहर के दरवाजे के खुलने की आवाज़ उसके कान में पड़ी। जमादार के साथ एक भंगी था। जिसने अन्दर आकर लोहे के दो तसले, दो कम्बल और पानी का एक घड़ा जमीन पर रख दिया और बिना कुछ कहे वह बाहर निकल गया।

कोठरी का दरवाजा फिर बन्द हो गया। राधे इन सब चीज़ों को बड़े ग़ौर से देख रहा था।

: ५ :

शेखर का हुलिया देखकर सब दंग रह गए। एक सम्पन्न घराने में उत्पन्न हुए, वैभव के सुखमय झूले पर झूले हुए, इस बीस वर्षीय नवयुवक का यह त्याग!

सेठ भानामल ने भले ही प्रकट रूप से माथे पर सलवट डालकर जलती आँखों से शेखर की ओर देखा हो; परन्तु जब उसने पास आकर सबसे पहले उनसे ही 'बाबू जी नमस्ते' कहा, तो उनका पितृ-हृदय पानी-पानी हो गया। उनके हृदय में पुत्र के वात्सल्य की सरिता हिलोरें लेने लगी। वे आगे बढ़कर उसको गोद में उठाकर प्यार से पिछली सारी बातों का अन्त करना ही चाहते थे कि अचानक उन्हें अपनी स्थिति का ध्यान हो आया। वे रुक गए और शेखर की 'नमस्ते' का भी कोई जवाब नहीं दिया।

पिता के बाद वह और बैठे हुए व्यक्तियों को नमस्ते करके अपने लिए छोड़ी हुई कुर्सी पर बैठ गया।

सेठ जी की अवस्था इस समय विचित्र थी। महीने-भर से बिछुड़ा हुआ बेटा, जिसको कभी एक घड़ी के लिए भी आँखों से ओझल नहीं किया था, जिसके लिए कई मोटरें और नौकर हरदम तैयार रहते थे, मानो एक लम्बे अरसे के बाद उनके सामने आया हो। वे अपने पर काबू कर रहे थे, परन्तु बेचैनी बढ़ती जाती थी। यहाँ तक कि सदा रौब और जोश से लाल रहने वाली उनकी आँखों में वेदना के आँसू झलकने लगे। परन्तु सेठ जी ने अपनी यह पीड़ा किसी पर व्यक्त नहीं होने दी और वे चुपचाप वेदना के उन आँसुओं को पी गए।

फिर भी उन्होंने दबी नज़र से एक बार और शेखर की ओर देखा और मन-ही-मन कहा, एक महीने में ही युगों-जैसा परिवर्तन हो गया। इसकी वह चंचलता तथा हँसी कहाँ चली गई? क्या यह वही शेखर है?

"शेखरजी, मैं इन सब सज्जनों की ओर से आपको धन्यवाद देता हूँ कि आपने अपना अमूल्य समय नष्ट करके यहाँ आने का कष्ट किया है।" ला० ईश्वरदयाल मित्तल ने निस्तब्धता भंग करते हुए कहा।

ईश्वरदयालजी के इन वाक्यों से सेठजी के हृदय में उठता हुआ बवंडर भी एकदम शान्त हो गया।

"क्या कहा, 'कष्ट'। ये अपने घर आये हैं। किसी और के घर तो आये नहीं ?" सरदार जगजीतसिंह ने मज़ाक के लहजे में कहा।

"अपने घर। इसका अपना घर होता तो मेरे साथ यही व्यवहार करता। इसने तो किसी पिछले जन्म के वैर का बदला लिया है मुझसे। यह मेरा कितना सौभाग्य होता कि ऐसा पुत्र मेरे घर में पैदा होते ही मर जाता। बेशर्म............।" सेठ जी ने अपने दिल की आग निकाल ही तो दी।

सेठ जी की बात समाप्त होते ही पं० धर्मदत्त जरा जोर से बोले, "माफ़ करना सेठजी, यह आप ठीक नहीं कर रहे हैं। इस समय ये आपके पुत्र की हैसियत से नहीं आये, हजारों मज़दूरों के प्रतिनिधि के रूप में आये हैं। इन्हें तो हमने बुलाया है, ये अपने-आप तो नहीं आये ? आपको यह मालूम होना चाहिए कि यह बेइज्ज़ती आप इनकी नहीं कर रहे, प्रत्युत उन हजारों मज़दूरों की कर रहे हैं, जिनके एक-मात्र प्रतिनिधि के रूप में ये हमारे पास आये हैं।"

सेठ जी पर मृत्यु-जैसी निस्तब्धता छा गई। उन्होंने पं० धर्मदत्त के विरुद्ध एक भी शब्द नहीं कहा।

शान्ति को भंग करते हुए ला० ईश्वरदयाल मित्तल बोले, "अच्छा शेखरजी, अब उस प्रसंग को छेड़ना चाहिए जिसके लिए आपको कष्ट दिया गया है।"

"कहिए, मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है।" शेखर ने नम्रतापूर्वक कहा।

परन्तु जिसके लिए यह सब आयोजन किया गया था, वह यहाँ नहीं था। सेठ जी किसी और ही विचार में निमग्न थे। वे पुत्र-प्रेम के अथाह सागर में गोते खा रहे थे।

"सेठजी, सुन रहे हो ?" साथ की कुर्सी पर बैठे हुए मुन्शी ज्वाला-सहाय ने सेठ जी को झकझोरते हुए कहा, "सारी बातें आपको ही विस्तार से बतानी होंगी।"

"क्या कहा ? क्या मुझसे ही कह रहे हो ?" सेठ जी की निद्रा टूटी ।

"जी हाँ, आपसे ही कहा । इस समय मज़दूर-संघ का प्रतिनिधि मौजूद है, उसके साथ बात-चीत की जाय ।"

"नहीं, यह सब आप लोगों को ही करना पड़ेगा। मुझसे इस मामले में कुछ न कहो।" सेठ जी ने कहा।

"बहुत अच्छा, तो मैं ला० ईश्वरदयाल मित्तल से प्रार्थना करता हूँ कि वे ही बातें शुरू करें, क्योंकि इससे पूर्व वे इस काम में काफी दिलचस्पी ले चुके हैं ।"

ला० ईश्वरदयाल मित्तल बोले, "मैंने तो कल भी कहा था कि सब-कुछ आप लोगों के सामने होगा। इसीलिए मैंने इन्हें बुलाया है। यदि आपकी यही इच्छा है तो मैं शेखर जी से पूछना चाहता हूँ कि मज़दूरों की हड़ताल खुलवाने के सम्बन्ध में उनके क्या विचार हैं। मज़दूरों की क्या-क्या शर्तें हैं ?"

बड़ी गम्भीरता एवं धैर्यपूर्वक शेखर ने उत्तर दिया, "केवल एक ही शर्त है और वह भी बहुत मामूली-सी ।"

मित्तल—"कहिए ।"

"यही कि उन ग़रीबों को पेट भरने के लिए रोटी एवं तन ढकने के लिए कपड़ा दिया जाय ।"

"यह तो केवल भावुकता से भरे विचार हैं जो कवि एवं वक्ताओं को ही शोभा देते हैं। इस समस्या के हल करने के बिना क्या कोई किसी के यहाँ नौकरी कर सकता है ? और न ही कोई ऐसा मालिक होगा जो अपने नौकरों को इतना पैसा भी न दे जिससे वे अपना जीवन-निर्वाह सरलतापूर्वक कर सकें ।"

"क्या आप ठीक कह रहे हैं ?" शेखर ने दर्द भरी आवाज़ में कहा ।

"हाँ; जहाँ तक मेरा ख़याल है, ठीक ही कह रहा हूँ।" ला० ईश्वरदयाल मित्तल ने उत्तर दिया।

शेखर बोला, "तो कृपा करके आप मुझे यह समझाने का कष्ट तो करें कि १५) या २०) में एक मज़दूर-परिवार का चार माह का रोटी-कपड़े और मकान का खर्चा चल सकता है क्या ?"

"नहीं......कठिनाई से एक महीने का ही चलेगा।"

"तो फिर मुझे यह बताने की कृपा की जाय कि सेठ जी की मिल के मज़दूर इतने रुपयों पर पूरे तीन महीने किसी-न-किसी तरह जीते रहे थे, और जब उनके लिए जीना भी कठिन हो गया तो उन्होंने धैर्य से काम लिया। उन सबने मिलकर एक दरख्वास्त सेठ जी की सेवा में दी कि उनकी बाकी तीन महीने की तनख्वाह दे दी जाय।"

"फिर ?" ला० ईश्वरदयाल मित्तल ने पूछा।

"इसका उत्तर देने से पूर्व मैं आप सब सज्जनों से यह पूछने की धृष्टता करता हूँ कि आप ही बतायें इसमें उनका क्या अपराध था ?"

"बिलकुल ठीक किया उन्होंने, इसमें उनका कोई अपराध नहीं था, वे ऐसा करने को विवश थे।" सबने एक आवाज़ में कहा।

परन्तु आप सुनकर हैरान होंगे कि रायबहादुर की नज़रों में यह उनका अक्षम्य अपराध था और इसी अपराध के बदले उन चालीस व्यक्तियों को बिना एक दिन का नोटिस दिये काम से अलग कर दिया गया। साथ ही उनका पिछला वेतन दबा लेने की धमकी देकर सेठजी ने अपनी दयालुता का परिचय भी दिया।" शेखर ने निर्भीकतापूर्वक कहा।

सबकी आँखें सेठ जी की ओर थीं और सेठ जी जमीन की ओर देख रहे थे।

"और सुनिए।" गम्भीरतापूर्वक शेखर बोलता गया, "मुझे क्षमा करें, आप सब पैसे वाले हैं, भूख और ग़रीबी क्या होती है, इसके संबंध में शायद आपने कभी नहीं सोचा। मेरे इस कथन की सत्यता के लिए

किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं। मैं स्वयं इसका प्रमाण हूँ। आज से एक महीना पहले मैं भी आप-जैसा अमीर था। मुझे भी इस बात का पता नहीं था कि ग़रीबी किस चिड़िया का नाम है, परन्तु मैंने जब उन ग़रीब मज़दूरों की बस्ती को देखा तो मेरी आँखें खुल गईं। वह के दृश्य को देखकर मेरे मन में पैसे वालों के प्रति नफ़रत पैदा हो गई।"

"क्या ? क्या ?" एक साथ कई आवाज़ें आईं।

जरा ठहर कर शेखर बोला, "आप जरा कल्पना करें उस जून के महीने की तपती धूप की, जबकि ज़मीन तवे की तरह तपती है, फर्राटे के साथ चलती हुई लू के कारण पेड़ों के पत्ते तक भी झुलस जाते हैं। ऐसे भीषण समय में सेठजी की हवेली में रहने वाले उन चालीस मज़दूरों के परिवारों को कुत्तों की तरह घसीट कर बाहर जलती हुई ज़मीन पर फेंक दिया जाय, उनका सामान निकालकर बाहर फेंक दिया जाय, और चालीस कोठरियों को खाली करके उनके फूल-जैसे बच्चों को, बूढ़ी माताओं और जवान औरतों को बाहर धूप में रहने को लाचार किया जाय तो उनकी क्या हालत होगी ?"

कमरे में सन्नाटा छा गया।

"और जानते हैं ?" वह बोलता गया 'यह सब किसके हुक्म से हुआ ? जरा इधर देखिए।" यह कहकर उसने अपने पिता सेठ भानामल की तरफ उँगली से इशारा किया। "इन्हीं के हुक्म से।"

"एक छोटी-सी बात और" उसने जरा साँस लेकर कहा, "मैंने जब मज़दूरों के हवेली से निकाले जाने की बात सुनी तो मैं न रह सका। अपनी आँखों से देखने के लिए हवेली की ओर चल दिया। मैंने जाकर देखा हवेली में रोने और चीखने की आवाज़ें आ रही हैं। इस दृश्य को देखकर मैं अपने पर काबू न रख सका और धीरे-धीरे एक सिरे से देखता-देखता मैं एक ऐसी जगह पर पहुँचा, जहाँ जाकर मेरे कदम सहसा रुक गए। लज्जा के कारण मैं गड़ गया जब मैंने देखा कि एक पन्द्रह-सोलह वर्ष की फूल-जैसी कोमल लड़की १०४ डिग्री के बुखार

में धूप में खाट पर पड़ी तड़प रही है। उसका कोई सहायक वहाँ नहीं था। उसकी माता मर चुकी थी और पिता को इन सेठ जी की मेहरबानी से गिरफ़्तार कर लिया गया था—वही राधे नाम का बूढ़ा मज़दूर, जिसको आज तीन साल की कैद की सजा सुनाई गई है।

क्या कसूर था उसका? यह कथा बड़ी लम्बी है। फिर कभी इसका वर्णन विस्तार के साथ करूँगा। हाँ, तो मैं कह रहा था राधे की उस लड़की के विषय में जिसको इन सेठ जी के वफ़ादार और पहलवान कारिन्दों ने बुखार में तड़पते हुए भी बाहर निकालकर धूप में फेंक दिया था। यदि उस समय एक मुसलमान स्त्री, जो उसके मुँह में पानी डालकर उसके ऊपर खाटों को खड़ा करके छाया करके उसके प्राण बचा रही थी, न होती तो यह लड़की शायद ही बचती। क्योंकि सब ओर हलचल मची हुई थी, किसी दूसरे की खबर लेने की वहाँ किसको फ़ुर्सत थी?"

"मुसलमान औरत ने हिन्दू लड़की को पानी पिला दिया!" सेठ गोयनका ने तड़ककर कहा, "हरे राम, हरे राम! घोर कलियुग आ गया। मुसलमान औरत ने हिन्दू लड़की को पानी पिला दिया।"

उनको सम्बोधित करके शेखर ने कहा, "मुसलमान! वह स्वर्ग की देवी है। उसके हाथ से दिये गए पानी का मूल्य मेरी दृष्टि में आपके हाथ से दिये जाने-वाले गंगा-जल से भी बढ़कर है। मैं उस मुसलमान देवी के चरणों की पूजा करता हूँ!"

शेखर की करुण-कहानी सुनकर सबके हृदय द्रवित हो उठे। उसकी सत्यता पर किसी को भी सन्देह नहीं था, सेठजी या किसी और व्यक्ति ने उसकी एक भी बात का खण्डन करने का निरर्थक प्रयास नहीं किया।

थोड़ी देर बाद शेखर फिर बोला, "कदाचित् आज भी आप यह जानना चाहते होंगे कि उन्होंने हड़ताल क्यों की? उनको बिना किसी अपराध के कार्य से हटाया गया, उनके नेता (राधे) को केवल असहाय

ग़रीबों की दुःख-गाथा सुनाने के फलस्वरूप गिरफ़्तार कराया गया। एक और व्यक्ति को हमारे सेठ जी ने हण्टरों की मार से लहू-लुहान कर दिया। मज़दूरों को बाकी तनख्वाह देने के बदले उन्हें टका-सा जवाब सुना दिया गया और ऊपर से पुलिस को बुलाकर उन बेचारों को बुरी तरह पिटवाया गया। इन सब अत्याचारों के कारण यदि उन्होंने हड़ताल कर ही दी, तो क्या अपराध किया?

हाँ, मैं उनको इसका अपराधी अवश्य समझता हूँ कि उन्होंने मिल की इमारतों को नुकसान पहुँचाया है; परन्तु यदि न्याय की दृष्टि से देखा जाय, तो इसमें भी उनका कोई बड़ा अपराध नहीं है। सेठ जी की मिल के मैनेजर के उस समय के व्यवहार ने ही इस दुर्घटना को कराया। उसका व्यवहार उस समय इतना अमानवीय एवं पाशविक था कि जिसको देखकर किसी भी स्वाभिमानी व्यक्ति को क्रोध आ सकता है; फिर इन भूखे, पीड़ित एवं बेरोज़गार मज़दूरों ने जो कुछ भी किया, इसका अपराधी तो इनका मैनेजर ही है।

मेरे आदरणीय महाशयो! आप बार-बार मेरी इस वेश-भूषा को देखकर मुस्करा रहे हैं। मैं इससे अपरिचित नहीं हूँ; परन्तु आप जानते हैं, इसकी तह में क्या बात है? इस घर को मैंने खुशी से नहीं छोड़ा, प्रत्युत अपने वृद्ध पिता की आज्ञा से छोड़ा है। मेरा एक-मात्र अपराध यही था कि मैंने उन अभागे मज़दूरों के दुःख से दुःखित होकर इनकी सेवा में उनके दुःखों को दूर करने की प्रार्थना की थी, और हवेली से निकाले गए मज़दूरों को दुबारा उसमें जगह दे दी थी। इसी अपराध के कारण इन्होंने मुझे घर से निकल जाने की आज्ञा दी थी।"

"क्या अभी और कुछ सुनना चाहते हैं?" शेखर ने वहाँ उपस्थित सभी महानुभावों की ओर देखते हुए पूछा।

"बस, बस बहुत हो गया।" एक साथ कई आवाज़ें आईं।

उधर सेठ जी की धमनियों में रक्त की गति धीमी पड़ गई थी।

उनकी चेतना विलुप्त-प्राय हो गई थी, परन्तु तुरन्त ही ज्यों-त्यों करके वे सँभले।

पुत्र द्वारा होते हुए उनके अपमान ने एक बार फिर उनकी अहङ्कार की भावना को जाग्रत कर दिया। पुत्र-प्रेम से स्निग्ध नेत्रों को एक बार फिर क्रोध के आवेग ने भयानक बना दिया। हृदय की मोहमयी सरलता कठोरता में परिवर्तित हो गई, और फिर उन्होंने अपने हृदय को वज्र-जैसा कठोर बनाकर कड़कते हुए कहा, "यह धूर्त सब बकवास कर रहा है। मैंने कोई भी ग़ैरक़ानूनी काम नहीं किया। दिन-प्रतिदिन उद्दण्ड होते हुए उन हरामखोरों को यदि मैं सख़्ती से ठीक न करता, तो वे मेरे लिए क़यामत ही ले आते। मैं······"

"तो अब भी क़यामत से क्या कम है।" सरदार जगजीतसिंह ने सरलतापूर्वक कहा। परन्तु कदाचित् सेठ जी ने यह उनकी बात नहीं सुनी, क्योंकि वे निरंतर उसी तेज़ी से बोलते गए—

"······मैं इस उद्दंड लड़के की जबान खींच लेता जो मुझे आप लोगों का लिहाज़ न होता। बेटा होकर यह बड़े-बूढ़ों की तरह उपदेश दे रहा है, और आप लोगों के सामने मुझे अपराधी ठहरा रहा है। कृपा करके आप इससे कह दें कि यह मेरे सामने से हट जाय, नहीं तो······।" क्रोधावेश में हुए सेठ जी का गला सूख गया, और वाक्य भी पूरा न हो सका।

काफी देर चुप रहने के बाद सेठ जी ने शेखर की ओर ध्यान दिया। वह ऐसे स्थिर भाव से मूर्तिवत् बैठा था, मानो उससे कुछ कहा ही नहीं गया।

यह इतना घमण्डी और लापरवाह हो गया है। इस विचार ने सेठ जी को और भी अधीर कर दिया। अब उनके लिए एक पल भी वहाँ बैठना कठिन हो गया। वे यह कहते हुए चलने को तैयार हो गए, "बस, मैं इसके साथ कोई बात नहीं कर सकता।"

दो-तीन व्यक्तियों ने बड़ी कठिनता से उन्हें पकड़कर बैठाया।

मुन्शी ज्वालासहाय ने कहा, "सेठ जी, ऐसा न करो। यह बच्चों का खेल थोड़े ही है, हम भी आख़िर किसी मतलब से ही इकट्ठे हुए हैं। ज़रा इस विषय में तो सोचो और साथ ही अपने भविष्य पर विचार करो। ज़रा शान्ति से इस मामले को सुलझाने का प्रयत्न करो।"

सेठ जी के क्रोधावेश में ओठ फड़क रहे थे, पर वे किसी तरह बैठ गए। अब भी उनके हृदय में अशांति का ऐसा बवंडर उठ रहा था कि उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे उसके वेग से उनका हृदय फटकर टुकड़े-टुकड़े हो जयगा।

"अच्छा शेखर जी!" पंडित धर्मदत्त जी बोले, "अब इस समस्या को सुलझाना चाहिए। बतलाइए आपके मज़दूर काम करने को तैयार हैं या नहीं? संक्षेप में उत्तर दीजिए।"

"तैयार हैं।"

"किसी शर्त पर, या बिना किसी शर्त के?"

"पंडितजी! बिना शर्त के वे इस अवस्था में कैसे काम पर आ सकते हैं? आप स्वयं सोचें।"

"तो बतलाइए, आपके मज़दूर क्या चाहते हैं?"

"यह लीजिए" कहकर शेखर ने कुर्ते की जेब से एक काग़ज़ निकालकर उनके हाथ में दे दिया।

"लीजिए सेठ जी, सुनिए मज़दूरों की शर्तों को ज़रा ध्यान से।" कहकर पंडित धर्मदत्त ने उस काग़ज़ में लिखी शर्तों को पढ़ना शुरू कर दिया। सबका ध्यान उस काग़ज़ के एक-एक अक्षर की ओर था—

"हम रायबहादुर सेठ भानामल की मिल के मजदूर सर्व-सम्मति से 'यू० पी० मजदूर-संघ' की आज्ञा से निम्नलिखित शर्तें हड़ताल खोलने के सम्बन्ध में अपने प्रतिनिधि श्री शेखर के द्वारा उनके पास भेज रहे हैं:—

१—हमारा पिछला साढ़े तीन मास का वेतन और साथ ही इन हड़ताल के दिनों का वेतन का भुगता दिया जाय।

२—हमारे नेता राधे और सभी सज़ा पाये हुए मज़दूरों को तुरन्त रिहा कराया जाय।

३—रहमत को निरपराध मारने के सम्बन्ध में सेठ जी खेद प्रकट करें।

४—आगे से हर मास के पहले सप्ताह में पिछले मास का वेतन चुकता कर दिया जाया करे।

५—जिन मज़दूरों को काम पर से हटा दिया गया है या जितने कैद हैं, उन सबको बिना शर्त काम पर वापस बुला लिया जाय, और उनके खाली दिनों की, अर्थात् जेल के दिनों की तनख्वाह भी पूरी-पूरी दे दी जाय।

६—चूँकि मैनेजर का व्यवहार सदा से हमारे साथ अशिष्टतापूर्ण एवं अपमान-जनक रहा है, इसलिए उसे तुरन्त अलग कर दिया जाय।

७—वर्तमान आन्दोलन का किसी मज़दूर की 'शीट रोल' पर कोई भी प्रभाव न समझा जाय।

उक्त सभी शर्तों के पूरा होने की अवस्था में हम सभी प्रतिज्ञा करते हैं कि पूर्व की ही भाँति परिश्रम से अपनी ड्यूटी को पूरा करेंगे। हमारे द्वारा मिल की इमारतों को जो हानि पहुँची है, उसकी क्षति-पूर्ति के लिए हानि की सारी रक़म मज़दूर अपने वेतन में से किस्तों के द्वारा भुगता देंगे।

हम हैं—

रायबहादुर सेठ भानामल की

मिल के मज़दूर।"

शर्तें सुनकर सेठजी घबरा गए। वे शेखर के व्यवहार से पहले ही क्षुब्ध थे, फिर इन शर्तों ने तो उनके जले हुए हृदय पर नमक छिड़कने

का काम किया। वे शर्तें क्या थीं, सेठजी के हृदय को छेदने के लिए विष-बुझी बर्छियाँ थीं।

"कहिए सेठजी!" सेठ रामकृष्ण गोयनका ने कहा, "इन शर्तों के सम्बन्ध में आपका क्या विचार है? आप इनमें क्या-क्या परिवर्तन करना चाहते हैं?"

"परिवर्तन!" सेठजी अपने नीचे के ओठ को दाँतों से चबाते हुए बोले, "मैं इन शर्तों में से एक को भी मानने को तैयार नहीं हूँ, प्रत्युत इनके सम्बन्ध में वाद-विवाद करना भी मैं अपनी इज़्ज़त के प्रतिकूल समझता हूँ।"

सब में सन्नाटा छा गया।

"शेखर जी, क्या आप इन शर्तों को कुछ नरम कर सकते हैं?" लाला ईश्वरदयाल मित्तल ने पूछा।

"जी बिलकुल नहीं। मुझे अपने साथियों की आज्ञा है कि इनमें कोई भी परिवर्तन न किया जाय।"

"तब तो सब मामला खत्म है।" चौ० यूसुफ ने कहा।

"बहुत अच्छा, तो फिर मुझे आज्ञा है?" शेखर ने उठते हुए कहा।

कुछ देर के लिए फिर सन्नाटा छा गया। पण्डित धर्मदत्त ने सेठ जी की ओर देख कर कहा, "सेठ जी, यदि आप थोड़े-बहुत झुकें तो फिर शेखर जी को भी कुछ कहा-सुना जाय?"

सेठ जी इस समय बे-काबू हो चुके थे, अब कुछ भी सुनना उनके लिए कठिन था। "क्षमा करना! जो भी मुझे इन शर्तों के सम्बन्ध में बातचीत करने को कहेगा, वह मेरा दुश्मन होगा। मुझे तनिक भी परवाह नहीं, चाहे मेरी मिल बिलकुल बन्द हो जाय। सब-कुछ चाहे तहस-नहस हो जाय।" कहकर वे उठकर बाहर निकल गए। उनको रोकने का साहस किसी को न हुआ।

और कुछ कहना-सुनना फ़िजूल समझ कर, सब उठ खड़े हुए। शेखर भी उठ गया।

कोठी के पिछले भाग से शेखर जब बाहर जा रहा था तो उसके हृदय को कोई आकर्षण बार-बार अपनी ओर खींच रहा था, परन्तु वह अपने हृदय को कठोर करके तेज़ी से बाहर सड़क पर जा पहुँचा।

जाते हुए उसने फिर एक बार पीछे मुड़कर करुण आह भरी और सहसा उसके मुख से निकल पड़ा, "आह मेरी माँ!"

◆

सातवाँ भाग

निराशा

: १ :

दो सप्ताह और बीत गए।

मिल बन्द थी, और मज़दूर थे बिलकुल खाली। हड़ताल की समाप्ति की कोई आशा नहीं थी, क्योंकि उधर रायबहादुर सेठ भाना-मल शेखर द्वारा मज़दूरों की कोई भी बात सुनने को तैयार न थे, और इधर मज़दूर भी जो कदम उठा चुके थे उससे तिल-भर भी पीछे हटना नह ीचाहते थे। डोर दोनों ओर से ही बराबर खिंची हुई थी।

सेठ जी ज्यों-ज्यों अपनी ज़िद पर अ ़ जाते थे त्यों-त्यों उनका हृदय किसी भावी आपत्ति की आशंका से भयभीत होता जा रहा था। चिन्ता के कारण उनका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरता जा रहा था, परन्तु वे किसी पर भी इसे प्रकट होने देना नहीं चाहते थे। उनकी धारणा थी कि यदि किसी को इसका पता लग गया, तो लोग यही समझेंगे कि सेठजी इसका मुकाबला नहीं कर सके।

दूसरी ओर शेखर की माँ पार्वती की भी यही अवस्था थी। वह इतनी सहन-शील एवं पति-भक्त थीं कि कदाचित् अबकी बार जीवन सबसे पहले उसे पति के विरुद्ध कुछ बोलना पड़ा। उसने लाख मिन्नतें कीं, पर कुछ न हुआ। इसके बाद पार्वती से फिर कभी सेठजी के आगे शेखर का नाम भी न लिया। उसने इसे भाग्य का फेर समझ कर जीवन की कठिन पुत्र-वियोग की घड़ियों को ज्यों-त्यों करके

व्यतीत करने लगी। वह दिल को सान्त्वना दे-देकर इस दुःख से बचने के निष्फल प्रयत्न करने लगी।

परन्तु एक दिन की घटना ने पार्वती का बहुत दिनों से रुका हुआ धैर्य का बाँध तोड़ दिया, उसकी सारी शान्ति जाती रही।

सेठ जी के एक मित्र बाबू कृष्णगोपाल सिनहा ने परमट में अपने नये मकान का मुहूर्त्त किया। निमन्त्रण दोनों के लिए ही आया था; परन्तु तबियत ख़राब होने के कारण सेठ जी ने पार्वती को ही भेज दिया।

पार्वती की मोटर बाबू कृष्णगोपाल के द्वार पर जाकर रुकी। वह उतर कर मुख्य द्वार से घर में चली गई। घर की मालकिन ने मार्ग में ही उसका स्वागत किया और खुले मैदान में लगे शामियाने के नीचे, जहाँ पर बड़े-बड़े घरों की स्त्रियाँ व पुरुष बैठे थे, और उनके मनोरंजन के लिए एक व्यक्ति जादू के खेल दिखा रहा था—पार्वती को ला बैठाया।

पार्वती एक गद्देदार कुर्सी पर बैठ गई। उसके आस-पास की सब कुर्सियाँ खचाखच भरी हुई थीं, पर पार्वती को जादू के खेलों में कोई दिलचस्पी नहीं थी। उस बेचारी के साथ भी एक जादू का खेल हो चुका है; जिसने उस समस्त जीवन की शान्ति को देखते-देखते विलुप्त कर दिया था। वह इस समय पता नहीं, किन विचारों में मग्न थी कि सहसा उसकी आँखें द्वार पर आकर रुकीं, एक कार पर जाकर टिक गईं। उसके ड्राइवर ने नीचे उतरकर उसकी खिड़की खोली। एक अधेड़ दम्पति और एक बारह वर्षीय लड़का उसमें से उतरे। खिड़की खोलते और बन्द करते समय ड्राइवर की पीठ पार्वती की ओर थी; पर ज्यों ही वह घूमा, पार्वती ने उसका चेहरा देख लिया। सिर नंगा, खद्दर की धोती, वैसा ही गले में कुर्ता और पैरों में चप्पलें। देखते ही मानो उसके प्राण ही निकल गए। वह घबराकर कुर्सी से उठ खड़ी हुई, और उसके मुख से चीख़ निकल पड़ती, यदि उसे अपने समीप बैठी और

स्त्रियों का ख़याल न आता। वह जल्दी से आगे बढ़ना चाहती थी, परन्तु इस समय तक तमाशा देखने वाले मेहमानों की भीड़ इतनी अधिक बढ़ गई थी कि मार्ग सारा रुक गया था। उसने शेखर को बुलाने के लिए आवाज़ देने का प्रयत्न किया; परन्तु बहुत दूर समझ-कर वह रुक गई।

वह पागलों की भाँति आगे खड़ी हुई स्त्रियों को इधर-उधर हटाती, कुर्सियों को लाँघती हुई, कठिनाई से पाँच-छः कदम ही गई थी कि मोटर ड्राइवर ने स्टार्ट कर दी और मोटर जिधर से आई थी, उधर ही चली गई।

पार्वती बीच ही में रह गई। उनकी निगाह उसी मार्ग पर लगी हुई थी, जिधर से कार आई थी। उसकी आँखें फटी-सी रह गईं, और कलेजा मुँह को आने लगा।

पार्वती की यह घबराहट देखकर घर की मालकिन उसके पास गई और उसके सोफे के पीछे खड़ी होकर उसके ऊपर हाथ रखती हुई बोली, "बहन जी, क्या बात है? इतनी क्यों घबरा रही हैं आप?"

"कुछ नहीं बहन जी!" पार्वती ने साँस-से-साँस मिलाने का प्रयत्न करते हुए कहा, "ज़रा गर्मी अधिक होने के कारण तबियत घबरा गई थी।"

"ओह, तो आओ, ज़रा ऊपर के चौबारे में पंखे के नीचे बैठ जाइए।" मालकिन प्रेम-भरी आवाज़ में यह कहकर उसे अपने साथ ले चली।

निर्जीव पार्वती प्रस्तर-प्रतिमावत् उसके पीछे-पीछे चल दी; परन्तु उसका हृदय बाहर की ओर ही खींच रहा था।

पंखे को 'फुल स्पीड' पर खोल दिया गया; परन्तु पार्वती के दिल को ठण्डक पहुंचाने वाला पंखा वहाँ नहीं था। उसका शरीर उससे और भी अकड़ने लगा और दिल पुत्र-वियोग से विह्वल हो उठा।

उसको वहाँ बैठाकर मालकिन बाहर चली गई। पार्वती वहाँ बैठी न रह सकी, और सोफ़े पर लेट गई। उसने आँखें बन्द कर लीं, और

उन बन्द आँखों से मातृ-प्रेम के आँसू निकल-निकलकर उसके मुँह को धोने लगे।

आधा घण्टा बीत गया। पार्वती को फिर उत्साह हुआ। वह झटपट उठी, सँभली और फिर नीचे उतर गई। मेहमानों को भोजन कराने की तैयारी हो रही थी और वे 'डायनिंग रूम' की ओर बढ़े जा रहे थे।

पार्वती उसी अधेड़ दम्पति के साथ-साथ चल दी, जो उस कार में से उतरे थे और खाने के कमरे में भी उसी स्त्री के पास वाली कुर्सी पर बैठी।

भोजन प्रारम्भ हो गया और बातचीत भी।

"बहन जी, आप कहाँ रहती हैं?" पार्वती ने साहस बटोरकर पूछा।

"गाँधी नगर में।" उसने नम्रतापूर्वक कहा और साथ ही प्रश्न कर दिया—"और आप?"

"हम तो सिविल लाइन्स में रहते हैं।" पार्वती ने मतलब की बात करने के लिए बातों का रुख पलटते हुए पूछा, "यह आपका बच्चा कौन-से दर्जे में पढ़ता है?"

"जी, आठवीं में आया है अबकी बार।"

"चिरंजीव रहे, होनहार मालूम होता है।"

"आपका आशीर्वाद सफल हो बहन जी, हमारे तीन घरों में यही एक है।"

पार्वती के हृदय से वेदना की गम्भीर आह निकली, पर वह ओठों से बाहर नहीं आई। मन-ही-मन उसने कहा, मेरे भी एक ही था।

उस स्त्री ने पूछा, "और आपके कितने बाल-बच्चे हैं?"

वही प्रश्न जो उसके दिल को बार-बार मसोस रहा था—"बहन जी,...एक ही था...।"

"बहन जी, आपका गला क्यों भर आया, आँखों में आँसू क्यों आ गए, क्या बात है ?" उस स्त्री ने प्रश्न किया।

पार्वती से कोई उत्तर न दिया गया। सन्तप्त मातृ-हृदय प्रेमाश्रु-समुद्र में हिलोरें ले रहा था।

"तो आपका बच्चा कहाँ है ?"

दूसरों की निगाहों से अपने आँसू छिपाती हुई पार्वती ने कहा, "चला गया।"

"चला गया ?" उसने भोजन की थाली से हाथ सिकोड़ते हुए आश्चर्य-मिश्रित मुद्रा में पूछा, "कहो बहनजी, आप भोजन क्यों नहीं कर रहीं ? सारा-का-सारा खाना आपके आगे ज्यों-का-त्यों पड़ा हुआ है।"

"मेरी इच्छा खाने की नहीं।" गले को साफ़ करते हुए पार्वती ने कहा।

"तो आपका बच्चा कहाँ है ?" उसने फिर वही प्रश्न किया।

"मैंने अभी एक घण्टे पूर्व उसे डेढ़ महीने बाद देखा···"रोकते-रोकते भी पार्वती आँसुओं के वेग को न छिपा सकी और उस वाक्य को अधूरा ही छोड़कर खाने की मेज़ से लगकर खड़ी हो गई।

सब मेहमानों के पास होती हुई मालकिन उसके पास आई और बोली, "क्यों बहन जी, क्या अभी तक आपकी तबियत ठीक नहीं हुई ?"

"नहीं" कहकर वह बाहर के खुले मैदान की ओर चल दी।

"अच्छा, ज़रा ठण्डी हवा में घूम-फिर लें, इतनी देर में मैं भी खाली होकर आती हूँ।" कहकर मालकिन भी चली गई।

हीरालाल मोदी की धर्मपत्नी का हृदय कदाचित् बड़ा दयालु था। वह भी वहाँ बैठी न रह सकी और पति से 'मैं अभी आई' कहकर पार्वती के पीछे-पीछे चल दी।

"बहन जी, आप तो कहती हैं कि मैंने उसे अभी देखा था ?"

प्रश्न-भर लहजे में उसने पीछे से आवाज़ दी और उसके बराबर में आ खड़ी हुई। पार्वती इस मंगलमय अवसर पर अपने आँसू दिखा-कर मेहमानों को परेशानी में डालना नहीं चाहती थी, पर उसका यह सब प्रयत्न निष्फल होता जा रहा था। वह तेज़ी से कोठी के पिछले हिस्से में जा पहुँची। उधर कोई भी आदमी नहीं था।

"फिर आपने बतलाया नहीं बहनजी!" फिर तीसरी बार उसने प्रश्न किया।

"ज़रा ठहरो।" पार्वती ने उसके कन्धे से मिलकर अपने-को गिरने से बचाते हुए कहा, "ज़रा मेरा दिल ठिकाने आ जाने दो।"

उसने पार्वती को अपनी दोनों बाहों में ज़ोर से कस लिया। पार्वती ने ज़रा सन्तोष की साँस लेते हुए कहा, "अब मैं ठीक हूँ।"

"आपने उसे कहाँ देखा था?" चौथी बार पूछने पर पार्वती ने उत्तर दिया, "आपके साथ।"

"मेरे साथ!" उसने आश्चर्य-मिश्रित दृष्टि से पार्वती की ओर देखा।

"जी हाँ, वह आपकी कार को चला रहा था।"

"आप शेखर का जिक्र तो नहीं कर रही हैं?"

"जी वही है मेरा''''" और सहसा उसकी ज़बान बन्द हो गई।

"आप भूल तो नहीं रहीं बहनजी?"

"क्या कभी माता भी अपने पुत्र को पहचानने में ग़लती कर सकती है? मुझ अभागी का तो एक ही है वह आशा का दीपक।"

"परन्तु" उसको हैरानी से देखती हुई वह बोली, "वह तो''' वह तो सुना है किसी मिल से निकाले हुए मज़दूरों में से है।"

"नहीं, शायद मिल का मालिक ही है बहनजी।"

"सचमुच तो उस समय आपने क्यों नहीं कहा?"

"मैं उसके पास जा रही थी, परन्तु वह चला गया।"

"बहन जी, आपके बेटे का यह हाल? मुझे तो पहले ही ऐसा

लगता था कि यह किसी बड़े घराने का है। पर वह तो अपने को मजदूर बतलाता था बहुत सन्देह तो मुझे उसकी शिक्षा की योग्यता को देखकर हुआ था कि कहीं मजदूर भी इतने शिक्षित होते हैं ? जिस दिन से उसने इस हमारे लड़के को पढ़ाना शुरू किया है उसकी काया ही पलट गई है। पर बात क्या है बहनजी, सारी बात सुनाओ तो सही। क्या नाराज़ होकर घर से चला आया ?"

"बहन जी, यह बड़ी लम्बी कहानी है; कभी फुरसत में बैठकर सुनाऊँगी।"

"तो मेरे साथ ही आप चलें। हमारा घर यहाँ से दूर नहीं है।"

"शेखर आयगा क्या ?"

"नहीं, वह अब नहीं आयगा, कल आयगा। हम अब ताँगे से जायंगे। शाम को सात बजे के बाद वह किसी और जगह जाता है। मुझे भी यह मालूम नहीं कि वह कहाँ रहता है ?"

"सुना है वह सेठजी की हवेली के पास एक बैठक में किराये पर रहता है।" पार्वती ने कहा।

"बहनजी, जब आपको मालूम था तो फिर जाकर आप उसे ले क्यों नहीं आईं ?"

"मेरे पति की आज्ञा नहीं थी।"

"मिलने की भी आज्ञा नहीं थी ?"

"नहीं, यदि होती तो मैं क्यों इतने दिन क्या बैठी रहती ?"

"आज तो ज़रूर मिलूँगी, यदि न मिल सकी तो घर जीवित न पहुँच सकूँगी। उसको देखते ही पता नहीं मुझे क्या हो गया है ?"

"तो उस हवेली को आप जानती हैं ?"

"जी, वह हमारी ही हवेली है, अच्छा बहनजी, फिर मिलूँगी।" कहकर पार्वती जल्दी से बाहर निकली। कार में बैठकर उसने हवेली की ओर चलने का ड्राइवर को संकेत किया।

: २ :

"कुछ पता है ?"

"क्या ?"

"मैं कहती हूँ, तुम भी निरे बुद्धू हो।"

"मैं तुम्हारी पहेलियों को क्या समझूँ, कुछ कहो भी ?"

"कामों को देखते हो या नहीं ?"

"हाँ-हाँ, रोज़ देखता हूँ, फिर ?"

"फिर तुम्हारा···मेरे मुँह से और कुछ निकल गया था, तो···।"

"तो बात क्या है ?"

"कामो दिन-प्रति दिन बड़ी होती जा रही है, कुछ फ़िक्र करो।"

"फ़िक्र किस बात की ?"

"उसके विवाह की।"

"ऐसी क्या जल्दी है उसके विवाह की अभी ? ज़रा राधे को आ जाने दो।"

"तो तीन साल तक वह कुमारी ही बैठी रहेगी ?"

"कहीं लड़का तलाश करूँगा, धीरे-धीरे ही ऐसे काम हुआ करते हैं।"

"यदि लड़का मिल जाय तो विवाह कर दोगे ? पैसों का प्रबन्ध कर लिया है क्या ?"

"हाँ, हो ही जायंगे रुपये भी।"

"लड़का तो मैंने तलाश कर लिया है। अल्लाह ने अपने-आप ही भेज दिया है वह तो !"

"कौन-सा लड़का, ज़रा मैं भी तो जानूँ ?"

"आपका बाबू।"

"कौन-सा बाबू, मेरे बाबू तो कितने ही हैं ?"

"वही, सेठजी का लड़का शेखर।"

"क्या बात कही है तुमने ! हमारी क्या औक़ात है उससे कामो

का विवाह करने की। 'कहाँ राजा भोज और कहाँ गंगू तेली!' हम ग़रीबों की लड़की से उसका विवाह कैसे हो सकता है?"

"इस बात को छोड़ो। तुम्हें कुछ मालूम भी है, वह तो कामो को हृदय से चाहता है।"

"क्या शेखर, सच?"

"हाँ, कसम अल्लाह पाक की, क्या मैं झूठ बोलती हूँ। एक दिन उसने मुझसे आकर पीने के लिए पानी माँगा तो मैंने धीरे से उसे टोहने के लिए बात छेड़ी—"शेखरजी, तुम मुझे चाची कैसे कहते हो, तुम कहाँ और हम कहाँ?" तो उसने कहा कि 'जैसी आप कामिनी की चाची हैं वैसी मेरी भी हैं।' मैंने कहा, 'कामो तुम्हारे बराबर कैसे हुई?' इस पर उसने कहा, 'चाची जी, कामिनी से बढ़कर तो मेरे लिए संसार मे कोई है ही नहीं।' मैंने अवसर पाकर और मे यह प्रश्न भी कर दिया 'क्या उससे तुम विवाह कर लोगे?' इस पर उसने प्रसन्नतापूर्वक कहा, 'यह मेरा सौभाग्य होगा'।"

अपनी पत्नी अनवरी की बातें सुनकर रहमत हर्षोल्लास से उछल पड़ा। उसने अनवरी से कहा, "यदि ऐसा हो जाय तो हमारी कामो बैठी राज करेगी। अन्धे को दो आँखें ही चाहिएं।"

"परन्तु अभी तो वह स्वयं ही अपना घर-बार छोड़े फिरता है।"

"चाहे वह घर-बार क्यों न छोड़े फिरे, परन्तु है तो वह जायदाद उसी की।"

"यदि उसके माँ-बाप ने जायदाद के हक से उसे वञ्चित कर दिया तो?"

"कर देंगे तो क्या? पढ़ा-लिखा है सब ठीक-ठाक कर लेगा। अब भी तो चालीस-पचास रुपये ले ही आता है और सारे दिन मजदूरों के संगठन के लिए इधर-उधर भागा फिरता है।"

"अच्छा! अनवरी ने आश्चर्य-भरी मुद्रा में फिर पूछा, "कहाँ से ले आता है चालीस-पचास रुपये?"

"किसी सेठ के लड़के को पढ़ाता है और साथ ही उनकी कार पर ड्राइवर का काम भी करता है।"

"खुदा यदि हमारी सुन ले तो मेरी कामो रानी बन जाय, रानी!" दोनों हाथ जोड़कर अनवरी ने कहा।

"ओह छोड़ो भी इन बातों को, मैं भी उससे इस संबंध में बात करके उसके मन की थाह लूँगा।"

उपर्युक्त बातें रहमत और उसकी धर्मपत्नी अनवरी में हो रही थीं। कामिनी अपने पिता राधे की गिरफ़्तारी के बाद उन्हीं के पास रहने लगी थी; उनके ऊपर ही उसके लालन-पालन का बोझ आ पड़ा था। इसी कारण वे इसके विवाह के लिए भी चिन्तित थे। शेखर के कामिनी के प्रति आकर्षण की बात सुनकर दोनों के हृदय को शान्ति मिली।

उधर राधे के भी कानपुर-जेल से बदलकर दूसरी जेल में भेजे जाने की ख़बर मिलने के कारण शेखर ने सब मज़दूरों में स्टेशन पर उसको विदाई के लिए भारी आयोजन करने की खबर भिजवा दी थी। रहमत ने यह समाचार अनवरी को भी सुना दिया था। कामिनी शेखर के साथ जेल में अपने पिता से मुलाकात करने गई थी। वे दोनों बातों में व्यस्त थे कि हवेली में एक कार आती हुई दिखाई दी। वह घबराकर उठ बैठा और सहसा ही उसके मुँह से निकल पड़ा, "हैं यह कौन?...मोटर तो सेठजी की लगती है... कहीं कोई और नई विपत्ति तो नहीं आ गई।" उसने अनवरी को सम्बोधित करते हुए कहा, "ज़रा देखो तो सेठानीजी आई हैं।"

"कौन-सी सेठानी?"

"वही शेखर की माता जी, और कौन?" कहता हुआ रहमत घर से निकलकर हवेली के मैदान में कार के पास खड़ी पार्वती के पास पहुंच गया और झुककर सलाम किया। इतने में हवेली के और मज़दूर भी इकट्ठे हो गए।

देखते-देखते पार्वती एक कोठरी के दरवाजे के आगे जाकर खड़ी हो गई! रहमत ने झटपट एक खाट लाकर वहाँ बिछा दी, वह उस पर बैठ गई। इतने में ही उनका मोटर-ड्राइवर भी कार की खिड़कियाँ बन्द करके वहाँ आगया और रहमत को सम्बोधित करके बोला, "मालूम हुआ था कि छोटे सेठ जी (शेखर) यहीं कहीं एक बैठक में रहते हैं।"

"हाँ साहब, मैं चलकर दिखाये देता हूँ, परन्तु वे इस समय वहाँ नहीं होंगे। राधे की लड़की को लेकर जेल में उससे मुलाकात करने गा हैं।" रहमत ने पार्वती की ओर देखते हुए सहमी हुई आवाज़ में कहा।

पार्वती पर मानो विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। उसने दर्द-भरी आवाज़ में रहमत से पूछा, "कब तक आयंगे ?"

"जी, वैसे चाहे अभी आ निकलें; कुछ ठीक पता नहीं।" रहमत ने विनम्र शब्दों में कहा।

पार्वती सामने फैली हुई फूलों की बेल को देख रही थी। बहुत देर तक उसकी निगाह उस पर टिकी रही।

दो-तीन घड़ी बैठने के बाद प्रतीक्षा के समय को सरलता से बिताने के लिए वह उठकर इधर-उधर टहलने लगी। रहमत, अनवरी और कई मजदूर उसके पीछे-पीछे चल रहे थे। सभी के मन की बुरी दशा थी। सभी किसी अनागत विपत्ति के भय से आशंकित थे। सभी यह सोच रहे थे—'पता नहीं घर से निकले हुए अपने बेटे को वापिस ले जाने के लिए ये आई हैं, क्या हमारा नेता हमसे छीन लिया जायगा।'

टहलती-टहलती पार्वती उसी बेलों वाली कोठरी के आगे जाकर ठहर गई और एक फूल तोड़ कर उसे सूँघती हुई बोली, "यह किसकी बेल है ?"

"जी कामिनी की।" रहमत ने नम्रतापूर्वक कहा।

"यह तो मैं भी जानती हूँ। मेरी कोठी में भी इसकी बेल लगी हुई

है। मैं पूछती हूँ कि यह इतनी सुन्दर बेल यहाँ किसने लगाई है ?" पार्वती ने मुस्कराते हुए कहा।

"जी कामिनी ने।"

फिर वही उत्तर मिला और उसने प्रश्न-भरी निगाह से रहमत की ओर देखा।

"सेठानीजी" अनवरी ने एक कदम आगे बढ़कर कहा, "बेल लगाने वाली लड़की का नाम भी कामिनी है।"

कामिनी ! यह भी कामिनी, वह भी कामिनी ! दोनों कामिनी ! तो वह भी इसी कामिनी की तरह सुन्दर होगी। पर्वती ने मन-ही-मन कहा। फिर बोली, "कौन है वह ?"

"जी, वह राधे की लड़की है" भीड़ में से किसी ने कहा।

"तो पिता की भाँति पुत्री भी विचित्र प्रकार की होगी।" कहती हुई पार्वती चल पड़ी और बेलों के झुरमुट से आच्छादित दरवाजे में से होकर भीतर कोठरी में जा पहुंची। अन्दर की सफाई और व्यवस्था देखकर वह दंग रह गई। कोई बहुमूल्य सामान नहीं था; न कोई कीमती कपड़ा या बर्तन, पर जो भी था वह इतनी व्यवस्था से रखा हुआ था कि प्रत्येक चीज़ बोलती-सी प्रतीत होती थी। छोटे-से तख़्त के ऊपर सफेद दूध की तरह चमकती हुई चादर बिछी हुई थी। उसके ऊपर कुछ हिन्दी की पुस्तकें सजाकर रखी हुई थीं। यह तो था भीतर का दृश्य। बाहर की फुलवारी की सजावट व बनावट देखकर तो पार्वती को ऐसा अनुभव हुआ कि यहाँ कोई अवश्य फूल-पौधों का विशेषज्ञ माली रहता है। सुन्दर हाथों द्वारा बनाई हुई बेल का गोल दरवाज़ा देखकर तो उसे अपने 'गार्डन' के माली भी अयोग्य मालूम होने लगे।

पार्वती ने रहमत से पूछा, "इस कोठरी में कोई और भी रहता है क्या ?"

"नहीं जी, पहले दो-चार दिन बाबूजी यहीं टिके थे।" रहमत ने नम्रतापूर्वक कहा।

"और आपके बाबूजी रोटी कहाँ खाते थे.........." कहते-कहते वह एकदम रुक गई। अब बाहर से उसने शेखर को आते हुए देखा। रात्रि के बढ़ते हुए अन्धकार में चन्द्रमा का जो महत्त्व होता है ठीक वही शेखर के आगमन का इसी अवस्था में पार्वती के लिए हुआ। पार्वती को मानो प्रसाद मिल गया। वह अन्दर न खड़ी हो सकी, तुरन्त बाहर आगई।

चिर-वियुक्त शेखर माँ के हृदय से लगा था। दोनों इतने दिन बाद मिले थे। माँ ने पुत्र को मानो हृदय में छिपा लिया। उसके करुणा-जनक रुदन को सुनकर सबकी आँखों में आँसू आगए।

उतनी देर कामिनी वहीं पर खड़ी रही। जब पार्वती ने शेखर को प्यार से आलिंगन करके छोड़ा तो 'कामिनी' ने भी उसके चरणों में विनम्र अभिवादन किया।

कामिनी की ओर देखकर पार्वती की आँखें चौंधिया गईं। ऐसी सौन्दर्य की अद्भुत प्रतिमा उसने जीवन में पहली बार देखी थी; उसकी आँखें इसकी साक्षी बार-बार दे रही थीं जो क्रमशः कभी कामिनी और कभी कामिनी की बेल की ओर देख रही थीं।

पार्वती ने कामिनी के विषय में शेखर से कुछ पूछना चाहा, परंतु कामिनी का उसके ऊपर ऐसा मधुर प्रभाव छा गया था कि वह अब कुछ भी न पूछ सकी।

"माता जी, आखिर आपने मुझे पकड़ ही लिया।" आँसू पोंछते हुए शेखर ने गम्भीर मुस्कराहट प्रदर्शित करते हुए कहा; और वह माता को कामिनी की कोठरी की ओर लेकर चल पड़ा। पार्वती में अभी तक बोलने का साहस नहीं हुआ था। तख्त पर दोनों माँ-बेटे बैठ गए, कामिनी भी पार्वती के पास जाकर खड़ी होगई। पार्वती ने फिर एक बार कामिनी के सुन्दर शरीर को सिर से पैर तक

देखा और बिना कुछ कहे अपने पास बिठा लिया। फिर शेखर की ओर देखती हुई बोली, "बेटा, माता से कहीं ऐसा किया करते हैं, मैंने तेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ा ?"

गला भरकर शेखर बोला, "माता जी, यदि मेरे वश की कोई बात होती तो क्या मैं इतने दिन तक आपसे अलग रह सकता था ? परन्तु क्या करता, पिता जी की मेरे लिए यही आज्ञा थी......आप रोएं न माता जी......शेखर आपसे दूर नहीं है। मैं जब तक जीवित रहूँगा अपनी माता जी के चरणों की पूजा करूँगा।"

"बेटा, मैं ही कौन-सी आजाद हूँ, यही हुक्म मेरे लिए भी था। आज भी पता नहीं कैसे लुक-छिपकर आई हूँ।" पार्वती ने विवशता-पूर्ण लहजे में कहा।

"परन्तु माता जी आपको पिता जी की आज्ञा का पालन करना चाहिए था ?"

"बेटा, मैं क्या करती ? तू क्या जाने कि माता का हृदय कैसा होता है ?"

"माता जी, अब आपको चला जाना चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि मेरे पीछे आपको भी किसी मुसीबत में पड़ना पड़े। आप मेरी कोई चिन्ता न करें। मैं हर तरह से प्रसन्न हूँ।"

"तू तो सुखी होगा, परन्तु मैं अपना दुःख किसको सुनाऊं ? जो मैं तेरे पिता जी को कुछ कहती हूँ तो वे मुझे काटने को दौड़ते हैं—मैं कहाँ जाऊँ ?"

"माताजी, आप मेरे लिए उनसे कुछ भी न कहा करें। हम दोनों उनकी आदतों से भली-भाँति परिचित हैं। वे जिस बात पर एक बार अड़ जाते हैं उससे दुनिया की कोई भी शक्ति उन्हें विमुख नहीं कर सकती। अच्छा माता जी, आप जायं मुझे आशंका है कि कहीं आपको भी इस अपराध में उनके क्रोध का शिकार न होना पड़े।"

इस समय पार्वती घर से शेखर से मिलने के विचार से नहीं आई.

थी। उसे इस बात का भारी अफसोस था कि उसके पास अपने बेटे को देने के लिए कुछ भी नहीं था। केवल उसके गले में एक जड़ाऊ हार था, परन्तु उसको पुत्र को देना अच्छा नहीं था।

वह उठी, एक बार फिर शेखर का मस्तक चूमा और कहने लगी, बेटा, "तुझे खर्च के लिए रुपयों की ज़रूरत तो नहीं, कुछ भेजूँ ?"

"नहीं माता जी, यहाँ खर्च ही क्या है ? दस रुपयों में एक महीना बीत जाता है, मैं तो चालीस कमा लेता हूँ।" शेखर ने दृढ़ता-पूर्वक कहा।

पार्वती ने बहुत ही कहा, परन्तु शेखर ने एक न मानी।

जब वह दरवाज़े से बाहर निकलने लगी तो कामिनी ने फिर उस के चरण छुए। पार्वती को पता नहीं वह क्यों इतनी मधुर लगती थी, उसने कामिनी को छाती से लगाकर शेखर से पूछा, "यह कैसी प्यारी लड़की है, मुझे तो ऐसा लगता है मानो इससे मेरी जान-पहचान पूर्व जन्म की ही हो।"

शेखर उत्तर सोच ही रहा था कि पास खड़े रहमत ने कहा, "सेठानी जी, यह राधे की लड़की है जिसको तीन साल की सजा हुई है।"

"उसी राधे की ? उसकी गिरफ़्तारी का मुझे बड़ा दुःख है, पर मैं क्या करूँ ? इसकी माँ कहाँ है ?" पार्वती ने दयनीय भाव से पूछा।

"जी, माँ तो इसकी आपके अतिरिक्त कोई नहीं। इसको छोटी-सी छोड़कर वह मर गई थी।"रहमत ने करुणापूर्ण स्वर में कहा।

"ओह बेचारी ग़रीब बच्ची !" कहकर पार्वती ने फिर एक बार कामिनी को छाती से लगा लिया और उसका मस्तक चूमते हुए बोली, 'तो यह बेचारी इस कोठरी में अकेली रहती है क्या ?"

"माता जी, यह अकेली नहीं रहती, यह बुजुर्ग और इनकी घर वाली ही वास्तव में इसके माता-पिता हैं।" कहकर शेखर ने रहमत और अनवरी की कृपाओं का विस्तृत विवरण सुना दिया।

पास ही खड़ी अनवरी की ओर देखकर पार्वती बोली, "यह तो बड़ी भाग्यवती मालूम होती है, इसका तो मस्तक ही इस बात का प्रमाण है।" और अनवरी का हाथ पकड़कर वह कहने लगी, "बहन, तुम्हारे तो पैर धोकर पीने के योग्य हैं जो इस अभागी लड़की पर इतनी दया करती हो? परमात्मा तुम्हें प्रसन्न रखे।"

अनवरी ने हाथ जोड़कर कहा, "सेठानी जी, हम ग़रीब किस लायक हैं, हमारे भी कोई बच्चा नहीं है। हम तो इसे ही देख-देखकर जी रहे हैं। पिता इसका अवश्य कैद हो गया है परन्तु हमने यह इसे अनुभव नहीं होने दिया। हमारे पास तो इसके देने के लिए केवल प्रेम ही है। और हम इसे क्या दे सकते हैं?"

"मैं तुमसे बड़ी प्रसन्न हूँ। तुम इसी प्रकार इसको प्यार से रखो, मैं तुम्हें खूब इनाम दूँगी इस समय तो मेरे पास है नहीं।"

"है तो बहुत-कुछ सेठानी जी", साहस करके धड़कते हुए दिल से रहमत ने आगे बढ़कर प्रार्थना की, "जो हमें दे दें तो?"

हँसकर पार्वती ने कहा, "नहीं सचमुच मेरे पास इस समय कुछ भी नहीं। मैं घर से यहाँ नहीं आई हूँ" कहकर पार्वती ने उससे पीछा छुड़ाना चाहा। परन्तु वह धृष्टतापूर्वक फिर बोला, "सेठानीजी, हम तो वह माँगते हैं जो कुछ आपके पास है।"

पार्वती ने कुछ झिझक कर उसकी ओर देखा।

"जी, अपने इस राजकुमार शेखर को हमें दे दो।" उसने शेखर की ओर देखते हुए कहा।

"वह तो पहले से ही तुम्हारे काबू में है।" पार्वती ने कुछ दुःखित हृदय से कहा।

"परंतु हम तो इस लड़की के लिए माँगते हैं।" अनवरी ने कामिनी की ओर देखते हुए कहा। अनवरी का, शेखर का, रहमत का और कदाचित् कामिनी का भी चारों दिल एक ही स्वर-ताल में धड़क रहे थे।

पार्वती अनवरी की यह बात सुनकर स्तब्ध रह गई।

पहली निगाह में ही पार्वती को कामिनी ने मोहित कर लिया था। उसने अनुमान लगा लिया था कि दोनों प्रेम-तार में जकड़े हुए हैं। पार्वती को अपने उच्च परिवार का अभिमान रह-रहकर कचोट रहा था, परन्तु वह जानती थी कि उसकी 'इन्कारी' से कितने हृदय टूक-टूक हो जायेंगे। विशेष रूप से शेखर का, जिसको ऐसे समय अनेक संकटों का सामना करना पड़ रहा है। वह अपने कलेजे के टुकड़े शेखर को और दुखी या निराश नहीं करना चाहती थी, इसलिए उसके अन्दर एक उत्साहमयी भावना की उमंग उठी और उसने कामिनी को छाती से लगाकर कहा, "...जो तुम सबकी यह सलाह है तो यह आज से मेरी होगई।"

बाहर से आवाज आई, "सेठानी जी जिन्दाबाद।"

पार्वती को यह ध्यान ही नहीं था कि बाहर मज़दूरों का एक अच्छा ख़ासा मजमा इकट्ठा हो चुका है। एक और नारा लगाया गया, "मजदूरों का सम्राट् जिन्दाबाद।"

पार्वती की उक्त बात सुनते ही सबके चेहरे खिल गए। कामिनी ने गर्दन नीची कर ली। रहमत और अनवरी को तो मानो दुनिया का राज ही मिल गया था। शेखर को यह स्वप्न में भी खयाल नहीं था कि उसकी माँ का हृदय इतना विशाल है। उसका हृदय माँ के पुनीत चरणों में श्रद्धावनत हो गया।

"परन्तु मैंने अपनी बेटी को कुछ दिया तो है ही नहीं" कहते हुए पार्वती ने अपना हार निकाल कर कामिनी के गले में डाल दिया और बोली, "मेरी रानी के गले में यह हार कैसा अच्छा लगता है।"

कामिनी का कोमल हृदय इस हार के प्रेम-मिश्रित बोझ से दबा जा रहा था। वह उस समय अपने-आपे में नहीं थी।

पार्वती किसी अच्छी घड़ी में घर से निकली थी कि दुख-भरी भावना लेकर आई थी, और हर्षोत्फुल्ल मन से वह लौट रही थी।

जाते हुए उसने सबको सम्बोधित करते हुए कहा, "परन्तु अभी इस बात को गुप्त ही रखना।"

"बहुत अच्छा सेठानी जी, कहने को तो सबने कह दिया, परन्तु इतने बड़े हर्ष को अपने में समा लेने वाले विरले ही होते हैं और यहाँ इतने मजबूत दिल वाला शेखर और कामिनी के अतिरिक्त और कोई दूसरा न था।

जाती बार फिर एक बार पार्वती ने कामिनी को प्यार किया और वहाँ से चली गई।

: ३ :

"कल तुम कहाँ गई थीं?" सेठ जी ने कड़ककर पार्वती से पूछा।

"परमट गई थी, बा० कृष्णगोपाल सिनहा के यहाँ।" पार्वती ने सहमी हुई आवाज में कहा।

"बिलकुल झूठ, मुझे तो तुम धोखा नहीं दे सकतीं। क्या मैं बुद्धू हूँ। तुमसे कहा था कि उस नीच के मुँह न लगना।"

पार्वती की जबान तालू से जा लगी। सचमुच उसने पति की आज्ञा का उल्लंघन आज तक कभी नहीं किया था। वह सेठ जी के पैरों में गिरती हुई बोली, "मेरी भूल क्षमा करो। मुझसे रहा नहीं गया इसीलिए चली गई थी।"

"तुमसे रहा नहीं गया, यदि नहीं रहा गया तो फिर तुम्हारा यहाँ क्या काम है, वहीं रहना था?" सेठ जी ने मुँह बनाकर कहा।

"तुम्हारे अतिरिक्त मेरे लिए और कौन-सी जगह है? अबकी बार मुझे क्षमा करो, फिर कभी......" पार्वती ने डबडबाए हुए नेत्रों से आँसुओं का वेग रोकते हुए कहा।

एक जोर के थप्पड़ की आवाज़ ने पार्वती की बात भी पूरी न होने दी। वह सिर को दोनों हाथों से पकड़कर बैठ गई, उसे चक्कर आने लगे।

सेठ जी तेजी के साथ बोलते गए, "कुल-कलंकिनी, तुझे लज्जा नहीं आई, कुलटाओं की भाँति ग़रीबों के घरों में चली गई, देखने वाले क्या कहेंगे ?"

पार्वती सिसकती रही ।

"और दूसरी क्या करतूत कर आई हो तुम ?"

"क्या जी ?"

"कैसी अनजान बन रही हो, सब सच-सच बताओ ।"

पार्वती निरुत्तर थी ।

"बोलती नहीं ।" सेठजी ने एक ठोकर मारते हुए कहा, "किसकी लड़की के साथ जोड़ा मिला आई हो उस अपने सुपुत्र का ?"

पार्वती के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रहीं थीं ।

सेठ जी ने फिर सिंह की भाँति गरजकर पूछा, "और वह हार कहाँ है जिसे पहनकर गई थीं तुम ?"

वह जमीन में धँसती जा रही थी, कोई उत्तर न सूझ पड़ रहा था । सेठ जी का क्रोधानल और भी भड़कता जा रहा था ।

"जानती हो वह लड़की कौन है ? मेरे दुश्मन की लड़की, जिस बदमाश ने आज मुझे कहीं का भी नहीं छोड़ा···जिसने मेरे विरुद्ध एक बग़ावत मचा दी है······जो मेरे खून का प्यासा है । उसी की लड़की को घर में रखकर तुम मेरी छाती पर मूँग दलने का प्रयत्न कर रही हो ? तुम मेरे प्राण लेकर ही रहोगी । हे परमात्मा, क्यों नहीं मुझे दुनिया से उठा लेते । इन मुसीबतों से तो मेरी जान छूट जाय······ हा !···हे ईश्वर···!" कहते हुए वे पागलों की भाँति इधर-उधर फिरने लगे ।

पार्वती के लिए यह सब असह्य हो उठा था । वह पति की इस बेचैनी से स्वयं भी उद्विग्न हो उठी ।

वह आगे बढ़ी और सेठजी के चरण पकड़कर बोली, "मुझे उस समय अपनेपन का ध्यान नहीं था; मुझे पता नहीं उस समय मैंने

क्या-क्या कर डाला, जैसा आप कहेंगे करूँगी। ज़रा शान्ति करो।"

"शान्ति करूँ?" विषैली दृष्टि से उसकी ओर घूरते हुए सेठजी बोले, "मेरी अन्तरात्मा में आग लगाकर कहती हो कि शान्ति करूँ। आज तुमने मेरी रही-सही इज्जत को भी मिट्टी में मिला दिया। मेरे शत्रुओं का पक्ष लेकर आज तुमने मुझे कहीं का भी न छोड़ा, इस पर कहती हो शान्ति करूँ! अब मृत्यु की गोद में ही मैं शान्ति पा सकूँगा।"

पार्वती और भी गिड़गड़ाकर बोली, "मैंने अपनी जान से कोई ऐसा पाप नहीं किया, परन्तु यदि आप ऐसा ही समझते हैं तो मैं तो आपके पैरों को छूकर कसम खाती हूँ कि जो आप कहेंगे, वही करूँगी। एक बार तो मेरा अपराध क्षमा कर दीजिए!"

"समय बीत गया, अब कुछ भी बाकी नहीं रहा। आह, आज मेरे दुश्मन गली-कूँचों में खुशियाँ मना रहे होंगे कि हमने सेठजी पर विजय प्राप्त कर ली। यदि तुमको लड़की की ही तलाश थी तो क्या दुनिया खाली हो गई थी लड़कियों से। जो तुमने नीचों के साथ नाता कर लिया मेरे दुश्मनों से, मेरे खून के प्यासों से? हे ईश्वर, मेरी रक्षा करो।" कहते हुए सेठजी माथे को पकड़कर धड़ाम से समीप ही पड़े सोफे पर बैठ गए। उनकी अवस्था इस समय अत्यन्त दय-नीय थी।

पार्वती उनके पैरों में जा बैठी और गिड़गड़ाते हुए बोली, "एक मौका और दो, मुझे क्या मालूम था कि आप इससे इतने दुःखित होंगे। मुझे एक बार और मौका दो। मैं उस नाते को तोड़ दूँगी। मैं सब-कुछ कर दूँगी, जो आप कहेंगे।"

सेठजी चुप थे।

"मैं शेखर के प्रेम में यह काम कर बैठी। यदि ऐसा न करती तो शेखर का दिल टुकड़े-टुकड़े हो जाता। वह पहले से ही दुखी है, मुझे उस पर दया आ गई।"

सेठजी चुप रहे ।

"मेरे आराध्य, क्या एक बार क्षमा न करेंगे ? मैं अब भी सब कुछ ठीक कर लूँगी । जब मैंने अपने स्वामी के लिए अपने पुत्र को छोड़ दिया, तो बहू की क्या बिसात ! मेरे सर्वस्व तुम हो । बोलो··· बोलो ।"

"आप बोलते क्यों नहीं ? मैं आपके लिए जलती हुई अग्नि की ज्वाला का भी सहर्ष आलिंगन करने को तैयार हूं । एक बार बस मुझे क्षमा कर दीजिए । मैं आपके लिए सारे संसार को त्याग सकती हूँ ।"

इतनी देर की शान्ति अथवा सोच-विचार के बाद सेठजी ने उसकी ओर निगाह फेरी और अर्थ-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए बोले, "सच कह रही हो क्या ?"

पार्वती के मुख-मण्डल पर सन्तोष की आभा व्याप्त हो गई और वह बोली, "आपके सिर की सौगन्ध खाकर कहती हूँ, मैं कभी भी आपकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करूँगी ।"

"दिल से कह रही हो या ऊपर से ही ।" सेठजी ने ज़रा गम्भीरता पूर्वक प्रश्न किया ।

"सच्चे दिल से, परमात्मा को साक्षी करके ।" कहते हुए पार्वती ने आकाश की ओर देखा ।

"तो शेखर को उस कंगाल लड़की के पास से ले आओ और मेरे सामने उपस्थित करो उस नालायक को । मैं उसे पूरी-पूरी सजा देना चाहता हूँ ।"

"क्या बजा होगा" कहकर सेठजी ने दीवार पर लगी घड़ी की ओर देखा, "अभी तो आठ ही बजे हैं, कल इसी समय गई थी न ।"

"इससे ज़रा पहले ।"

"वह उस समय वहीं था ?"

"जी नहीं, कहीं बाहर गया हुआ था ।"

"अकेला ।"

"नहीं जी!"

"और कौन था दूसरा उसके साथ?"

पार्वती ने कोई उत्तर न दिया। सेठजी को इस चुप्पी से ही अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया। क्योंकि वह पहले भी बहुत-कुछ सुन चुके थे। बोले, "उसी लड़की के साथ गया होगा?"

पार्वती ने सकुचाते हुए कहा, "हाँ।"

"मैं कर लूँगा उसका भी प्रबन्ध। उस लड़की का इतना साहस! जाओ, तुम्हारे जाने से शायद वह आ जाय। कार में जाना जल्दी।"

"मैं अभी जाती हूं।" कहकर पार्वती कमरे से बाहर निकली।

सेठजी उसी प्रकार सोफे पर लेटे हुए लम्बे-लम्बे साँस लेते हुए छत पर निगाह जमाये हुए कुछ सोचने लगे।

: ४ :

"कामिनी जी, छोड़ो भी इन फूलों का आकर्षण। चलो चलें, अन्धेरा बढ़ता जाता है। वर्षा का भी भय है, कहीं भीग न जायं।"

रंग-बिरंगे फूलों से लदी बेलों के ऊपर बरसाती बादल प्रेमियों की भांति मँडरा रहे थे, शीतल-मन्द पवन के भीने-भीने झोंके संसार के प्राणियों तथा फूल-पौधों में एक नवीन जीवन का संचार कर रहे थे। सारा वातावरण ही मनमोहक था उस बगीचे का।

शेखर और कामिनी आज राधे को आगरे की गाड़ी पर चढ़ाकर लौटे थे। शाम हो चुकी थी। आज पिता से एक लम्बे अरसे के लिए अलग होने के कारण कामिनी का मन कुछ उदास था। इसीलिए उसकी तबियत बहलाने के लिए शेखर सैर कराने के लिए बाग में ले आया था।

इस समय एक गुलाब की घनी झाड़ी के समीप बैठी कामिनी एक सुन्दर गुलाब के फूल को हाथ में लिये हुए उसकी पंखुड़ियों को

बड़े ध्यान से देख रही थी। उसके पीछे खड़े शेखर ने जब उपर्युक्त वाक्य कहे, तो बिना पीछे देखे अपने हाथ के फूल की ओर देखती हुई कामिनी ने कहा, "तुम कितने प्रिय हो, कितने मादक हो, मधुर हो, अच्छे हो, मुझे अपने में क्यों नहीं लीन कर लेते ?"

फूल के साथ कामिनी को इस प्रकार बातें करते देखकर शेखर का मानस-उदधि प्यार के नशे में लहरें मार रहा था। वह कामिनी के कन्धे पर पीछे से हाथ रखकर बोला, "कामिनी जी, मालूम होता है कि तुम्हें ये फूल मुझसे भी अधिक प्रिय हैं ?"

कामिनी ने पीछे की ओर मुड़कर देखा। उसकी मृग-शावक-जैसी भोली आँखों में प्रेम की पुनीत भावना ज्योतित हो रही थी, उसका गुलाब-जैसा मुख-मण्डल, इस समय फूलों से भी अधिक शोभित हो रहा था। वह बोली, "इन फूलों में मेरे शेखर का निवास भी है।"

फूलों में खेली और पली कामिनी ने जब बाग में रंग-बिरंगे फूलों से लदे पौधों को झूमते हुए देखा तो एक क्षण के लिए वह पितृ-वियोग के असह्य दुःख को भूल गई। उसका अपनापन मानो आधा शेखर में और आधा उन फूलों की लहलहाती हुई बेलों में आत्मसात् हो गया था।

"कामिनी जी," उसके गोरे हाथ को पकड़कर अपनी ओर खींचते हुए शेखर ने कहा, "तुम फूलों से क्यों इतना प्रेम करती हो ? घर भी तुम्हें यही काम रहता है और बाहर भी।"

"मुझे इन सबमें अपने आराध्य की मोहक छवि प्रतिभासित मालूम देती है। मेरा मन कहता है कि मैं सदा फूलों में ही फिरती रहूँ। मेरे आगे-पीछे, ऊपर-नीचे फूलों के अम्बार लग जायं। मैं इनमें लीन हो जाऊँ, इनसे प्यार करूँ, इनसे मीठी-मीठी बातें करूँ, इनको मन लगाकर सींचूँ, सजाऊँ, सँवारूँ और इनमें ही लीन हो जाऊँ।"

"तो मैं अपनी देवी के लिए एक सुन्दर बाग लगवाऊँगा; जिसमें

इतने फूल होंगे कि मेरी रानी उनको सँभाल भी न सकेगी।" शेखर ने उसके सिर को चूमते हुए कहा।

"और मैं एक सुन्दर माला बनाकर अपने आराध्य देव की पूजा करूँगी।" उसकी आँखों में आँखें डालकर कामिनी ने कहा।

"नहीं मैं ही अपनी देवी की पूजा किया करूँगा।"

"परन्तु तुम्हें तो पूजा की विधि भी नहीं आती होगी।" अपने मादक नयनों को शेखर पर गड़ाते हुए उसने कहा।

"मै अपनी रानी से सीख लूँगा।"

"सीखने की दक्षिणा भी देनी होगी।"

"हाँ, दक्षिणा अवश्य दूँगा; परन्तु मैं तो दक्षिणा पेशगी ही दे चुका हूँ।"

"दक्षिणा कब और क्या दी थी!"

"अपना प्रेम-पूरित हृदय—उस दिन जब मैंने सर्वप्रथम तुम्हारी मोहक छवि का दर्शन किया था।"

"तो आपको पूजा करने की विधि बतलाऊँ!"

"अवश्य।"

कामिनी ने झुककर उसी समीप की झाड़ी से फूल तोड़कर शेखर के चरणों में रखकर अपना फूल-सा कोमल मस्तक उनमें झुका दिया। और बोली, "इस तरह।"

"अरे कामिनी जी, यह क्या!" चौंककर कहते हुए शेखर ने उसकी दोनों बाँहों को पकड़कर अपने हृदय से लगा लिया, साथ ही उस भूमि में पड़े हुए फूल को उठाकर चूमा और जेब में से रूमाल निकाल-कर उसमें लपेटकर फिर जेब में रख लिया।

"इसका आप क्या करेंगे!" कामिनी ने प्रेम से काँपते हुए अपने ओठों पर शेखर का हाथ रखते हुए पूछा।

"यह मेरी आराध्य देवी का पहला प्रसाद है। इसको मैं यावज्जीवन अपने पास रखूँगा।"

इसी समय शेखर की निगाह कामिनी के जम्पर पर पड़ी। वह उसमें से चमकते हुए मोतियों के हार की ओर देखकर बोला, "यह हार तो तुम्हें बहुत पसन्द आया होगा!"

"मुझे बहुत अच्छा लगा है, यह मेरी माताजी की पहली भेंट है। इसको मैं तुम्हारी जेब में पड़े हुए उस फूल से भी अधिक प्यार से रखूँगी।" कामिनी ने हार को हाथ में लेकर भली प्रकार देखते हुए कहा।

"परन्तु कामिनी जी, मज़दूरों के लिए यह चीज़ें···" वह कहते-कहते रुक गया।

"क्या, क्या, क्या कहा?" कामिनी ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

उसने बात को टालते हुए कहा, "कुछ नहीं, ग़रीब मज़दूरों की दुनिया में यह चीज़ें प्रकाश कर देती हैं, अंधकार से परिपूर्ण कोठरियों को प्रकाश से जगमगा देती हैं।"

"नहीं शेखर जी, आपका यह मतलब बिलकुल नहीं था, आप कुछ और ही कहना चाहते थे।" कामिनी ने विरोध प्रकाश करते हुए कहा।

"यही था।"

"यदि यही था तो आपने अपने उस वाक्य के प्रारम्भ में 'परन्तु' शब्द का प्रयोग क्यों किया था?"

कामिनी के चातुर्य की धाक वह मान गया था, वह इस सम्बन्ध में और कुछ नहीं कहना चाहता था।

इस समय थोड़ी-थोड़ी वर्षा की फुहारें पड़नी शुरू हो गई थीं। कामिनी के मुख पर पड़ रही बूँदें ऐसी मालूम होरही थीं, मानो उसके मुख पर मोतियों का शृंगार हो रहा हो।

बात को टालने के लहजे में शेखर कहने लगा, "चलो, अब चलें; पानी जोर का आ रहा है।"

सहमी हुई निगाह से उसकी ओर देखकर कामिनी बोली, "शेखरजी,

आज यहाँ से जाने को तबियत नहीं चाहता। यह मादक स्वप्न सब भंग हो जायगा। मुझे यहाँ अलौकिक सुख का अनुभव हो रहा है।"

"मेरी रानी, यह सपना नहीं है।" कामिनी के भीगे हुए हाथ को गरमाते हुए शेखर ने कहा।

"मुझे तो सपना ही लगता है।"

"क्यों ?"

"प्रायः मैं यह सोचती रहती हूँ कि मैं यह सब सपने में तो नहीं देख रही। सच समझो, कभी-कभी तो मैं इसे बिलकुल ही सपना समझने लगती हूँ।"

"यह तुम्हारा कोरा भ्रम है कामिनी जी !"

"क्या मेरा इतना बड़ा भाग्य हो सकता है ?"

"जब मुझ-जैसे अभागी का सौभाग्य हो सकता है, तो मेरी रानी का क्यों नहीं हो सकता ?"

"शेखरजी, सच बतलाना; क्या कभी निर्धन की बेटी रानी बनती हुई किसी ने देखी या सुनी है ?"

"और क्या कभी किसी ने घर से निकाले हुए अभागे को स्वर्ग का राज्य मिलते देखा है ?"

कामिनी निरुत्तर हो गई।

शेखर बराबर बोलता गया, "कभी-कभी असंभव बातें भी संभव हो जाती हैं। हमारे भाग्य का सितारा अवश्य चमकेगा। हमारा संसार अवश्य एक दिन स्वर्गमय हो जायगा। हमारे लाखों दुखी भाई सुखी जीवन व्यतीत करेंगे और उनकी सेवा में हम दोनों अपने तन-मन से लग जायँगे। हम विवाह के पवित्र बन्धन में बँधकर असीम स्वर्गीय सुख का उपभोग करेंगे।"

कामिनी का हृदय प्रेम से गद्-गद् हो गया। वह अपने को

स ैथा भूल गई। प्यार के अगाध सागर में वह डूबने-उतराने लगी।

"आज हमने बहुत देर कर दी है।" कहकर शेखर ने कामिनी की कलाई पकड़ ली और चल दिया। वर्षा जोर से होने लगी थी; कपड़े बिलकुल तर हो गए थे।

शेखर किसी ताँगे की तलाश में चलता-चलता इधर-उधर नज़र दौड़ाकर देख रहा था कि अचानक एक कार उसी ओर आती हुई दिखाई दी।

पहले तो उन्हें उसका ध्यान ही नहीं था, पर ज्यों ही वह कार उनके समीप आकर रुकी, शेखर ने तुरन्त मोटर का नम्बर पहचान लिया और वह यह कहता हुआ मोटर की ओर बढ़ा, "माताजी, आप इस समय···?"

पीछे-पीछे कामिनी भी आ पहुँची।

पार्वती पिछली सीट पर बैठी थी। खिड़की खोलकर उसने उन दोनों को अपने दायें-बायें बिठा लिया।

शेखर ने माँ की आँखों की ओर ध्यान से देखा, उनमें विषाद के आँसू वर्षा से भी अधिक वेग के साथ उमड़ रहे थे, पार्वती पर घोर निस्तब्धता छाई हुई थी।

"क्यों माताजी, आप आज ऐसी चुप क्यों हैं?"

पार्वती का कलेजा मुँह को आ रहा था, वह गला भर आने के कारण भली प्रकार बोल न सकी।

कामिनी बड़ी उत्सुकता और उत्साह के साथ कार की सीट से कमर लगाकर बैठी थी। जीवन में शायद पहली बार ही वह लचकते गद्दे वाली सीट और कार पर बैठी थी। अपार प्रसन्नता से उसका हृदय फूला न समा रहा था। परंतु ज्यों ही उसने पार्वती की मुखाकृति को देखा, उसकी सारी प्रसन्नता चिन्ता में परिवर्तित हो गई।

कार अभी तक खड़ी थी। ड्राइवर-हुक्म का इन्तज़ार कर रहा था वर्षा और भी तेज हो गई थी।

"माताजी, बोलती क्यों नहीं आप ?" शेखर ने उनको झकझोरते हुए कहा।

परन्तु पार्वती नहीं बोली, उसकी आँसुओं से डबडबाई हुई आँखें कभी सीधी ओर बैठी हुई कामिनी को देखती थीं और कभी शेखर की ओर। जो कुछ वह कहने के लिए आई थी, उसे वह प्रयत्न करने पर भी नहीं कह सकी। ओठों पर आकर ही वह बात रुक गई थी।

शेखर की आशंका बढ़ती ही जाती थी, उससे भी अधिक कामिनी घबरा गई थी।

शेखर ने फिर माता का कन्धा हिलाया। अबकी बार पार्वती ने हृदय को पत्थर बनाया और शेखर से कुछ कहने के लिए उसके ओठ फड़के, उसे उस समय मर्मान्तिक वेदना हो रही थी, "शेखर बेटा, तुझे तेरे पिता जी ने बुलाया है, उनकी तबियत बहुत ख़राब हो गई है।"

"तो इसके लिए माताजी इतने झंझट की क्या आवश्यकता थी ? मैंने आज तक कभी भी उनकी आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया।"

"परन्तु..." कहते-कहते वह मानो लज्जा के अथाह सागर में डूब गई।

"तो क्या और भी कोई बात है वह भी कहो ?"

पार्वती ने कुछ भी नहीं कहा।

"माताजी, आप बताती क्यों नहीं ?"

उधर कामिनी कातर दृष्टि से कभी इधर और कभी उधर देख रही थी। वह कुछ भी नहीं समझ पा रही थी इन बातों को।

"बेटा क्या बताऊँ...?" पार्वती ने बड़ी कठिनाई से कहा और वह चुप हो गई।

"कोई डर नहीं, बतला दो।" शेखर ने उत्साह पूर्वक कहा।

"तू नहीं सुन सकेगा बेटा ! और न मुझमें उस बात को कहने की हिम्मत है।" उसने हृदय-बेधी शब्दों में कहा।

शेखर मन-ही-मन सोच रहा था, ऐसी कौन-सी बात हो सकती है।

पार्वती चाहे असली बात को नहीं कह सकती थी, परन्तु जितना अधिक विलम्ब होता था, उतनी ही उसको कठिनाई प्रतीत हो रही थी। एक बार फिर बड़ी कठिनाई से अपने हृदय को कड़ा करके वह बोली—"तेरे पिता जी···तेरे पिता जी को पसन्द नहीं कि···"

शेखर सब-कुछ समझ गया और कामिनी उससे भी अधिक। दोनों का प्रेम-प्रासाद बालू की भीत के समान एक हलके-से झोंके ही में ढह गया।

कितने ही देर तक निस्तब्धता का साम्राज्य रहा। इस बात का प्रभाव ही कुछ ऐसा था कि सबमें मुर्दनी छा गई।

"माताजी, जरा विस्तार के साथ कहो।" शेखर ने दुःखित हृदय से कहा।

"और कुछ नहीं कह सकती शेखर अब मैं···"

अब इससे अधिक और कुछ पूछने की आवश्यकता भी न थी।

कामिनी का सारा उत्साह जाता रहा। वह अपने को निर्जीव-सा अनुभव करने लगी।

शेखर बड़े असमंजस में पड़ गया था। एक ओर पिताजी की भयानक आज्ञा और दूसरी ओर प्रेम के नये पौधे को तोड़कर फेंक देने की बात। एक बार तो शेखर का हृदय विह्वल हो उठा। कामिनी के प्रेम की धारा में वह आकण्ठ-निमग्न हो गया, परन्तु फिर वह जरा सँभला और कामिनी की ओर देखना चाहा, वह ऐसा न कर सका। उसकी सारी चेतना विलुप्त हो चुकी थी।

"बोल, बेटा!" पार्वती ने उसको सम्बोधित कर प्रश्न-भरी निगाह से देखा।

"अच्छा माताजी!" शेखर ने बड़ी कठिनाई से कहा।

"हवेली की ओर" पार्वती ने ड्राइवर को आज्ञा दी।

मोटर उड़ी जा रही थी, कामिनी का सर्वस्व छिना जा रहा था, शेखर का धैर्य खोता जा रहा था और पार्वती अपने किये पर बार-बार पछतावा कर रही थी।

हवेली से कोई पचास कदम इधर ही पार्वती ने ड्राइवर को मोटर रोकने के लिए कहा। मोटर खड़ी हो गई।

अब सबसे कठिन काम बाकी था, कामिनी से उतरने के लिए कौन कहे?

परन्तु यह कठिनाई उस समय अपने-आप दूर हो गई जब कामिनी खिड़की की ओर बढ़ी। पार्वती ने काँपते हुए हाथों से खिड़की खोल दी।

कामिनी नीचे उतर गई और उसने कार के स्टार्ट होने से पूर्व ही अपने गले का हार निकालकर पार्वती की गोदी में रख दिया।

अभी तक काफी अँधेरा हो चुका था। पार्वती और शेखर में से कोई भी उस अभागी के फूल-जैसे मुरझाये हुए चेहरे को न देख सका। और न ही मूसलाधार वर्षा के कारण उसकी आँसुओं की लड़ियों की ओर किसी की निगाह गई।

शेखर उस प्रेम की मूर्ति को अन्तिम प्यार देने के अवसर की प्रतीक्षा ही में रहा, परन्तु वह अब वहाँ नहीं थी।

कामिनी उस वर्षाकालीन भीषण अन्धकार में विलीन हो चुकी थी।

मोटर भर-भर करती हुई सेठ जी की कोठी की ओर चली गई।

: ५ :

प्रेम-मार्ग से अनभिज्ञ कामिनी को उसके आराध्य ने कैसे समय में बीच ही में छोड़ दिया। उसे अपने प्रेमपूर्ण आश्रय में लेकर आकाश की सैर कराई और अपनी उस स्वर्गोपम वसुन्धरा में जा

उतारा, जहाँ वह प्रेम के झूले में झूली अपनापन भूलकर। परन्तु अन्त में दैव-दुर्विपाक से झंझा का एक ऐसा प्रबल झोंका आया कि वह धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ी। वह अब ऐसी भूमि में थी जहाँ न उसका आराध्य, न वह स्वर्गोपम सुख और न आनन्दमयी झूलें की हिलोरें। कुछ भी उसका अभीष्ट नहीं था। निराशा का अंधकार मुँह बाये उसे काटने को दौड़ रहा था।

कामिनी मोटर से उतरी और कुछ दूर जाकर एक पेड़ के नीचे खड़ी हो गई। जितनी देर अंधेरे में उसको मोटर का प्रकाश दिखाई देता रहा, वह उधर निर्निमेष दृष्टि से देखती रही। फिर जितनी देर तक उसकी निगाह से ओझल हुई मोटर की आवाज़ आती रही वह उसी को ध्यान से कान लगाकर सुनती रही। थोड़ी देर में वह आवाज़ आनी भी बन्द हो गई और कामिनी खोई-सी, ठगी-सी खड़ी रह गई।

मूसलाधार वर्षा में कामिनी बहुत देर तक वहीं पेड़ के नीचे अंधेरे में खड़ी रही। उसे यह भी ध्यान नहीं था कि वह वर्षा में खड़ी भीग रही है। उसे अपनी वह बगीचे वाली बातें याद आ रही थीं, जब उसने शेखर से कहा था कि 'मुझे तो यह सब सपना-सा मालूम होता है।'

उसके पैर उठाये से भी नहीं उठते थे। उसे अब अपने जीवन से घोर निराशा हो गई थी, चारों ओर उसे अंधकार-ही-अंधकार दृष्टि-गोचर होता था। उसका दिल, दिमाग़ और शरीर निर्जीव, निकम्मा-सा हो रहा था। उसका अणु-अणु अन्धकार से आच्छादित-सा लगता था।

काफी देर तक वह निर्जीव एवं हतप्रभ-सी ज्यों-की-त्यों खड़ी रही। उसे अपनी स्थिति का किंचित् भी खयाल नहीं था। वह होश में होती हुई भी बेहोश थी, जीवित होती हुए भी निर्जीव थी; प्रस्तर-प्रतिमा की भाँति।

उसे इसी समय दूरी से उजाला-सा अपनी ओर आता हुआ दिखाई दिया, परन्तु थोड़ी देर बाद ही वह बुझ गया; फिर भी उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो कोई उसकी ओर बढ़ा चला आ रहा है। अंधेरे में कुछ न दिखाई देते हुए भी कीचड़ में चलने की 'चप्-चप् ड्' की ध्वनि उसे स्पष्टतया सुनाई दे रही थी। थोड़ी देर में कोई काली-सी मनुष्य-जैसी आकृति उसे दिखाई दी और वह छाया-मूर्ति आगे बढ़ती हुई उसके सामने आकर रुक गई। आवाज़ आई—
"कौन है ?"

वह मनुष्य कामिनी के बिलकुल पास आ गया और उसके मुख से निकल पड़ा—"कामो, मेरी बच्ची !"

कामिनी ने रहमत की आवाज़ पहचान ली। रहमत ने एक फटे हुए काले कम्बल की गाती बनाकर ओढ़ रखी थी और उसके हाथ में एक बुझी हुई लालटेन थी।

"बेटी, तू यहाँ क्यों खड़ी ? मैं तो तुझे ढूँढ़ता-ढूँढ़ता थक गया, चलो घर चलें।" रहमत ने भीगे हुए शरीर पर कम्बल को और ज़रा अच्छी तरह लपेटते हुए कहा।

बिना कुछ कहे-सुने कामिनी उसके साथ हवेली की तरफ चल पड़ी।

"बेटी, इतनी देर नहीं करनी थी।" रहमत ने कहा।

कामिनी चुप थी, मानो उसने रहमत की बात ही न सुनी हो।

रहमत ने समझा कि शायद ठण्ड लग जाने के कारण वह बोल नहीं सकती, उसने ज़रा और तेज़ी से कदम बढ़ाये।

हवेली आ गई थी। दरवाजे पर खड़ी हुई अनवरी राह देख रही थी। वर्षा से बचने के लिए उसने सिर पर बोरी का एक टुकड़ा डाल रखा था। कामिनी को रहमत के साथ आते हुए देखकर उसकी जान-में-जान आई। रहमत ने दूर से आवाज़ दी—"आ गई।"

पानी से भीगी हुई कामिनी को अनवरी ने हृदय से लगा लिया और कहा, "बेटी आज इतनी देर कैसे हो गई ?"

कामिनी चुप थी, उसने अनवरी की बात का कोई उत्तर नहीं दिया।

"जल्दी अन्दर ले चल इसे।" रहमत ने ज़रा क्रोध-भरे लहजे में कहा, "लड़की की जान पर बन रही है ठण्ड के कारण।"

रहमत बाहर खपरैल में बैठ गया और अनवरी ने कामिनी को अन्दर ले जाकर सबसे पहले उसके भीगे हुए कपड़े बदलवाये। फिर झटपट चूल्हे में आग सुलगाकर उसको उसके आगे बैठने के लिए बोरी बिछा दी और एक पुरानी लोई ढूँढ़कर उसे ओढ़ने को दे दी। कामिनी चूल्हे के आगे चुपचाप बैठ गई।

"बेटी, ठण्ड दूर हुई या नहीं ?" अन्दर आकर रहमत ने पूछा। और लालटेन जलाकर ताक में रख दी। लालटेन के धुँधले प्रकाश में उसने ज्यों ही कामिनी का चेहरा देखा, वह डर गया। कामिनी की आँखें ऐसी हो रही थीं, जैसी वर्षों के बीमार की होती हैं। उनमें ज़रा भी चमक दिखाई नहीं देती थी।

"देख तो इसे क्या हो गया है ?" उसने अनवरी से घबराकर कहा।

आवाज़ देकर, आँखों को दबाकर, हाथ-पैर हिलाकर अनवरी ने सारी कोशिश की, परंतु कामिनी अडिग थी बिलकुल निर्जीव पत्थर की मूर्ति की भाँति। उसको खाट पर डाल दिया गया। दोनों उसकी इस दशा को देखकर सहम गए। इससे तो उसकी आशंका और भी बढ़ गई, जब उन्होंने सोचा कि कामिनी अकेली कैसे आई है ? उसके साथ तो शेखर गया था, वह कहाँ रह गया ? क्यों वह इसे अकेले इस भयावनी, अँधेरी वर्षा की रात में इस प्रकार छोड़ गया। कई तरह के अनुमान लगा रहे थे।

अनवरी की निगाह जब कामिनी के गले पर पड़ी तो वह भौंचक्की

रह गई। उसके गले में वह हार नहीं था। सन्देह के निवारण के के लिए उसने और ज़रा अच्छी प्रकार से उसका गला टटोला, परन्तु हार नहीं था। वह बड़ी परेशान थी हार के कारण।

इतनी देर में कामिनी को कुछ होश हो आया; उसकी मूर्च्छा टूटी और वह अपनी स्थिति को भली प्रकार समझने लगी। अभी तक वह बिलकुल निर्लिप्त थी, किसी सुख-दुःख की चिन्ता उसे नहीं थी। परंतु धीरे-धीरे वह सब भावनाएँ उसके अन्दर प्रवेश कर गईं और उसमें कुछ परिवर्तन के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे।

अनवरी ने फिर व्यग्रतापूर्वक कामिनी से हार के विषय में पूछा। हार की बात याद आते ही उसे कोई भूली हुई कहानी याद आ गई। कामिनी चुप थी; मानो उसने यह शब्द बिलकुल न सुना हो।

"बेटी कामो, हार कहाँ गया ?" हार के सम्बन्ध में अनवरी ने फिर एक और प्रश्न कर दिया।

"वह चला गया।" नीची निगाह किये हुए कामिनी ने कहा।

"चला गया, कहाँ चला गया वह बेटी !" रहमत और अनवरी ने ज़रा और समीप आकर पूछा।

गम्भीर और वेदना-मिश्रित स्वर में कामिनी ने कहा, "जहाँ से आया था, वहीं चला गया !"

दोनों पति-पत्नी में इसी विषय को लेकर विभिन्न प्रकार की बातें होने लगीं। कामिनी चुप थी। कामिनी की यह चुप्पी उनकी इस उत्सुकता को और भी बढ़ा रही थी।

अन्त में कामिनी ने ज़रा सँभलकर स्वस्थ स्वर में कहा, "हाँ, वह उसने ही ले लिया, जिसने दिया था।"

वे दोनों कामिनी के स्वभाव से भली-भाँति परिचित थे। उसने आज तक इस प्रकार की शोक-मिश्रित गुरु-गम्भीर बातें कभी भी नहीं की थीं। उसके सारे ही कार्य बालिकोचित होते थे, परंतु कामिनी

की इन दो-चार बातों ने उनको ज़रा शंकित कर दिया। वे घबरा गए। उन्हें ऐसा प्रतीत होता था, कामिनी को मानो कोई असह्य वेदना अवश्य है, जिसके कारण वह भली प्रकार हँस-बोल भी नहीं सकती।

उसकी ये बातें सुनकर अनवरी चकित होकर बोली, "कौन ले गईं, क्या सेठानी जी ?"

कामिनी ने सिर हिलाकर उसका स्वीकारात्मक उत्तर दिया।

"क्यों ले गईं वह फिर ?"

"और अपने बेटे को भी अपने साथ ले गईं।" कामिनी की इस बात ने सारा रहस्योद्‌घाटन कर दिया।

"बाबूजी को भी ?" दोनों ने एक साथ वेदना-मिश्रित स्वर में आश्चर्य से प्रश्न किया।

कामिनी चुप थी।

वायु के प्रबल वेग के कारण जिस प्रकार लालटेन की बत्ती काँप रही थी, उसी प्रकार दो दिल भी बराबर काँप रहे थे, किसी अनागत आशंका के कारण ? कामिनी की स्थिति पर उ दोनों को भी भारी दुःख हुआ। कामिनी का मानो सर्वस्व ही छिन गया था।

इसके बाद कामिनी ने सेठानी जी के आ से लेकर उनके जाने तक की सारी बातें विस्तार के साथ बतलाईं। कामिनी से सारी बातें सुनकर दोनों के हृदय में विद्रोह की प्रबल अग्नि धधक उठी। दोनों ने आश्चर्य से दाँतों तले उँगली दबा ली। उन्हें इसकी स्वप्न में भी आशंका न थी। विधाता का विधान बड़ा ही विचित्र है, उसको विरला ही समझ पाता है।

◆

आठवाँ भाग

धर्म का रंग

: १ :

यह ख़बर मज़दूरों में बड़वानल की भाँति बात-की-बात में फैल गई कि शेखर मज़दूरों का साथ छोड़कर अपने घर चला गया है। जितने मुँह उतनी ही बातें थीं। कोई कुछ अनुमान लगाता, कोई कुछ। परन्तु बहुतों की यह निश्चित धारणा थी कि पिता ने पुत्र को खुफिया बनाकर मज़दूरों का भीतरी भेद लेने के लिए भेजा था। अपना स्वार्थ सिद्ध करके वह चलता बना। कई ने सोचा, यदि शेखर अपने किसी वैयक्तिक स्वार्थ के लिए आया था तो उसने इतने आडम्बर क्यों रचे? (मजदूर-संघ) यूनियन का स्वाँग रचकर वह किसलिए उसे अधूरा छोड़ गया? क्या यह सब केवल धोखा ही था?

दो-तीन दिन बीत गए। मज़दूरों में बेचैनी और निराशा बढ़ती गई हवेली का मैदान आदमियों से भरा रहता। लोग रहमत को ेर रहते कि उधर से असलियत का पता किसी प्रकार चलाओ, परन्तु हमत इस विषय में उनसे भी अधिक बे-ख़बर था। लोगों के लाख बार कहने पर भी वह शेखर के अचानक चले जाने की बात को शंका की दृष्टि से न देख सका। फिर भी शेखर के इस प्रकार चुपचाप बिना कुछ कहे-सुने अपने घर चले जाने की चिन्ता उसे सबसे अधिक थी। और उससे भी बढ़कर फिक्र उसे कामिनी की थी, जिसने उस रात से आज तक एक शब्द भी मुँह से नहीं निकला था। इन तीन दिनों में उसका रंग ऐसा पीला पड़ गया था, जैसे कई वर्षों के तपेदिक

के मरीज़ का होता है। अनवरी उसे दिलासा दे-देकर थक गई, परन्तु वह पत्थर की भाँति निश्चेष्ट क्रिया-विहीन निर्जीव-सी रहने लगी।

रहमत का ध्यान दोनों ओर बटा हुआ था, इधर कामिनी के स्वास्थ्य की चिन्ता और उधर मजूदरों के भविष्य का ध्यान उसे बेचैन किये हुए हैं। आज रहमत के बुलाए हुए बहुत सारे मजदूर हवेली में जमा हुए हैं। सब घबराए हुए एक-दूसरे से सवाल कर रहे हैं, परन्तु किसी के पास से कोई भी सन्तोष-जनक उत्तर नहीं मिल पाता।

थोड़ी देर बाद रहमत ने जाकर हवेली का फाटक बन्द कर दिया और सबको सम्बोधित करके बोला, "भाइयो, घबराते क्यों हो? आओ बैठकर कुछ सोचें।" सारे मजदूर उसके इशारे से चल पड़े और हवेली की एक कोठरी के द्वार पर बैठ गए।

रहमत ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा, "यदि बाबूजी चले गए तो क्या हुआ? हम सब अपने आंदोलन को पू वत् चलायेंगे। आप लोग हिम्मत क्यों छोड़ बैठे?"

बीच में एक बोला, "हम लोग क्या करेंगे? हममें से ऐसा कौन है जो कुछ भी जानता हो! सारे तो 'काला अक्षर भैंस बराबर' के उपासक हैं। कहीं काने की कमान से भी शेर शिकार हुआ करते हैं?"

"सब-कुछ हो सकता है यदि हमारा संगठन कायम रहे। हम आप कमेटी को चलायेंगे, उसके लिए चन्दा इकट्ठा करेंगे।" रहमत ने गम्भीरतापूर्वक उनको सान्त्वना देते हुए कहा।

उनमें से एक बोला, "भाई, यह तो सब-कुछ कर लोगे, परन्तु यह भी सोचा कि 'म्याऊँ का ठौर कौन पकड़ेगा?' बिना पढ़े-लिखे व्यक्तियों से कहीं कमेटियाँ चला करती हैं? यदि आज ही मालिकों से चार बातें करनी पड़ जायं तो कौन-सा है जो हममें से वहाँ

जायगा ? हम-तुमको तो वे यों ही बातों में उड़ा देंगे। वह शेखर बाबू ही थे जो सबकी जबान बन्द कर आए थे।"

बीच में से एक और आवाज़ आई, "परन्तु किसी को यह भी मालूम है कि शेखर बाबू चले क्यों गए ?"

"उनकी माता जी आई थीं, वे ही उन्हें अपने साथ ले गई हैं।" रहमत ने बात ही ख़त्म कर दी।

"तो यों ही पहाड़ों-जैसे स्वप्न लिये फिरता था कि—मैं यह करूँगा, मैं वह करूँगा।" एक मजदूर ने कहा।

"पता नहीं, वह अपनी माँ के प्रेम के कारण गया है या और ही कोई बात है। अब असली भेद का किसी को क्या पता। अरे बाबा, इन बड़े आदमियों की बातों को कौन समझ पाया है ?" एक और आवाज़ आई।

"तुम तो उस ग़रीब को वैसे ही बुराई दे रहे हो। भाई, यह तो बताओ कि वह तुम्हारा क्या ले गया ? उसने तुम्हारी कुछ-न-कुछ भलाई ही की थी ?" एक अधेड़ मज़दूर ने गम्भीरतापूर्वक कहा।

"भलाई तो हम तब समझते जब हमें कहीं ठिकाने लगा देता। अब तो धोबी के कुत्ते वाला हमारा हिसाब है; न घर के रहे, न घाट के। उसके कारण मालिक हमारे पीछे-पीछे घूमते थे, जिस दिन से वह गया है फिर अकड़े हुए बैठे हैं।"

"अच्छा, बताओ अब क्या किया जाय ? बाबूजी की तो आने की कोई उम्मीद नहीं है ?" एक मजदूर ने प्रश्नोत्तर का सिलसिला समाप्त करते हुए कहा।

"परन्तु एक बार हम बाबूजी से मिल क्यों न लें ?" रहमत ने जरा गम्भीरतापूर्वक कहा।

"अब उनसे मिलना भी मुश्किल है। उनकी कोठी पर जाकर कौन टक्करें मारेगा ? सेठ जी तो कोठी के आस-पास चिड़िया को भी नहीं फटकने देते।" एक मजदूर ने कहा।

"तुम कहो तो, चला तो मैं जाऊँगा।" रहमत ने कहा।

"पिछले घाव भर गए मालूम होते हैं सेठजी के हंटरों की चोट के।" एक साथी ने जरा व्यंग्य कसते हुए उसकी बात का उत्तर दिया।

"हाँ-हाँ, रहमत को पहले अकेला हो आने दो। पता तो लग जायगा कि बाबू जी कितने पानी में हैं?" उन्होंने एक स्वर में कहा।

"अच्छा, मैं ही जाऊँगा।" रहमत ने स्वीकृति दे दी।

"एक बात और सुनी है।" पीछे बैठे हुए एक मजदूर ने व्यग्रता-पूर्वक कहा।

"क्या?" सबकी निगाहें उसकी ओर घूम गईं।

"इस हवेली के विषय में शहर में बड़ी हलचल मची हुई है।"

"हवेली के विषय में? किस तरह की?" एक ने पूछा।

"सुना है हिन्दू-मुस्लिम-दंगा होने वाला है।" उसने जरा दबी हुई आवाज़ में कहा।

"यह ख़बर तो कल-परसों से शहर में बहुत जोरों से फैली हुई है। जहाँ-तहाँ हिन्दू कहते फिरते हैं कि सेठ भानामल की हवेली में एक हिन्दू लड़की को मुसलमान बनाया गया है, और मुसलमान कहते फिरते हैं कि मुसलमान हो चुकी लड़की को हिन्दू फिर अपने में मिलाना चाहते हैं।"

भय के कारण रहमत की टाँगें लड़खड़ा गईं, वह भी कहीं से पहले ही यह बात सुन आया था।"

"किस बेईमान ने यह झूठी खबर उड़ाई है, राधे की लड़की हम सबकी लड़की है। बेचारा रहमत और इसकी स्त्री उस पर मन-प्राण न्यौछावर करने को तैयार रहते हैं। हवेली में जैसे चार-पाँच घर हिन्दुओं के हैं और सारे मुसलमानों के हैं, परन्तु सब ही भाई-बहन की भाँति रहते हैं। हिन्दू और मुसलमान के भेद का भाव कभी किसी के मन में भूलकर भी नहीं आता। ऐसी-ऐसी बातें कुछ स्वार्थी गुण्डे

उड़ाते फिरते हैं।" रहमत के गाँव के एक मुसलमान ने आवेश में आकर इतना भाषण दे डाला।

रहमत बोला, "भाइयो, मेरा उस बेचारी पर क्या अधिकार है? हम तो ममता के मारे हुए हैं। वैसे यदि हिन्दुओं को मेरे ऊपर कोई शक हो तो उसे ले जायं। हम अपनी छाती पर पत्थर रखकर बैठ जायंगे।" रहमत की आवाज़ आँसुओं के आवेग से भारी हो गई थी वह आगे कुछ न कह सका और उसने पीछे को मुँह करके अपने आँसू पोंछ लिये।

"तुमसे उसे छीन ले जाने की हिम्मत किसमें है? यदि तुम दोनों उसका लालन-पालन भली प्रकार न करते तो आज उस निस्सहाय लड़की की हड्डियाँ भी ढूँढे से न मिलतीं। तुमसे बढ़कर उसका हितैषी और कौन मिल सकता है?" एक हिन्दू मज़दूर ने आगे बढ़कर कहा।

एक मुसलमान बोला, "देखो, कुदरत का अन्धेर। मुसलमानों को भी पता नहीं क्या हो गया है जो कहते फिरते हैं कि वह पहले मुसलमान बनाई गई थी; हिन्दू उसे दुबारा अपने में मिलाना चाहते हैं। है न 'मुदई सुस्त गवाह चुस्त' वाली बात किसी को स्वप्न में भी इसकी आशंका नहीं और ये मौलवी तथा पण्डित अपनी बातें यों ही गढ़ते रहते हैं। अल्लाह इन सबको इसका मजा चखायं। हम तो कुछ और सोच ही रहे थे कि शेखर बाबू से राधे की उस लड़की का विवाह होगा। हिन्दू और मुसलमान इसमें समान भाव से शामिल होंगे और लोग इस अद्‌भुत विवाह को देखकर आश्चर्यान्वित होंगे, परन्तु..."

तभी तो अँग्रेज मुट्ठी-भर होते हुए भी सात समुद्र पार से आकर हमारे ऊपर राज्य कर रहे थे।"

"भई, यदि सच पूछो तो अँग्रेजों का इसमें कोई कसूर नहीं था,

बेड़ा तो यहाँ अपनों ही का डूब रहा था, जो बैठे-बिठाए झूठ के पहाड़ खड़े करते रहते थे।"

"और वैसे ही अक्ल के अन्धे हैं सुनने वाले। न आगा देखते हैं और न पीछा, और छुरियाँ तथा कुल्हाड़ियाँ लेकर चल पड़ते हैं।"

रहमत ने सब मजदूरों को सम्बोधित करते हुए कहा, "भाइयो, यह बात तो ठीक है। यदि हम सबका इत्तिफाक रहा तो किसी को देखने की भी इस ओर हिम्मत नहीं हो सकती। और यदि आप लोग तितर-बितर हो गए तो हमारा सर्वनाश हो जायगा।"

"यदि कोई हमारे आगे चलने वाला हो तो हम मरते दम तक भी इकट्ठे रहेंगे।"

"हमें कोई अपना मुखिया बना लेना चाहिए। बिना अफसर के फौज कामयाब नहीं होती।"

"मेरी सलाह है कि रहमत को मुखिया बनाया जाय।"

"जरूर, जरूर? रहमत को ही बनया जाय!" एक साथ कई आवाज़ें आईं।

रहमत ने इस सेवा को सहर्ष स्वीकार कर लिया और उसके जिम्मे सबसे पहला काम शेखर से मिलने का सौंपा गया।

कई ज़रूरी बातों पर विचार करने के बाद रहमत ने वह सभा समाप्त करने का एलान कर दिया। सब मज़दूर अपने-अपने घरों को चले गए।

: २ :

शेखर को घर आए आज तीन दिन हो चुके हैं, परन्तु सेठजी ने अब तक भी उससे बातें नहीं कीं। उनके मोह का स्रोत उमड़ता है, परन्तु क्रोध की भारी शिला से टकराकर वह फिर पीछे मुड़ जाता है। दिल कहता है, बेटे से ही तेरा संसार है, पर मस्तिष्क गवाही नहीं देता। मस्तिष्क दूसरी ओर खींचता है और दिल दूसरी ओर। दोनों में

भयानक संघर्ष मचा हुआ है। उनके मन से आवाज आती है, नहीं रहेगा न रहे, इज्ज़त को मिट्टी में मिला दिया है उसने तो। पिता के विरुद्ध बगावत खड़ी करने वाला बेटा, बेटा नहीं, दुश्मन है।

इस समय वे अपने कमरे में उद्विग्न होकर इधर-उधर घूम रहे हैं; सहसा उनका हाथ 'काल बैल' के स्विच पर पड़ गया। 'टन-टन' की आवाज़ सुनकर नौकर अन्दर से दौड़ा हुआ आया, परन्तु "कुछ नहीं, जाओ" कहकर उसे वापिस भेज दिया। ऐसी ही उधेड़-बुन में तीन दिन बीत गए।

इधर जब से शेखर ने कोठी में पैर रखा है, उसको यह अनुभव हो रहा है कि मानो किसी ने उसको स्वर्ग से धकेलकर नरक में डाल दिया है। यह वही घर था जिसमें उसने खेलते-कूदते माता-पिता के प्यार भरे शब्दों के झूले पर झूलते हुए अपने जीवन के बीस वर्ष व्यतीत किये थे, परन्तु आज इस घर की एक-एक चीज़ मानो उसे काटने को दौड़ रही थी। कहाँ वह ग़रीब मज़दूरों की दुनिया, तंग घरों और खुले दिल वालों की बस्ती और कहाँ यह तंग दिल और खुले मकान? कहाँ वह उदार वातावरण और कहाँ यह जी-हुजूर और खुशामदी नौकरों से घिरा सारा-का-सारा समाज।

और सबसे बड़ी सम्पत्ति वह जो खो आया था वह थी कामिनी; जिसने उसके मानस में एक अपूर्व उत्साह तरंगित कर दिया था। उसकी कोकिल-जैसी मधुर स्वर-लहरी, फूल-जैसा कोमल एवं मनमोहक मुख और वन-देवियों-जैसी प्रभावशाली चितवन एक पल के लिए भी उससे दूर नहीं हो सकती। वह अपने-आपको कुछ खोया-खोया-सा महसूस करता था। उसका हृदय कामिनी की याद में अत्यन्त उद्विग्न हो रहा था। साथ ही उसे अपने उन साथियों की याद सता रही थी जिनकी नौका वह बिना पतवार मँझधार में छोड़ आया था। वह रह-रहकर सोचता था, मैं क्यों चला आया। यदि आना ही था तो उन बेचारों के भाग्य की डोर को अपने हाथ में क्यों लिया था और उस

अनजान भोली कामिनी को प्रेम के पर्वत के उत्तुंग शिखर पर चढ़ाकर क्यों धक्का दे दिया। परन्तु जिसकी आज्ञा का अनुगामी होकर मैं उस स्वर्गोपम संसार को छोड़कर परसों आया हूँ, उसने उसको एक बार भी अपने मुँह से नहीं बुलाया। बस मैं और अधिक नहीं सहन कर सकता; अब मेरे लिए सब असह्य है।

पार्वती उसको सान्त्वना देने के लिए अनेक प्रयत्न करती। उसके ध्यान को बँटाने के लिए बहुत-कुछ इधर-उधर की बातें करती, परन्तु शेखर इस तरह निश्चेष्ट पड़ा रहता, मानो उसने कुछ सुना ही न हो। इन तीनों दिनों में वह घर से बाहर भी नहीं निकला। उसका मन खेलने, पढ़ने, खाने आदि किसी में भी नहीं लगता था। रह-रह-कर उसके अन्तरात्मा से यह आवाज़ आती तू क्या किसी का कैदी है, दास है? तू तो स्वतन्त्र है अपनी इच्छानुसार सब-कुछ कर सकता है, तुझे कोई नहीं रोक सकता।

परन्तु जब उसे पिता जी की दयनीय अवस्था और माता जी के मोह का खयाल आता तो वह मन की सब इच्छाओं को, सारी खुशी और आशाओं को मसोसकर चुपचाप रहने का प्रयत्न करता।

मेरे साथी क्या कहते होंगे, कायर निकला। मेरी कामिनी क्या सोचती होगी, स्वार्थी निकला! परन्तु मैं? मैं न कायर हूँ और न स्वार्थी। मैं तो एक निर्दयी पिता का आज्ञाकारी बेटा हूँ। नहीं, नहीं, मैं आज्ञाकारी भी तो नहीं रहा, तो मैं क्या हूँ? मैंने तो अपने दोनों संसार नष्ट कर लिये। उधर मज़दूर भी मुझे लानत-मलामत दे रहे होंगे और इधर पिता नाराज़ हैं ही।

इन्हीं विचारों में शेखर ने आज तीसरी रात भी बिता दी। नींद तो उसके लिए सपना हो गई थी, जागरण उसके लिए भयंकर संकट से कम नहीं लगता था। वह रह-रहकर चौंककर कह उठता—"मैं क्यों आगया, मैं अपने उस स्वर्गोपम संसार को क्यों छोड़ आया! अब उसके साथी क्या कर रहे होंगे, उसे इसका कुछ पता नहीं था। कामिनी

क्या कर रही होगी ? दुनिया मुझे क्या कहती होगी। उसको कुछ भी मालूम नहीं था। सोचने, घबराने और पछताने के अतिरिक्त उसने इन तीन दिनों में कुछ भी नहीं किया था। पार्वती को छोड़कर वह किसी दूसरे से बोला भी नहीं था।

पिताजी से मिलने का उसके मन में कई बार विचार आया, परन्तु बिना उनके बुलाए जाने का साहस उसमें न था। वह स्वाभिमानी था, निरादर से डरता था।

इसी बेचैनी में वह रात भी कट गई। सबेरा हो गया; परन्तु शेखर की आँखों में नींद नहीं थी। खाट पर पड़ा हुआ वह सोच रहा था, कुछ भी हो सूरज निकलने पर जरूर हवेली में जाऊँगा और निराशा की नदी में डूबते-उतराते मजदूरों को सहारा दूँगा। खोये हुए प्यार की मनोरम घाटी में इधर-उधर भटकती कामिनी को दिलासा दूँगा, पर किस मुँह से ? वह इन्हीं गम्भीर विचारों में तल्लीन था कि आवाज़ आई, "शेखर, तूने आज फिर मसहरी उतार दी, बिना बिस्तरा बिछाये ही खाली खाट पर सोया हुआ है।"

माता के आदर के लिए वह उठकर बैठ गया। प्रातःकालीन वायु धीरे-धीरे चल रही थी, पक्षी मधुर कलरव कर रहे थे।

"शेखर, बेटा तू आज भी सारी रात नहीं सोया।" पार्वती ने वात्सल्यमयी वाणी में कहा।

"और आप भी तो नहीं सोईं।" शेखर ने उनके विषण्ण मुख की ओर ताकते हुए कहा।

"और तेरे पिता जी भी नहीं सोये।" पार्वती ने एक की और वृद्धि कर दी।

"क्यों, वे क्यों नहीं सोये ? क्या तबियत खराब हो गई थी ?" शेखर ने चिन्तित होकर पूछा।

"उनकी तबियत ठीक ही कब थी ? मेरा-उनका झगड़ा होता रहा!" पार्वती ने धीमी आवाज में कहा।

"क्या सारी रात, किस बात का ?" शेखर ने पूछा।

"वही बतलायेंगे, तुझे बुलाया है।" पार्वती ने कहा।

"ऐसी क्या बात है ?" कहता हुआ शेखर पिता के कमरे की ओर चल दिया और मन-ही-मन कहा—शुक्र है जो बुला लिया। बाहर अभी अँधेरा ही था।

उसका दिल बड़ी तेज़ी से धड़क रहा था।

कमरे में पहुँचकर बड़ी कठिनाई से उसने दबी हुई आवाज़ में कहा, "पिताजी, नमस्ते !"

सेठजी पलंग के सहारे बैठे हुए सिगार पी रहे थे। शेखर ने एक बार उनकी ओर देखा, चेहरा उतरा हुआ, आँखें धँसी हुई, रंग उड़ा हुआ और सारा ढंग विचित्र।

वह देखकर हतप्रभ-सा खड़ा रहा।

सेठजी ने 'नमस्ते' का उत्तर नहीं दिया।

शेखर किसी अनागत भय की आशंका से पानी-पानी हो रहा था। उसने फिर से साहस बटोरकर पूछा, "पिताजी, आपने मुझे बुलाया है।"

"बुलाया है" सेठजी ने रूखी आवाज़ में कहा।

"आज्ञा दीजिये।"

"अभी और कुछ कसर-बाकी है, क्या ?"

"किस बात की पिताजी !"

"मेरी छाती में छुरी भोंकने की !"

शेखर निरुत्तर हो गया।

"यदि कुछ कमी हो तो वह भी पूरी कर लेनी थी।" सेठजी का गला भर आया था, इस कारण वे और कुछ आगे न कह सके।

शेखर अभी तक चुप, स्तब्ध, अडिग, अचल खड़ा था।

"शेखर, शेखर ! काश मैं निःसन्तान होता ! मेरे पीछे नाम लेने

वाला कोई न होता। मेरे वंश की बेल इससे आगे न चलती।" सेठ जी की आँखों से आँसुओं की धारा बड़े वेग से बह रही थी।

शेखर की खामोशी फिर भी भंग न हुई।

"दुनिया सन्तान चाहती है, इसलिए कि वह उसका मुख उज्ज्वल करे, मगर कमबख़्त, तूने तो मेरी सारी इज्ज़त मिट्टी में मिला दी।"

अब शेखर में चेतना की एक अपूर्व लहर दौड़ गई और उसने निगाह धीरे-धीरे ज़मीन पर से हटाई और बोला, "पिता जी, मेरा......"

"बस, बस! पिता शब्द को कलंकित न कर, यह शब्द तेरे मुँह से अच्छा नहीं लगता।"

"नहीं पिताजी, आप मेरे साथ न्याय नहीं कर रहे हैं।" शेखर की आवाज़ तेज होती जा रही थी।

"शेखर, तू मुझे असमय में मत मार। यह याद रख कि मेरा शाप तुझे कभी निश्चिन्त नहीं बैठने देगा।"

उनकी अवस्था देखने योग्य थी।

पुत्र का हृदय चीत्कार कर रहा था, "पिताजी, अब मैं तुम्हारा दुःख और नहीं देख सकता।"

"मेरा दुःख तू और अधिक नहीं देख सकता, इसीलिए मेरे जीवन को समाप्त करने-पर तुला है, क्यों?"

"पिताजी, मेरे हृदय को पहचानने का प्रयत्न करो।"

"पिता के खून में इसे और रँग ले, तब देखूँगा।"

"मेरे हृदय में आज भी आपके प्रति उतनी ही श्रद्धा तथा प्रेम है जितना पहले था।"

"परन्तु उपयोग हो रहा है उसका नीच व्यक्तियों के पैरों पर, मेरे दुश्मनों के दरवाजों पर।" सेठजी की आँखों से क्रोध की चिनगारियाँ निकल रही थीं।

"आह, पिताजी" कहता हुआ शेखर सेठजी के पैरों पर गिर पड़ा,

आँसुओं की धारा अविरल वेग से बह-बहकर सेठजी के चरणों को धो रही थी।

"शेखर, उठकर ज़रा बात सुन !" पिता ने पुत्र को कुछ देर के लिए बैठने को कहा।

"कहिये पिताजी" कहता हुआ वह फिर अपनी जगह पर बैठ गया।

"शेखर, तू ही बता, क्या तेरे ऊपर अब भी मेरा कोई अधिकार है ?" सेठजी ने शेखर से पूछा।

"शेखर ही नहीं, बल्कि मेरी आत्मा पर भी।" शेखर ने पितृ-प्रेम में आकण्ठ निमग्न होकर कहा।

"तो मैं तुमसे कुछ माँगता हूँ।" सेठजी ने धीरे से कहा।

"मैं कुछ भी छिपाकर नहीं रखूँगा।" उत्साहपूर्वक शेखर ने कहा।

"मैं तुमसे कुछ माँगना चाहता हूँ।" उन्होंने उक्त बात दुहराई।

"मैं प्राण-त्याग करने में भी नहीं झिझकूँगा।"

"मुझे प्राण की नहीं, प्रण की आवश्यकता है। बोलो दोगे।" सेठजी ने दृढ़तापूर्वक कहा।

" 'प्रण' और 'प्राण' दोनों उपस्थित हैं आपके लिए पिताजी !"

"तो मैं जो बातें कहूँगा, अभी इसी क्षण से छोड़नी पड़ेंगी, बोल मंजूर हैं तुझे ?"

"मुझे स्वीकार हैं पिताजी, कहो।"

"एक मज़दूरों का साथ और दूसरा उस राधे की लड़की से सम्बन्ध। जब तक मैं जीवित हूँ, तब तक इन दोनों के साथ तेरा कोई सरोकार नहीं होगा। मंजूर है तुझे ?"

शेखर सहम गया !

"बोल, क्या कहता है ?"

शेखर का मस्तिष्क चकरा रहा था।

"बस यही दावा था पितृ-भक्ति का !"

शेखर पसीने से तर-बतर हो रहा था।

"दुष्ट लड़के, कह दे कि मैं मजबूर हूँ।"

वह चुपचाप नीची निगाह किये बैठा था।

"चक्कर क्यों आ गया तुझे, कह दे पिता का मुझ पर कोई अधिकार नहीं है, फिर तू स्वतन्त्र है।"

उसका शरीर निर्जीव लकड़ी के समान कठोर और आँखें निश्चल थीं।

"बोल, बोल, बस एक ही शब्द में झगड़ा खत्म है। बता मंजूर है या नहीं ?"

"मंजूर है।" शेखर के मुँह से बलात् एक ठण्डी आह के साथ यह शब्द निकल गए और उसके बाद वह वहाँ न ठहर सका। उसके दिल में अरमानों की होली जल रही थी।

सेठजी ने पीछे से आवाज़ देकर कहा, "तेरे विवाह की बातें हो चुकी हैं—रायसाहब लाला परशुराम की लड़की से, परसों सगाई की रस्म होगी।"

शेखर की आँखों के आगे अन्धकार और दिल में हाहाकार बढ़ता जा रहा था। अपने कमरे में पहुँचकर उसकी तबियत और भी बेचैन हो गई। कितनी ही देर बाद वह पलंग पर पड़ा अपनी अवस्था को ठीक करने का प्रयत्न करता रहा। परन्तु घबराहट और परेशानी बढ़ती ही जा रही थी।

दिन चढ़ आया और सूरज की धूप समस्त पृथ्वीतल पर छा गई। जब कमरे में उसके लिए बैठना कठिन हो गया तो कोठी से बाहर निकल आया।

वह कोठी के सामने 'लान' पर टहल रहा था कि डाकिये ने सामने आकर सलाम किया और वह एक चिट्ठी और अखबार उसको देकर चला गया। शेखर अपने ध्यान में इतना लीन था कि बिना

पता पड़े उसने लिफाफा खोलकर पढ़ना शुरू कर दिया। कुछ लाइनें तो वह यों ही पढ़ गया, परन्तु दो-एक पैरे पढ़ने के बाद उसके विषय ने उसका मन अपनी ओर आकर्षित कर लिया। उसने पूरा मतलब समझने के लिए चिट्ठी फिर से पढ़नी शुरू की और ध्यानावस्थित हो वह उसी में लीन हो गया। चिट्ठी हिन्दू-सुधारक-सभा की ओर से सेठ जी के नाम आई थी। उसमें लिखा था—

"श्रीमान् रायबहादुर सेठ मानामलजी,

मिल-ओनर, कानपुर।

दयालु,

आपके कथनानुसार मैंने मामले को दाबे रखा था, परन्तु अब आपकी आज्ञा होते ही मैंने इस घटना का प्रचार आरम्भ कर दिया है। इसके विषय में भाषणों की आयोजना के अतिरिक्त समाचार-पत्रों में भी ज़ोरदार प्रचार प्रारम्भ कर दिया है। आपका यह कहना सर्वथा सत्य है कि हमारे इस आयोजन से आपके शत्रु (राधे) की इज़्ज़त को मिट्टी में मिलाया जा सकेगा। दूसरा व्यक्ति (रहमत) लड़की को बलात् मुसलमान बनाने का अपराधी प्रमाणित होगा।

आपकी यह योजना अत्युत्तम है। साथ ही इस सम्बन्ध में प्रचार करते हुए हम देश की राजनीतिक संस्थाओं को भी बहुत हानि पहुँचा सकेंगे और अपने धर्म तथा संस्कृति की जो सेवा हो जायगी, वह मुफ़्त में ही। पिछले दो-तीन पत्रों में मैं इस सम्बन्ध में विस्तार से लिख चुका हूँ। अबकी बार का यह पत्र तो सारा ही इस विषय में है। इसके प्रभाव के कारण हिन्दुओं का धार्मिक जोश दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। यों तो दूसरी ओर मुसलमान उपद्रव मचा रहे हैं, पर हमें डरने की आवश्यकता नहीं।

एक बात ध्यान देने योग्य है। जब से हमने इस सम्बन्ध में प्रचार प्रारम्भ किया है, मुसलमान तरह-तरह की ऊल-जलूल बातें सोच रहे हैं। वे उस लड़की को हवेली से उड़ा ले जाने का षड्यन्त्र रच रहे हैं;

पर इधर हमने भी तैयारी कर ली है कि उनसे पहले ही उस लड़की को ले जाकर किसी गुप्त स्थान में रखें। आशा है कि आपको मेरा यह काम अच्छा लगेगा। इस महान् धार्मिक कार्य के लिए इस समय रुपये की बहुत ही आवश्यकता है; जिसके लिए मैं कल आपकी सेवा में उपस्थित होऊँगा। आप जैसे उदार दानी महानुभावों से देश, जाति तथा धर्म को बहुत आशाएँ हैं।

इस पत्र के साथ ही इस बार का अख़बार भी भेज रहा हूँ, जिसको देखकर आपको हार्दिक प्रसन्नता होगी।

आपका हितैषी—

डाक्टर मोतीलाल पेंगोरिया"

पत्र को पढ़ते-पढ़ते शेखर का हृदय काँप उठा। उसने उसे जेब में रख लिया और अखबार का रैपर झटपट खोला। पहले पृष्ठ पर छपा था—

"हिन्दू जाति पर मुसलमानों का घातक आक्रमण
एक सम्भ्रान्त परिवार की हिन्दू लड़की मुसलमानों के कब्जे में
असहाय हिन्दुओं की सरकार से प्रार्थना
हिन्दू लड़की को मुसलमानों के कब्जे से छुड़ाया जाय"

शीर्षक पढ़ने के बाद उसने नीचे का लेख पढ़ना प्रारम्भ किया—

"कितने खेद की बात है कि मुसलमानों की ओर से हिन्दुओं पर नित्य नये अत्याचार होते रहते हैं। पिछली सूचनाओं में हम उन घटनाओं की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित कर चुके हैं, विभिन्न स्थानों पर मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं का अपमान किया गया है।

थोड़े दिन की बात है कि रायबहादुर सेठ भानामल की मिल का एक मजदूर, जो उनकी ही हवेली में रहता था, किसी कारण गिरफ़्तार हो गया था; जिसके परिवार में उसकी केवल एक ही कुमारी लड़की थी। लड़की का कोई संरक्षक न होने के कारण एक मुसलमान उसे

बहकाकर अपने घर   था, जहाँ वह उसी दिन से रह रही है। सबसे बड़े सन्ताप की बात तो यह है कि हमारे संवाददाता ने अपनी आँखों से उस लड़की को मुसलमानों के हाथ का खाते-पीते भी देखा है।

हमारे देखते दिन-दहाड़े हमारी लड़कियों को मुसलमान अपने कब्जे में कर लें, इससे बढ़कर लज्जा की बात हमारे लिए और कोई नहीं हो सकती। क्या हिन्दू जाति यह सब अत्याचार सहन करती रहेगी? क्या राणा प्रताप और शिवाजी मरहठे का खून उनकी धमनियों में नहीं रहा?

हम सरकार को चुनौती देते हैं कि वह इस मामले में दखल देकर लड़की को हिन्दुओं को वापिस दिलावे, वरना इसका जो भीषण परिणाम होगा, उसका उत्तरदायित्व उस पर होगा। अन्य बातें पूरे विवरण सहित हम अगली सूचना में लिखेंगे। अतएव पाठकों को चाहिए कि वह एजेण्टों से अगला अंक खरीदने का अभी से प्रबन्ध कर लें।"

उक्त लेख को पढ़कर शेखर भौंचक्का रह गया। इस घटना में कितनी सचाई है, इससे वह अपरिचित नहीं था। वैसे वह कई दिनों से शहर में हिन्दू-मुस्लिम तनातनी के भाव देख रहा था, परन्तु उसने इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया था। वह यह भली प्रकार जानता था कि धार्मिक कठमुल्ले ऐसी शरारतें करते ही रहते हैं। उसे यह स्वप्न में भी सम्भावना नहीं थी कि यह मामला इतना तूल पकड़ जायगा। वह वहाँ ही सिर पकड़कर बैठ गया। तो क्या कामिनी को ही किसी भावी खूनी नाटक की मुख्य पात्री बनाया जा रहा है और रहमत तथा अनवरी-जैसी पूज्य आत्माओं को इस संग्राम की भूमि समझा जा रहा है। उसे यह जानकर और भी आश्चर्य हुआ कि इस उत्पात का संचालन उसके पिताजी द्वारा ही हो रहा है।

वह और न बैठ सका। बेचैनी, पीड़ा और भय के कारण उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। वह तुरन्त होश में आया और तेजी से कदम बढ़ाता हुआ कोठी के बाहर आ गया। कोठी से निकलते ही शेखर सीधा पुस्तकालय में गया, कदाचित् उसका विचार और समाचार-पत्र भी देखने का था। कई दिन से उसे अखबार पढ़ने का अवसर ही नहीं मिला था। परन्तु पुस्तकालय में पहुँचने से पूर्व ही उसका साहस जाता रहा। बाज़ारों और गलियों में यही चर्चा थी सब जगह। स्थान-स्थान पर टोलियाँ बनाये हुए व्यक्ति अगट-शगट बातें कर रहे थे। शहर में झगड़े की आशंका के बादल भीषण रूप से छा रहे थे, केवल बरसने-भर की देर थी।

वह हैरान था कि इतनी जल्दी यह क्या हो गया। धार्मिकता का भूत चुटकी-भर में इतना उन्माद पैदा कर सकता है, जो मनुष्य को अन्धा कर दे। वह रह-रहकर इसी के सम्बन्ध में सोच रहा था कि पुस्तकालय आ गया। पुस्तकालय में भीड़ लगी हुई थी। वहाँ की जनता की चर्चा का विषय भी यही था। अखबार पढ़ने वाले बहुत-से व्यक्तियों के चेहरों पर पैशाचिकता के भाव स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे थे।

उसने एक मुस्लिम पत्र को उठाकर पढ़ना प्रारम्भ किया। पहला ही मुख्य शीर्षक था—

"फिर शाने-इस्लाम के लिए खतरे का अलार्म !

दीने मुहम्मदी पर काफ़िरों की जानिब से नाक़ाबिले बरदाश्त वार !

इस्लाम में दाखिलशुदा एक दोशीजा लड़की को अगवा करने के लिए हिन्दुओं की सरगर्मियाँ ....।"

शेखर को हैडिंग के अतिरिक्त और कुछ पढ़ने की आवश्यकता अनुभव नहीं हुई। उसके ऊपर मानो कोई आपत्ति का पहाड़ टूटकर गिर पड़ा था। वह उठकर हवेली की ओर चल दिया।

: ३ :

शेखर के चले जाने के बाद कामिनी ऐसी हो गई थी कि जैसे तीन वर्ष की बीमार हो। उसके छोटे-से दिल में अनेक उमंगें उठतीं जो भयानक तूफ़ान बनकर उसके चारों ओर फैल जातीं और कामिनी उनमें इस प्रकार डूब जाती मानो उसका अपना कोई अस्तित्व ही न हो। उसे सब सूना-सूना-सा लगता था, सारे दिन वह पड़ी रहती थी। पहले वह अनवरी के घर सोती थी और वहीं पर रोटी भी खाती थी, परन्तु जिस दिन से अनवरी ने यह अफवाह सुनी है, भय से उसका दिल बैठा-बैठा-सा रहता है। भय के कारण वह हर समय चिन्ता में मग्न रहती है। उसे पल-पल में ऐसा लगता है कि अब कामिनी गई, अब हिन्दुओं की ओर से उसे लेने कोई आया।

जब मनुष्य पर कोई नई विपत्ति आती है तो वह उसके प्रतिकार के लिए नये-नये तरीके भी सोचता है। अनवरी के लिए यह ढंग संतोष-प्रद नहीं था, परन्तु अनवरी इसके अतिरिक्त और सोच भी क्या सकती थी? उसने कामिनी के पास आना-जाना बन्द कर दिया और उसे चेतावनी दे दी कि वह अपने ही घर रहा करे, घर पर सोया करे और रोटी भी अपने लिए वही अपने-आप बना लिया करे।

रहमत ने आटा, दाल आदि सभी आवश्यक वस्तुएं कामिनी के लिए लाकर उसके पास रख दीं, परन्तु कामिनी को चूल्हे में आग सुलगाने की कोई आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती थी। वह हर समय खाट पर पड़ी रहती। आस-पास के पड़ोसी लाख कोशिश करते; परन्तु कामिनी को न तो किसी के साथ बोलने की आवश्यकता थी और न खाने-पीने की याद। कामिनी को यह भी मालूम नहीं था कि शहर में उसके विषय में कुछ हो रहा है।

रहमत और अनवरी देखने को तो जी रहे थे, परन्तु वास्तव में उनकी आत्मा, कामिनी को बिना देखे सुखी नहीं होती थी। जिस

कामिनी को देखे बिना उनको खाना-पीना भी अच्छा नहीं लगता था, उसी कामिनी को अब भूखी-प्यासी घर में पड़ी देखकर उनसे उसकी आपत्ति को बटाने का साहस भी न होता था। वे उसके इस दुःख को बाँटने में भी अपने को सर्वथा असमर्थ पाते थे।

रात के नौ बजे थे। इधर-उधर से निगाह बचाकर अनवरी कामिनी की कोठरी में आई। वर्षा का मौसम होने के कारण कामिनी ने अपनी खाट अन्दर बिछा ली थी। वह उसके पास जा बैठी और उसे हवा करने लगी। कामिनी ने अपनी निराशा से भरी निगाह छत की ओर से हटाकर अनवरी की ओर की, देखते ही वह उठ बैठी।

अनवरी की आँखों में आँसू आ गए थे।

"क्यों चाची?" कामिनी ने शोकातुर स्वर से कहा।

अनवरी चुप थी।

कामिनी और भी डर गई।

"चाची···चाची···चाची।"

परन्तु चाची के गले को हृदय की व्यथा ने रोक लिया था। कामिनी ने अपने दोनों हाथ बढ़ाये और अनवरी ने भी। दोनों बड़ी देर तक एक दूसरे के हृदय से लगी रहीं। उनका फिर खोया हुआ स्वर्ग लौट आया, प्रेम के आँसुओं ने दोनों के दिलों को हलका कर दिया।

"चाची, तू क्यों रो रही है?" कामिनी ने अपने सारे शरीर का भार उसकी गोदी में डालते हुए कहा।

"क्यों,···तू हमको,···हमको छोड़ जायगी?"

"नहीं चाची,···" हृदय की भग्न वीणा से धीमी-सी झंकार निकली, "मैं अपनी प्यारी चाची को छोड़कर कहाँ जाऊँगी। मैं तो कल की पड़ी हुई सोच रही हूँ कि चाचा भी नहीं बोलते, तू भी मेरे से पहले की तरह नहीं बोलती—सब इतने निष्ठुर क्यों हो गए?"

अनवरी का हृदय मानो फटा पड़ रहा था, परन्तु वह कामिनी से असली भेद बताना नहीं चाहती थी ?

अनवरी ने कोई उत्तर नहीं दिया।

"चाची" क्या आप उस दिन की मेरी गलती से नाराज़ हो गई हैं, मैं शेखर बाबू के साथ से देर में जो आई थी ? आप लोगों की बिना आज्ञा के उनके साथ घूमती रहती थी ? परन्तु अब वे मुझे कभी नहीं मिलेंगे। वे तो मुझे छोड़ ही गए हैं, परन्तु चाची, क्या आप भी मुझे यों ही असहाय अवस्था में छोड़ देंगी ?"

उसकी आवाज़ भारी हो गई थी।

अब अनवरी के लिए दिल की बात छिपानी कठिन हो गई। वैसे रहमत ने इस सम्बन्ध में उसे काफी सावधान कर दिया था। वह अपने ऊपर काबू न रख सकी और सहसा उसके मुँह से निकल गया—

"नहीं बेटी, अब मुझे यह मालूम होता है कि तू ही हमको छोड़कर चली जायगी ?"

'मैं छोड़कर चली जाऊँगी मेरे जीवित रहते भला कोई आपके पास से मुझे हटा सकता है !" कामिनी की आँखें फटी-की-फटी रह गई।

"बेटी, एक चीज़ छुड़ा सकती है।"

"क्या ?"

"भाग्य ?"

कामिनी के हतोत्साहित मन में फिर कुछ उत्साह आना शुरू हो गया और साथ ही शेखर के भाग्य सम्बन्धी विचार भी। उसने अपना सिर अनवरी की गोदी में छिपाते हुए कहा, "चाची, तू भी पागल हुई है; भाग्य भी कुछ है दुनिया में ? अपने भाग्य के निर्माता हम स्वयं हैं।"

"परन्तु बेटी, अब तो हमारे भाग्य की डोर हमारे हाथों से निकल चुकी है।" अनवरी ने कामिनी को छाती से लगाकर कहा।

कामिनी की सारी चिन्ताएं प्रेम की नदी में एक बार फिर गोते खाने लगीं। वह बोली, "किस तरह ?"

"न तुमसे हमारा इतना प्रेम बढ़ता और न हम आज इतनी बड़ी मुसीबत में फँसते ?" अनवरी ने कहा।

"किस तरह चाची, बतलाती क्यों नहीं ?"

अनवरी का सारा धैर्य जाता रहा। अन्तर में छिपाए हुए भार से वह दबी जा रही थी। उसका कोमल जर्जर हृदय इस बोझ को और सहन करने में असमर्थ था। उसने कामिनी को सारी बात सुना दी, आज शाम को मज़दूरों में जो-जो बातें हुई थीं और जो रहमत ने उसे बतलाई थीं अनवरी ने वे सब बातें भी कामिनी पर प्रकट कर दीं।

इन बातों को सुनकर कामिनी का सिर चकराने लगा। क्या मेरे ऊपर किये गए उपकारों का बदला इनको इस प्रकार मिलेगा ? क्या हमारे सच्चे प्रेम को संसार धार्मिक असहिष्णुता के चश्मे से देख रहा है ? क्या मेरे बदले मेरे धर्म के माता-पिता के ऊपर कोई भारी विपत्ति आने वाली है ? यदि ऐसी बात है तो मेरे जीवन को धिक्कार है।

कामिनी इन्हीं विचारों में लीन थी, और शेखर के लिए भी मैं ही आपत्ति का कारण बन रही हूँ। कदाचित् मेरे ही कारण उसको यह मार्ग अपनाना पड़ा था, अपने शुरू किये हुए काम को बीच ही में छोड़ देना पड़ा और हज़ारों मज़दूरों की घृणा का पात्र भी कदाचित् मेरे ही कारण बनना पड़ा। ओह मैं किसलिए जीवित हूँ, मेरे जीवन को धिक्कार है।

अनवरी उसकी असहाय मर्मान्तक पीड़ा को अनुभव कर रही थी। वह मन-ही-मन इस भेद को कामिनी के सामने खोल देने पर,

पछताने लगी। पता नहीं इस घटना से इसके दिल पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

बाहर से किसी की बातें करने की आवाज़ सुनकर अनवरी कामिनी को उसी अवस्था में छोड़कर बाहर निकल गई।

बाहर मैदान में कुछ आदमी इकट्ठे होकर बातें कर रहे थे, कुछ बाहर के थे और कुछ हवेली के। रहमत घबराता हुआ उनमें इधर से उधर फिर रहा था। किसी भावी विपत्ति की आशंका से वह उद्विग्न हो रहा था।

अनवरी का भय और भी बढ़ा, उसने चाहा कि रहमत से पूछे; परन्तु रहमत को बहुत आदमियों के झुण्ड में खड़ा देखकर वह घर में चली गई।

हवा आने के लिए कामिनी का दरवाजा खुला था। अन्धेरी रात को काले-काले बादलों ने और भी भयानक बना दिया था।

अनवरी के चले जाने के बाद कामिनी उसी प्रकार दुविधा में पड़ी हुई थी कि बाहर से उसे किसी की बात-चीत करने की आवाज़ सुनाई दी। उन बातों में दो एक बार उसने अपना नाम भी सुना। उसने दीपक की बत्ती जरा और कम कर दी और उठकर दबे पाँव बेलों के झुरमुट के पीछे होकर वह उनकी बातें सुनने लगी। यहाँ से बाहर खड़े हुए व्यक्तियों की बातें भली प्रकार सुनाई देती थीं।

कामिनी ने सुना, कोई कह रहा था, "रहमत, तू घबरा क्यों रहा है, खुदा सब खैर करेगा। किसी की क्या मजाल है, जो हमारी लड़की की ओर निगाह भरकर भी देख ले।"

सुनकर कामिनी का दिल काँप गया। उसने और सुना, "झगड़ा तो कोई-न-कोई करेगा ही। कई आदमी कह रहे थे कि हिन्दुओं ने सोचा है कि कामिनी को मुसलमानों के यहाँ से ले आयें और किसी अनाथालय में भेज दें।"

दूसरी आवाज रहमत की थी, "यदि हिन्दुओं को हमारे ऊपर

कोई शक है तो लड़की को बेशक ले जायँ। अनाथालय में भेज दें; या जहाँ उनकी तबियत कहे। मेरा क्या अधिकार है जो दूसरे की लड़की पर खून-खराबी करूँ? पर मुझे तो इस बात की आशंका है कि कहीं इसी बात को लेकर शहर में झगड़ा न हो जाय; और व्यर्थ ही में लाखों आदमियों की जानें जायं।"

एक और दूसरी आवाज आई, "और सुना है कि मुसलमानों ने भी यही सलाह की है।"

कामिनी को अब वहाँ खड़ा रहना कठिन हो गया। वह बैठ गई।

रहमत ने कहा, "तो फिर अब क्या किया जाय? जो यह बात हो गई तो बहुत ही बुरा है। पता नहीं, क्या आपत्ति आ जाय?"

"हम चालीस घर किसलिए हैं? कोई घुसे तो सही हवेली में, उसकी बोटी-बोटी न काट दें तो कहना। अन्धेरे कुएँ में गिरें ऐसे हिन्दू और मुसलमान। हम सबको मौत के घाट उतार कर ही कोई कामो तक पहुँचेगा।"

"अच्छा जाओ आराम करो जाकर। सवेरे देखा जायगा, जो होगा।"

वर्षा होनी प्रारम्भ हो गई थी और बेल के बीच से पानी कामिनी पर टपकने लगा था।

बाहर की बातों का सिलसिला बन्द हो चुका था। कामिनी वहाँ से चुपचाप उठकर अन्दर आ गई और खाट पर पड़ रही। निराशा, चिन्ता और किसी भावी विपत्ति के भय ने उसका मस्तिष्क निश्चेष्ट कर दिया था। इसी उधेड़-बुन में कामिनी की आँखें झपक गईं। कई रात जागते रहने के कारण वह शीघ्र ही निद्रा देवी की गोद में विश्राम करने लगी।

वह स्वप्न-लोक की सैर कर रही थी। कुछ देर के लिए वह सारे दुःखों को भूल गई। किवाड़ खुले थे और वर्षा से भीगे हुए हवा के झोंके बेल की टहनियों में से होकर अन्दर आ रहे थे। ज्यों-ज्यों समय

बीतने लगा, कामिनी के सामने बीते हुए दिनों की वह स्वर्गीय याद नृत्य करने लगी। वह इस समय उसी 'गार्डन' में खड़ी थी और शेखर के कहे हुए सारे वाक्य एक-एक करके उसके कानों में गूँज रहे थे। यह केवल भूत काल की याद ही नहीं थी, प्रत्युत उसे मालूम हो रहा था, मानो वह अभी तक वहीं खड़ी है। उसी प्रियतम के हाथ में उसका हाथ है और वही मधुर वाक्य, शेखर के फूल-जैसे कोमल ओठों के बीच से निकल रहे हैं। फूल हँस रहे थे, झाड़ियाँ प्रेम की मादकता से ओत-प्रोत हो झूम रही थीं और भीनी-भीनी मादक मलय-समीर कामिनी की ओढ़नी को उड़ा रही थी। कैसा मधुर, मादक और मन-माना सपना था वह !

फिर देखा कि मूसलाधार वर्षा हो रही थी और शेखर प्रेम के साथ उसका हाथ पकड़े हुए था। साथ ही ये वाक्य उसे सुनाई पड़े, "कामिनी जी, चलो चलें हम भीग रहे हैं।"

परन्तु कामिनी के लिए यह मूसलाधार वर्षा मानो अमृत की वर्षा थी। वह भीगती हुई भी वहाँ से जाना नहीं चाहती थी। उसका हृदय, उसके नेत्र, उसका शरीर इस समय प्रेम के गहरे रंग में रँगा हुआ था।

"कामिनी जी, तुम बिलकुल भीग गई हो।" मानो किसी ने फिर दुहराकर कहा। अब कामिनी को भी ठण्ड महसूस हो रही थी। किसी प्यार से थिरकते हुए हाथ ने सहारा दिया और कामिनी उठी।

इसके बाद मानो निद्रा देवी ने कामिनी को अपनी मधुर, मादक गोदी से निकाल कर भूमि पर पटक दिया। सपने का संसार जाता रहा।

वह आँखें मलती हुई उठ बैठी। वह सचमुच भीगी हुई थी, उसके सिर पर से पानी टपक रहा था। बाहर मूसलाधार वर्षा हो रही थी।

'तो क्या यह सपना था ? हाँ सचमुच सपना' इसी विचार ने प्रेम के हरे-भरे पर्वत-शिखर पर झूमती हुई उसको शोक के अथाह सागर में ढकेल दिया।

अब वह पूरी तरह जाग गई थी। वह उठकर खाट पर और सम्भल कर बैठ गई थी। उसकी आँखों के आगे शेखर से बिछुड़ने की झाँकी घूम रही थी, मोटर''माता जी''''''हार!

कामिनी खाट पर से उठी और बाहर की छत के नीचे आकर खड़ी हो गई। बेल के नीचे लगे हुए खम्भे का सहारा ले लिया। बेल भी उसी की भाँति आँसू गिरा रही थी। कामिनी भीग रही थी, उसे इस भीगने में भी एक अपूर्व आनन्द आ रहा था। वह अतीत की रंग-बिरंगी तस्वीर थी। उसे ऐसा मालूम हो रहा था, मानो अब भी उसे भीगती हुई देखकर कोई कह रहा हो, "कामिनी जी, तुम भीग रही हो।" उसकी आँखों में अभी तक सपने की मादकता थी।

उसकी प्यार की दुनिया अब शून्य में विलीन हो गई थी। उसे चेतना हो आई थी। अब पहले की भाँति ही उसका हृदय आर्त्त हो उठा। मेरा सर्वस्व, मेरा जीवनाधार कहाँ है? क्या यह सचमुच सपना था। उसने ऊपर निगाह करके एक बार आसमान की ओर देखा। चारों ओर घना अन्धेरा छाया हुआ था, उसे ऐसा अनुभव हो रहा था, मानो आकाश भी उसके शोक में सहानभूति प्रकट करने के लिए काले भण्डों के रूप में मातम मना रहा हो। उसने इधर-उधर देखा, सब ओर मातमी दृश्य दृष्टिगोचर हुआ।

एक ठंडी साँस लेकर वह खड़ी हो गई। अपनी बेल को फिर उसने एक बार अरमान भरी निगाह से देखा, उसकी कीचड़ में लथ-पथ कलियों को उठाकर साफ किया, हृदय से लगाया और भीषण अन्धेरी में भी अपनी सुन्दरता का अद्भुत प्रमाण देती हुई कलियों को चूमा और फिर उनके साथ बातें करने लगी, "जाओ मिट्टी में मिलो, इधर-उधर हवा के झोंकों के साथ जाकर कूड़े में गिर जाओ, आज तुम्हारी कामिनी नहीं है। यदि वह जीवित होती तो तुम्हें कभी भी न मुरझाने देती''''''''"और वह उनको यों ही वहाँ छोड़कर अन्दर चली गई।

अभी तक कामिनी को उस दूसरी समस्या का ध्यान ही नहीं आया था। अन्दर घुसते ही उसे ख़याल आ गया कि रात को चाची ने कुछ कहा था। बाहर खड़े हुए व्यक्तियों की कुछ बातें भी उसने सुनी थीं।

तो क्या सवेरे सूर्य निकलते ही इस हवेली में कुहराम मचेगा? मनुष्यों के लहू से जमीन लाल हो जाएगी, सैकड़ों माताओं, बहनों तथा सुहागिनों के आँसू इस मूसलाधार वर्षा से भी अधिक वेग से अविरल गति से बहेंगे? मेरे धर्म के माता-पिता का पता नहीं क्या हाल होगा? और यह सब-कुछ मेरे कारण?

वह फिर बाहर निकल आई।

तो क्या मैं इस होने वाले महाभारत को किसी प्रकार रोक सकती हूँ? क्या इसका कोई उपाय है? इसी समय उसके कानों में 'टन' की आवाज आई। पास के गिरजे की घड़ी ने एक बजाया था। उसने चुप-चुप मन-ही-मन कहा, "......ठीक है घंटे ने भी मेरी दुविधा दूर कर दी। एक, इसका एक ही उपाय है, मृत्यु।'

वह कोठरी से बाहर निकल आई।

पानी बरस रहा था। कामिनी का शरीर कुछ तो कोठरी के टपकने से भीग गया था, बाकी कसर अब आकाश ने पूरी कर दी थी। हवेली के मैदान में बूँदों की रिमझिम आवाज़ के अतिरिक्त और कुछ सुनाई नहीं देता था। कभी-कभी काले बादलों में से बिजली की तेज चमक पृथ्वी पर पड़ती और वह हवेली के मैदान की कीचड़ से उलझती हुई चली जा रही थी। कामिनी काफ़ी देर तक हवेली के मैदान में खड़ी अपने घर के सामने लगी उस 'कामिनी की बेल' की ओर अरमान भरी निगाह से देख रही थी, जो वर्षा की अधिकता के कारण पृथ्वी पर लोट गई थी। वह भी कीचड़ में मिल रही थी, यह भी मिल रही थी। यह भी निराश्रिता थी, वह भी निराश्रिता।

खड़ी-खड़ी वह यही सोचती रही कहाँ जाऊँ? कौन आश्रय देगा

मुझे।' परन्तु झट ही घड़ी की 'टन' वाली बात याद आ गई।' उसकी सारी चिन्ताएं दूर हो गईं। दिल ने कहा रेल की पटरी तो दूर नहीं, सवा तीन बजे "अपर इण्डिया' जाता है, बस ठीक है। इस समय कामिनी के हृदय में दृढ़ता का संचार हो गया था, दिल की सारी कमज़ोरी दूर हो गई थी। वह धीरे-धीरे रहमत के दरवाजे पर पहुँची; दरवाजा खुला हुआ था, दोनों अपनी-अपनी खाटों पर सोये हुए थे। अन्दर जाकर उसने इन दोनों महान् आत्माओं के दर्शन करने चाहे, परन्तु अन्धकार के कारण वह अच्छी तरह उनके दर्शन भी नहीं कर सकी। कुछ देर वह बिजली के चमकने की प्रतीक्षा में खड़ी रही, जिससे बिजली के प्रकाश में ही इन महान् आत्माओं के अन्तिम दर्शन कर ले, परन्तु बहुत न ठहर सकी।

वह पीछे मुड़ी और हवेली के फाटक की ओर चल दी। जाते-जाते उसके पैर एक बार फिर रुके, मानो उसे कोई बुला रहा हो। उसने पीछे देखा। केवल घरों की छतों पर पानी की बूँदों के गिरने की आवाज़ सुनाई दे रही थी। उसने मन-ही-मन झुँझलाकर कहा, "यहाँ कौन-सा आकर्षण है, जो मुझे आगे बढ़ने से रोक रहा है?"

उधर घड़ी ने "टन-टन" करके दो बजने की सूचना दी। ठीक है, "दो" निःसन्देह दो प्यार भरी आत्माएं हैं, जिनका प्रेम-बन्धन मेरे पैरों को आगे नहीं बढ़ने देता।

परन्तु मेरे दोनों धर्म-प्रेमी भूल करेंगे यदि वे यह सोचेंगे कि मैं उनसे अलग हो रही हूँ। मैं तो उन्हें बचाने के लिए, उनकी चिन्ताओं तथा दुःखों का अन्त करने के लिए अपने प्राणों की, आहुति दूँगी। वह दिल को और पक्का करके आगे बढ़ी। धीरे से फाटक खोला और इस अपार संकुचित संसार के अन्धकार में लीन हो गई। ख़तरों और छल-छिद्रों से युक्त संसार में!

इस समय उसकी विचार-शक्ति सर्वथा लुप्त हो चुकी थी और वह सर्वथा निश्चेष्ट थी। इस समय उसे केवल ये दो ही वस्तुएं अपनी

कल्पना-दृष्टि से दीख रही थीं; अन्धेरे में चमकती हुई रेल की पटरी और धड़-धड़ करती आती हुई 'अपर इण्डिया एक्सप्रैस'।

: ५ :

शेखर अभी हवेली के रास्ते ही में था कि उसने सुना, वहाँ झगड़ा हो गया है। वह निश्चेष्ट हो गया। तुरन्त उसने एक ताँगा किया और कोचवान से सेठ जी की हवेली की ओर ले चलने को कहा। हवेली का नाम सुनते ही कोचवान ने घोड़े की रास खींच ली और कानों को हाथ लगाता हुआ बोला, "ना बाबू जी, चाहे आप सौ रुपये भी दें, मैं उधर नहीं जा सकता। उधर तो लाशें बिछी हुई हैं।"

शेखर और कुछ पूछने का साहस न कर सका। वह ताँगे से उतर कर पैदल ही चल दिया। अभी वह हवेली से काफी दूर था कि वर्दी वाले पैदल और घुड़सवार सिपाहियों के दस्ते उसको हवेली की ओर दौड़कर जाते दिखाई दिये। ज्यों-ज्यों वह हवेली की ओर बढ़ रहा था, भारी भीड़ भी उधर बढ़ी जा रही थी। परन्तु पुलिस को देखकर लोग भयातुर हो वापिस होने भी प्रारम्भ हो गए थे। घूँ-घूँ करती हुई कई आर्म्ड कारें शेखर के सामने से हो-होकर उधर चली गईं।

"ओह, क्या यह सब काम कामिनी के कारण ही हो रहा है?" शेखर के मस्तिष्क में केवल यही ध्वनि गूँज रही थी। वह तेजी से बढ़ा जा रहा था कि बाज़ार के चौराहे पर किसी ने पीछे से बाँह पकड़कर उसको खड़ा कर लिया और पूछा, "किधर दौड़े जा रहे हो ?"

यह पुलिस-अफसर था। शेखर ने घबराई हुई एवं जरा तेज आवाज में अपना हाथ छुड़ाने की कोशिश करते हुए कहा, "मैं हवेली की ओर जा रहा हूँ।"

"गिरफ़्तार करो।" पुलिस-अफसर ने पास खड़े एक सिपाही

की ओर देखकर उसे हुक्म दिया। शेखर हैरान खड़ा था। शेखर तीखी दृष्टि से उनकी ओर देख रहा था। उसकी घबराहट और चेहरे पर पल-पल में दौड़ती हुई लाली देखकर पुलिस-कर्मचारी उसको संदेह की दृष्टि से देख रहे थे।

"क्या काम है हवेली में तुम्हें ?" पुलिस-अफसर ने अफसराना लहजे में उससे पूछा।

"मैं......मैं कामिनी के घर जा रहा हूँ, मैं आपका कृतज्ञ होऊँगा यदि आप मुझे वहाँ जाने देंगे।......कामिनी को मैं......मैं कामिनी......कामिनी" घबराहट के साथ शेखर ने कहा।

"कामिनी कौन, वही जिसके कारण यह खून-खराबी हो रही है।" अफसर ने उसकी ओर सन्देह की दृष्टि से देखते हुए कहा।

"हाँ, वही कामिनी......क्या कहा आपने......खून-खराबी तक नौबत आगई क्या......? ईश्वर के लिए आप मुझे जल्दी वहाँ जाने दें। मैं......मैं...... ।"

"आप आगे नहीं जा सकते।" थानेदार ने उसको सिर से पैर तक देखते हुए कहा, "उसको किसी ने वहाँ से उड़ा लिया है।"

"उड़ा लिया है !" शेखर ने लम्बी साँस लेते हुए पूछा, "कामिनी को उड़ा लिया है ?"

"हाँ रात में उसे कोई उठा ले गया।"

"तब तो मुझे जल्दी ही जाना चाहिए। इन्स्पैक्टर साहब, मैं आपका अत्यन्त कृतज्ञ होऊँगा।"

"हवेली की ओर किसी को भी नहीं जाने दिया जायगा। वहाँ पर हिन्दू-मुसलिम झगड़ा हो चुका है। परन्तु इस समय तो आप वैसे भी मेरी हिरासत में से नहीं जा सकते जब तक कि मुझे यह भली प्रकार विश्वास न हो जाय कि आपका उस लड़की से क्या सम्बन्ध है ?"

"मैं कहता हूँ......मैं कहता हूँ, परन्तु कृपा करके पहले आप

मुझे यह बतलाने का कष्ट करें कि उसे किसने उड़ाया है ?" शेखर ने घबराए हुए स्वर में पूछा।

"हिन्दू कहते हैं मुसलमानों ने, मुसलमान कहते हैं हिन्दुओं ने। अभी तक इससे अधिक और कुछ नहीं मालूम हुआ ?"

"कुछ मालूम नहीं...झगड़ा हो गया...कामिनी के पीछे... कामिनी के ही कारण।" शेखर ने अपने-आप बड़बड़ाना शुरू किया। इसी विचार में वह तल्लीन हो गया ! आँखों के आगे अन्धेरा छा गया और वह गिरने ही लगा था कि दोनों सिपाहियों ने, जिन्होंने उसकी बाहें पकड़ी हुई थीं, सँभाल लिया।

थानेदार बड़ी हैरानी से उसकी ओर देख रहा था।

शेखर ने देखा, हथकड़ियों में जकड़े हुए कई आदमी उसी जगह लाकर सिपाहियों ने खड़े कर दिये। इतनी ही देर में पुलिस की देख-रेख में लाशों व चोट खाये हुए व्यक्तियों की खाटें उसी सड़क से अस्पताल की ओर गईं। सिपाहियों के घोड़ों की टाप उसे भली प्रकार सुनाई दे रही थी। कन्धों पर हथकड़ियों को लटकाए सिपाही इधर-उधर घूम रहे थे।

शेखर की चेतना लुप्त हो चुकी थी। वह चुपचाप निर्जीव प्रतिमा की भाँति सब-कुछ देख रहा था। हवेली की ओर जाने का ध्यान अब उसे नहीं था। इतने में ही उधर से एक भारी भीड़ अनेक प्रकार के नारे लगाती हुई गुजरी, "काफ़िरों को मटियामेट कर दो, कामिनी को उनके पंजे से छुड़ाने में हमारा बच्चा-बच्चा कट मरेगा।"

लाठी लिये पुलिस का एक दस्ता आगे बढ़ा और उस भीड़ की ओर चल दिया। परन्तु भीड़ पर इसका कोई भी असर मालूम नहीं होता था। सारा जन-समूह उत्साह के साथ आगे बढ़ा चला जा रहा था। इतने ही में घुड़सवार पुलिस ने भीड़ का रास्ता रोक लिया। भीड़ के आगे आने वाले तुर्की टोपी पहने हुए कुछ मुखियाओं ने जोर-जोर से पुलिस-अफसर को लक्ष्य करके कहना शुरू किया, "हमारा रास्ता छोड़

दो, हम काफ़िरों को उनकी शैतानी का मजा चखाकर ही दम लेंगे। चाहे हमारी बोटी-बोटी कट जाय। लाठी की क्या बिसात, यदि गोलियों से हमारी छातियाँ छिद जायंगी तो भी हम पीछे नहीं हटेंगे। जब तक काफ़िरों के पास से उस लड़की को हम नहीं छुड़ा लेंगे, हमें चैन से बैठना भी हराम है।"

जब कई बार कहने पर भी भीड़ न हटी तो एक पुलिस-अफसर के संकेत से सिपाहियों ने भीड़ पर लाठी बरसानी प्रारम्भ कर दीं। लाठी का चलना था कि धार्मिक कट्टरता के वे पुतले सिर पर पैर रखकर भागने लगे। थोड़ी ही देर में सारी भीड़ तितर-बितर हो गई।

कई व्यक्ति तेजी से भागते हुए औंधे मुँह जमीन पर गिर गए, कई अपने जूतों को ही वहाँ छोड़ कर भाग गए, कइयों की पगड़ियाँ ही भूमि पर पड़ी धूलि-धूसर हो रही थीं। इसी हबड़-धबड़ में कई हिन्दू मुसलमानों की दुकानों में जा छिपे थे और कई मुसलमानों ने हिन्दुओं के बराँडों में जाकर शरण ली। सभी आतंकित थे।

थोड़ी देर बाद लोगों ने देखा कि पहले से भी अधिक भीड़ दूसरी ओर से आ रही थी। 'वैदिक धर्म की जय' के गगन-भेदी नारों से सारा वातावरण गूँज रहा था। भीड़ के आगे कुछ जोशीले नौजवान गाते हुए आ रहे थे—

'मिटा देंगे दुष्टों का घर देख लेना।
लगा देंगे मज़हब पै सर देख लेना।।'

और इन गाने वाले नवयुवकों को बढ़ाने वाले थे, सबसे आगे आते हुए वही हमारे पूर्व परिचित डा० पेंगोरिया।

"तितर-बितर हो जाओ, शहर में दफा १४४ लग चुकी है।" पुलिस-अफसर ने डा० पेंगोरिया से कहा।

"संसार का कोई भी हुक्म हमारे धर्म में दख़ल नहीं दे सकता और संसार का कोई भी धर्म हमारे धर्म में दख़ल नहीं दे सकता। हम

अपने धर्म की रक्षा के लिए सर्वस्व न्यौछावर कर देंगे। जब तक हम मुसलमानों के पास से अपनी हिन्दू लड़की को नहीं छुड़ा लेंगे तब तक हम चैन से न बैठेंगे।"

"दुबारा कहा जाता है, तितर-बितर हो जाओ।" पुलिस-अफ़सर ने ज़रा गम्भीरतापूर्वक कहा।

"हरगिज़ नहीं, हम राम और कृष्ण की सन्तान हैं, धर्म पर हँस-हँस कर अपने प्राणों की बलि देना हम खूब जानते हैं। इन लाठी, बन्दूक और गोलियों से हम न डरेंगे।" डाक्टर साहब ने फिर बड़-बड़ाते हुए कहा।

"गिरफ़्तार करो।" अफसर ने हुक्म दिया। इतना सुनने भर की देर थी कि अपने साथियों का साथ छोड़कर डाक्टर साहब उछलकर भीड़ में घुस गए। परन्तु पुलिस वाले भी कच्ची गोली नहीं खेले थे। उन्होंने डाक्टर साहब को भीड़ में से ही खींच लिया। डाक्टर-साहब थर-थर काँप रहे थे।

उनके हाथ हथकड़ियों से जकड़े थे। हथकड़ी हाथों में पड़ते ही डाक्टर साहब का रंग बिलकुल फीका पड़ गया। उनके ओठों पर खुश्की दौड़ गई, शरीर शिथिल हो गया और बोली भर्रा गई।

लाठी-चार्ज होने पर उस राम और कृष्ण की फौज में भगदड़ मच गई। पुलिस ने अगली पंक्ति में खड़े हुए और नवयुवकों को भी गिरफ़्तार कर लिया।

शेखर ने खड़े-खड़े यह सब-कुछ देखा, उसकी आँखों के आगे मानो सिनेमा की तस्वीरें घूम रही थीं। देखते-ही-देखते उसके पास अच्छी खासी भीड़ इकट्ठी हो गई। सबके हाथों में हथकड़ियाँ थीं। कदाचित् आस-पास गिरफ़्तार किये हुए व्यक्ति यहाँ इकट्ठे किये जा रहे थे। शेखर की बातें मन-की-मन में रह गईं, जब वह सैंकड़ों गिरफ़्तार साथियों के साथ फौजी लारी में जेल की ओर जा रहा था।

: ६ :

सारे शहर में दफा·१४४ लग चुकी थी। करफ्यू आर्डर भी था। पाँच आदमियों से अधिक की भीड़ ग़ैर क़ानूनी करार दे दी गई थी। इस झगड़े में कई प्राणी मर गए थे। घायलों की गिनती करना तो सर्वथा कठिन था। गिरफ़्तारियाँ अब भी जारी थीं और उनके फैसलों के लिए भी एक स्पेशल मजिस्ट्रेट नियत कर दिया गया था।

हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे पर फौजदारी के मुकद्दमे चला रहे थे। दोनों दलों की शिकायत एक ही थी। हिन्दू कहते थे कि उनकी लड़की को मुसलमानों ने मुसलमान बनाकर कहीं छिपा लिया है, और मुसलमान कहते थे कि वह अपनी इच्छा से इस्लाम में दाख़िल हुई थी, अब उसे हिन्दुओं ने उड़ा लिया है।

दोनों ओर के लगभग सौ आदमी पकड़कर जेल में बन्द किये गए थे। इन भाड़े के हाजियों और नामी धर्मवीरों ने ज्यों ही जेल का फाटक देखा तो उनकी वीरता पंख लगाकर उड़ गई। माफीनामे लिख-लिखकर अदालत में दिये जाने लगे।

❀ ❀ ❀

शेखर को जेल में आये दो दिन हुए हैं। उसके बहुत-से साथी भी, जिन्होंने इस खून-ख़राबी को रोकने का प्रयत्न किया था, अपराधी बनकर यहीं आ गए थे, रहमत भी उनमें था। जिस बैरक में शेखर बन्द था, उसी में पचास और हवालाती थे, उसे मालूम हुआ कि साथ के ब्लाक में ही डाक्टर पैंगोरिया भी विराज रहे थे।

मज़दूरों ने जब शेखर को अपने साथ हवालात में बन्द देखा तो सबने घृणा से मुँह मोड़ लिया। एक रहमत ही था, जिसके दिल में शेखर का प्रेम अभी तक कम नहीं हुआ था। जेल का दारोगा शेखर को बड़े आदर और प्रेम की निगाह से देखता था। उसे जेल में आया

देखकर वह आश्चर्य में पड़ गया था। उसे मालूम था कि एकता और संगठन का सूत्रधार शेखर किसी भी प्रकार इन मज़हबी जनूनियों में शामिल नहीं हो सकता।

शेखर की गिरफ़्तारी का हाल उसी के मुख से सुनकर दारोगा को सान्त्वना मिली। उसने निजी तौर पर शेखर को खान-पान एवं रहने सम्बन्धी कुछ सुविधाएँ देनी चाहीं, परन्तु उसने इन्कार कर दिया। वह क़ानून के ख़िलाफ़ कोई रियायत लेने के पक्ष में नहीं था।

शेखर और रहमत ने परस्पर विचार-विनिमय किया। परन्तु कामिनी के सम्बन्ध में शेखर को रहमत से कुछ भी मालूम नहीं हुआ। वह इतना ही कह सका कि रात को वह अपनी कोठरी में सोई हुई थी और सवेरे देखने से मालूम हुआ कि उसकी खाट खाली पड़ी थी। वह कहाँ गई, कौन उसे ले गया, कोई हिन्दू या मुसलमान? इसका न रहमत को पता था, न किसी दूसरे को ही।

शेखर को दृढ़ विश्वास था कि कामिनी को अवश्य ही मज़हबी दीवाने ले गए हैं और उसका अधिक सन्देह हिन्दुओं पर ही था। उसे वह डाक्टर साहब वाली चिट्ठी और अख़बार का लेख याद था। आज तक वह दोनों चीज़ें उसकी जेब में थीं। सबसे पहले शेखर ने कामिनी को उस दिन अकेले छोड़ जाने के लिए माफ़ी माँगी। रहमत से उसने अपनी मजबूरी प्रकट की और उसके बाद वह इस घटना के सम्बन्ध में सोचने लगा।

वास्तव में रहमत को शेखर पर बहुत क्रोध था; परन्तु इस समय कामिनी के अचानक गायब होने की ख़बर से शेखर को बहुत पीड़ा पहुँची थी, इस कारण रहमत उससे इस विषय में कुछ न कह सका। दोनों इस समय एक ही चिन्तना में निमग्न थे। जब रहमत को मालूम हुआ कि झगड़ा होने की खबर पाकर ही वह हवेली की ओर आ रहा था और रास्ते में ही गिरफ़्तार कर लिया गया था तथा वह

अभी तक कामिनी की ही चिन्ता में निमग्न रहता है, तो उसका सारा क्रोध काफ़ूर हो गया।

शेखर ने हवालात के एक कोने में बैठकर सबसे पूर्व इस मामले पर गम्भीरता पूर्वक सोचना शुरू किया। डाक्टर वाली चिट्ठी और अख़बार जेब में से निकालकर फिर ध्यान से पढ़े। इसके अतिरिक्त उसे एक और बात का भी ध्यान आया—पिताजी ने उस दिन कहा था कि मैं समझूँगा उस कंगाल की लड़की को। तो क्या इस काम में उनका भी हाथ है?

उसने मन-ही-मन में दृढ़ विचार करने व सबसे पूर्व डाक्टर पेंगोरिया से मिलने का विचार किया। वह जेल-दारोगा से आज्ञा लेकर उनके अहाते में पहुँचा। उस समय डाक्टर साहब अपनी कोठरी के एक कोने में बैठे कुछ लिख रहे थे। शेखर ने जाते ही कहा, "सुनाओ डाक्टर साहब क्या हाल है?"

शेखर को वहाँ देखते ही डाक्टर के होश उड़ गए और कृत्रिम हँसी प्रदर्शित करते हुए वह बोले, "कहो शेखर बाबू, आप यहाँ कैसे?"

"जनाब मैं भी आपके साथ ही आ फँसा हूँ।" शेखर ने हँसकर उत्तर दिया और संक्षेप में अपनी गिरफ़्तारी का सारा हाल सुना दिया।

फिर उसने पूछा, "डाक्टर साहब, आपको तो इस झगड़े की असलियत मालूम होगी। किस प्रकार अनजाने ही यह बवण्डर उठ गया शहर में?"

"यह सब इन म्लेच्छों की ही दुष्टता का परिणाम है!"

"परन्तु यह मामला शुरू किस बात से हुआ?"

"उसी लड़की से, जिसको इन दुष्टों ने मुसलमान बना लिया है, और बेचारी को बहकाकर पता नहीं कहाँ ले गए हैं?"

"डाक्टर साहब, क्या आप उस लड़की को जानते हैं?"

"जी हाँ, मैं जानता हूँ, वह आपकी हवेली वाले राये की लड़की है, आप भी तो उसे जानते हैं! आप तो वैसे भी आजकल उनकी पार्टी में जा मिले हैं!"

"उसको मुसलमान बनाने का आपके पास कोई प्रमाण है, या यों ही!"

"वाह भई, क्या यह भी कोई छिपी हुई बात है? मैं अपनी आँखों से उसे मुसलमान के हाथ का खाते हुए देख आया हूँ!"

"क्षमा करना डाक्टर साहब, हाथ का खाना-पीना और बातें हैं और मुसलमान बनाया जाना और। मैं स्वयं मुसलमानों के हाथ का खाता-पीता हूँ; परन्तु मुझे तो कभी कोई मुसलमान नहीं कहता।"

"आप धार्मिक नियमों से उतने परिचित नहीं, जितना मैं हूँ।" डाक्टर साहब ने ज़रा चिढ़ते हुए कहा।

"तो यह आप जैसे धार्मिक पाखंडियों की कृपा का ही परिणाम है कि आज शहर में महाभारत मचा हुआ है और आपको भी जेल आने का कष्ट उठाना पड़ा!"

"धर्म के लिए मुझे जेल क्या, यदि फाँसी के तख्ते पर भी लटकना पड़े तो मैं खुशी से लटक जाऊँगा।"

"ठीक कहते हैं आप। आपके इस कथन की सत्यता तो मैंने उस समय देखी थी, जब गिरफ़्तारी का नाम सुनकर आप भीड़ में घुस गए थे और आपको भीड़ में से बाहर खींचना पड़ा था।"

डाक्टर साहब कुछ लज्जित हुए, परन्तु बोलने में धीमे नहीं पड़े। उन्होंने जोश मे आकर कहा, "यह आपका भ्रम है, मैं गिरफ़्तार होने से पूर्व अपना अन्तिम सन्देश अपने साथियों को सुनाने लगा था।"

"फिर पुलिस ने ज़बरदस्ती खींचकर आपको क्यों गिरफ़्तार किया? आपकी टाँगें भी उस समय लड़खड़ा रही थीं और चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं।" शेखर ने ज़रा व्यंग्य कसते हुए कहा।

"यह तो समय बतलायगा कि धर्म के लिए मेरे-जैसे सेवक कैसे हँस-हँसकर मुसीबतों का सामना करते हैं !"

"अच्छा, आपने आज से कोई तीन-चार दिन पूर्व पिताजी के पास कोई चिट्ठी भेजी थी ?"

डाक्टर साहब का रंग फीका पड़ गया और वे टुकुर-टुकुर शेखर के मुँह की ओर ताकने लगे।

"घबराओ मत, मैं इस भेद को किसी पर प्रकट नहीं करूँगा।" शेखर ने मुस्कराते हुए कहा।

डाक्टर साहब सोच रहे थे, सम्भवत: सेठजी ने शेखर के आगे उस चिट्ठी का ज़िक्र किया हो। उन्हें यह स्वप्न में भी सम्भावना न थी कि वह चिट्ठी शेखर के हाथ पड़ गई है। मन-ही-मन यह निश्चय करके वे रौब से बोले, "आप भूलते हैं। मैंने उनको कोई चिट्ठी नहीं लिखी।"

शेखर की निगाह अचानक उस चिट्ठी के एक चमकते हुए कोने पर जा पड़ी, जो उसको आते हुए देखकर डाक्टर साहब ने कपड़ों के नीचे छिपा ली थी। उसने कुछ सोचकर इस मामले को और बढ़ाना उचित न समझा।

"तो शायद मैं ही भूल रहा हूँ" कहकर शेखर बाहर निकला और वह सीधा जेलर के दफ़्तर की ओर चल दिया।

❀ ❀ ❀

थोड़ी देर बाद डाक्टर साहब के सामने जेल का दारोगा और दो जमादार मौजूद थे और उनकी तलाशी ली जा रही थी।

जितने भी कागज़ात उसके पास से बरामद हुए, जेल-कर्मचारी उन सभी को ले गए।

डाक्टर साहब मुँह देखते रह गए।

: ७ :

कानपुर की गली-गली में इसी फ़िसाद का ज़िक्र था। पुलिस की भाग-दौड़ के फलस्वरूप शहर में शान्ति की स्थापना हो गई थी। दोनों ओर से एक-दूसरे दल के ऊपर लड़की को उड़ा ले जाने का मुकद्दमा चल रहा था। दोनों ही ओर से प्रसिद्ध-प्रसिद्ध वकील खड़े किये जा रहे थे।

हिन्दुओं का दावा तो बना-बनाया था क्योंकि लड़की हिन्दुओं की थी। परन्तु मुसलमानों ने भी उस पर अपना अधिकार प्रमाणित करने में कोई कसर न उठा रखी थी। उनकी ओर से विश्वस्त गवाही द्वारा यह साबित किया जाने लगा कि अमुक दिन नमाज के समय उसे मुसमान बनाया गया, उसका नाम अमुक रखा गया और अमुक के साथ उसका निकाह पढ़ा गया आदि। इस मामले में दोनों ओर से ही जिस-जिसका नाम लिया गया, वे सब धीरे-धीरे पकड़ लिये गए।

इस झगड़े का मुकद्दमा अलग अदालत में हो रहा था। उनमें जो यों ही सन्देह में गिरफ्तार किये गए थे, छोड़ दिये गए और बाकी पर अदालती कार्यवाही होने लगी। गिरफ़्तारी से तीन दिन बाद शेखर को छोड़ दिया गया। रहमत और उसके साथी दूसरे मज़दूर भी छोड़ दिये गए। रोज पेशियाँ हो रही थीं। दोनों ओर से आये हुए हज़ारों आदमियों की भीड़ कचहरी के अहाते में जमा रहती। वहाँ भी झगड़े की आशंका से पुलिस का पर्याप्त प्रबन्ध था।

जेल से निकल कर शेखर सबसे पूर्व पुलिस में गया और उसके बाद घर की ओर। सेठजी और पार्वती ने यह तीन दिन बड़ी परेशानी से काटे थे। इधर शेखर की सगाई होने वाली थी कि अचानक वह गिरफ़्तार हो गया। उनके लिए खाना-पीना कठिन हो गया, जब तक कि शेखर न आ गया।

शेखर को देखते ही दम्पति के चिर-विजड़ित प्राणों में आशा की

नवल लहर दौड़ गई। परन्तु शेखर का रङ्ग उड़ा हुआ था। सेठजी ने शेखर को छाती से लगाकर पूछा, "बेटा, तू इस मुसीबत में किस तरह जा फँसा।"

देखते-देखते ही शेखर के चेहरे पर लाली दौड़ गई और उसकी सारी गम्भीरता जाती रही। वह सेठजी के प्रश्न के उत्तर में बोला, "आपकी लगाई हुई आग को बुझाने गया था। परन्तु सफल न हो सका?"

"मेरी लगाई हुई आग को, शेखर तेरे होश-हवास तो ठीक हैं?" सेठ जी ने उसको छोड़कर पीछे हटकर आराम कुर्सी पर गिरते हुए कहा।

"हाँ-हाँ, आपकी लगाई हुई पिताजी, इस सब खून-खराबी की जिम्मेदारी आपके ऊपर है।" शेखर ने अपने अन्दर के उबाल को दबाते हुए कहा।

सेठजी की आँखें खुली-की-खुली रह गईं।

"पिताजी" कातर स्वर में शेखर ने कहा, "काश, आप इस हद तक न पहुँचते। आप विश्वास रखें, इसके परिणामस्वरूप निश्चय ही आपको जेल जाना पड़ेगा। मैं निःसन्देह इस समय एक घोर काम करने में प्रवृत्त हुआ हूँ। परन्तु यह पाप का खेल आपके पापों के परिमार्जन के लिए ही किया जा रहा है। आपके पाप की आग से झुलसते हुए निराश्रित लोगों की आहों से बचने के लिए ही मैं यह सब करने को विवश हुआ हूँ।"

"शेखर, शेखर, तू क्या बक रहा है?" सेठजी ने घबराकर पूछा।

शेखर के उत्तर देने से पूर्व ही बाहर से कुछ शोर सुनाई दिया। उसने बाहर आकर देखा, "पुलिस!"

देखते-देखते कोठी के 'लान' में तिल रखने को भी जगह न रही।

सेठजी की गिरफ़्तारी का वारण्ट था, जो भी सुनता, वह दाँतों तले उँगली दबा लेता।

सेठजी के दोनों हाथों में हथकड़ियाँ थीं। शेखर इस दृश्य को देखने में असमर्थ था, वह अन्दर चला गया। सेठजी को जेल ले जाया गया।

पार्वती बेहोश थी।

◆

नवाँ भाग

विजय

: १ :

कामिनी के साथ कैसी बीती ?

वह हवेली से निकली। आधी रात, सुनसान, वर्षा, वायु और अन्धकार को चीरती हुई वह चली जा रही थी। उसका संसार पीछे छूटा जा रहा था। सड़क का मोड़ आया, वह मुड़ी। कुछ दूरी पर एक नानबाई के बरांडे में पहरे वाला सिपाही बैठा ऊँघ रहा था। कामिनी ने चाल जरा धीमी कर दी; कहीं सिपाही न जान जाय इस आशंका से।

थोड़ी देर बाद वह आबादी से बाहर थी। कभी-कभी बिजली के अस्थिर प्रकाश में उसे ऊँचे-नीचे, दूर पर बड़े मकान दिखाई दे जाते थे। संसार के प्रबल थपेड़ों की तरह सामने की तेज़ हवा और मेह की बौछारें उसके मुँह पर तेज़ी से पड़ रही थीं; मानो वे उसको इस मार्ग से विमुख करना चाहती हों। परन्तु कामिनी दृढ़ थी अपने इरादे पर, पत्थर की भाँति।

जाती-जाती वह फिर मोह के कारण पीछे देखने लगी। एक ठण्डी आह निकल कर शीतल समीर के झोंके में विलीन हो गई। आह मेरी चाची ! ....और उसके पैर रुक गए, पीछे मुड़ना चाहा; पर कोई साधन नहीं था। ईर्ष्यालु दुनिया, जिसको मिली हुई दो वस्तुओं को अलग करने में ही आनन्द आता है, उसके सामने मुँह बाये खड़ी थी; उसको अपनी भीषण दाढ़ों में रखकर पीस देने के लिए।

वह फिर आगे बढ़ी। रेल की पटरी यहाँ से बहुत दूर न थी।

कहीं मन में और कोई कमज़ोरी न आ जाय, इस आशंका से वह तेज़ी से कदम बढ़ाने लगी। वर्षा और भी तेज़ हो गई।

उसके मुख से एक करुण आह निकली—"आह मेरा दुखी पिता जेल के सींखचों से हाथ निकाल कर मुझे बुला रहा है।" वह ऊँची आवाज़ में रोती हुई दौड़ने लगी।

रेल की पटरी सामने थी।

कामिनी इस समय अपने अन्तश्चक्षुओं से राधे को देख रही थी, पिता का एक हाथ सिर पर और दूसरा पीठ पर फिरता हुआ उसे अनुभव हो रहा था। इस समय कामिनी को राधे के वे उपदेश याद आ रहे थे, जो जेल जाते समय उसने उसे दिये थे।

कामिनी का दिल बार-बार पुकार-पुकार कर कह रहा था, "मैंने प्रण किया था कि पिता के अधूरे काम को पूरा करूँगी परन्तु यह क्या? पर क्यों? क्या मैं आत्म-हत्या करने के लिए ही जन्मी, पली और इतनी बड़ी हुई थी? शेखर के साथ किये गए वे वचन, प्रतिज्ञाएं, हम दोनों ही दुःखी भाइयों के लिए वह करेंगे, यह करेंगे, क्या सब व्यर्थ कल्पनाएं ही थीं। परन्तु वह सब बातें यह सब पुनीत भावनाएं शेखरजी के साथ चली गईं।

फिर मैं क्यों जीवित रहूँ? पिता के लिए? जिसकी हड्डियों की भी जेल से आने की आशा नहीं? क्या मैं अपनी धर्म-माता के लिए जीवित रहूँ, जिन्होंने केवल मेरे लिए ही धार्मिक कठमुल्लाओं की क्रूरता का सामना किया है? इन्हीं विचारों में डूबी वह रेल की पटरी के पास जा पहुँची।

पटरी के आस-पास पड़े हुए कंकरों को पैर से इधर-उधर करती हुई कामिनी सोच रही थी, "इस अन्धेर से भी भयंकर अन्धेरी दुनिया में कौन-सी चमक है जिसकी ओर मैं मुँह करूँ, पिता का

आश्रय था, वह भी जालिम पूँजीपतियों के हवन-कुण्ड में आहुति बन गया। उसके अतिरिक्त मेरे धर्म के माता-पिता रहमत और अनवरी हैं, उनको भी दुनिया ने मुझसे छीन लिया है, बस वह भी गए, दोनों गए।"

"टन, टन, टन"

पास के रेलवे-वर्कशाप की घड़ी ने तीन बजने की सूचना दी।

अब तीन हो गए। हाँ, हाँ तीन ही ठीक हैं। तीसरा भी आकर मेरे जीवन के सारे हर्षोन्माद को धूल में मिला गया। जीवन में कोई आशा, कोई उमंग और कोई भी प्रस्ताव नहीं छोड़ गया। कामिनी के अन्तर से पुकार उठी!

इस समय रेल की पटरियों से कान लगाए कामिनी धड़कते हुए दिल से आने वाली एक्सप्रेस की प्रतीक्षा कर रही थी। दूर से आवाज़ सुनाई दी। कामिनी का दिल जोर से धड़कने लगा, शरीर में रोमांच हो आया; आँखें पथरा गईं और गला एकदम खुश्क हो गया। वह बिना कुछ और सोचे पटरी पर अपना गला रखकर लम्बी पड़ रही।

रेल की आवाज़ और भी पास आ गई थी। कामिनी का सिर चकरा रहा था। आवाज़ के साथ ही तेज प्रकाश की एक झलक कामिनी ने अपने पास देखी।

वह निश्चेष्ट होती जाती थी।

और तेज, और तेज, आवाज़ भी और प्रकाश भी। और भी दुगनी तेजी से कामिनी के शरीर का लहू दौड़ रहा था, मस्तक में भूकम्प-जैसी हिलोरें आ रही थीं।

और पास, बिलकुल पास।

वह पटरी से सटकर सिकुड़ गई। हाथ-पैर सब सिकुड़ गए।

ज्यों-ज्यों प्रलय-जैसा भयकारी शोर करती हुई 'एक्सप्रेस' आगे

आ रही थी त्यों-त्यों कामिनी के कोमल दिल की धड़कन बन्द होती जा रही थी।

इस समय जब गाड़ी पूरी रफ़्तार पर कामिनी से कठिनाई से सौ ही गज होगी कि उसका दिल-दिमाग़ सुन्न हो चुका था। इस समय उसके सामने न भूत था, न भविष्यत् और न वर्तमान ही। कुछ भी नहीं।

गाड़ी और निकट आगई।

कामिनी ने सिर को हरकत दी

गाड़ी उसके पास आ गई थी और कामिनी को कुछ भी पता नहीं था।

गाड़ी निकल गई।

और कामिनी ?

: २ :

मुकद्दमे का रुख सारा ही पलट गया जब शेखर की ओर से तीन चिट्ठियाँ अदालत में पेश की गईं। इनमें पहली चिट्ठी वह थी जो डाक्टर पेंगोरिया ने अखबार के साथ सेठ जी को भेजी थी और वह शेखर के हाथ लग गई थी। दूसरी चिट्ठी जेल में डाक्टर की तलाशी में निकली थी; यह सेठ जी की ओर से डाक्टर साहब को लिखी गई थी। उस चिट्ठी से यह स्पष्ट हो गया कि इस झगड़े के प्रधान नायक डा० पेंगोरिया हैं जो सेठ जी के प्रोत्साहन से ही इस काम में प्रवृत्त हुए थे। तीसरी वह अधूरी चिट्ठी थी जो शेखर के जाने पर डाक्टर साहब ने छिपा ली थी। यह चिट्ठी सेठ जी को लिखी गई थी जिसमें डाक्टर साहब ने जेल की तकलीफों के रोने रोये थे; यद्यपि उन्हें जेल में गए कठिनाई से २४ घंटे भी नहीं हुए थे। इसमें डाक्टर साहब ने सेठ जी को अब तक के अपने किये कारनामों का विस्तार पूर्वक दिग्दर्शन कराया था। उसमें यह भी लिखा था कि आपकी सहायता यदि मुझे

न प्राप्त होती तो मैं कदापि इस झगड़े को कराने में सफल न होता। अन्त में डाक्टर साहब ने सेठ जी से अपने को जल्दी ही जेल की यातनाओं से बचाने की प्रार्थना की थी।

इन चिट्ठियों से इस खूनी नाटक की पृष्ठभूमि का पता तो लग गया; किन्तु कामिनी का अभी तक भी किसी को कुछ भी पता न लग सका। इसी कारण मुकद्दमे की कार्यवाही अभी तक अधूरी ही थी पुलिस बराबर भाग-दौड़ एवं छान-बीन कर रही थी।

शेखर को भी अब यदि कोई सबसे बड़ी चिन्ता थी, तो वह कामिनी की थी। उसने कामिनी का पता लगाने में पुलिस की भरपूर सहायता की; परन्तु न तो डाक्टर साहब से उसका कुछ पता चला और न सेठ जी द्वारा ही कुछ सूचना प्राप्त हो सकी। डाक्टर पैंगोरिया के लिए अब "हाँ" करने के अतरिक्त और कोई चारा ही नहीं रह गया था, जबकि उसके हाथ की लिखी चिट्ठियाँ अदालत की मेज पर पड़ी थीं और इससे भी बढ़कर थी शेखर की शहादत, जिसने उसके सारे मनोरथों को मिट्टी में मिला दिया। परन्तु फिर भी वह अपनी सफाई के लिए अड़ा हुआ था।

उधर सेठ जी को जेल में जाकर जब सारी बातों का पता लगा तो उनके हाथों के तोते उड़ गए। अत्याचारों का घड़ा भर चुका था, जिसके फूटने में अब कुछ भी देर नहीं थी। कदाचित् यही कारण था कि उन्हें अब की बार शेखर पर क्रोध नहीं आया। उनके पाप उनके सामने रह-रह कर नाच रहे थे। वे इससे बड़े उद्विग्न थे; उनके जीवन में इसी क्षण से परिवर्तन प्रारम्भ हो गया। उनका शरीर शिथिल एवं आत्मा निष्क्रिय होती जा रही थी। प्राण-पखेरू उनके पापमय पिंजर से उड़ने के लिए बेचैन थे। अब यदि उनके दिल में कोई हसरत थी तो वह इन अत्याचारों का प्रायश्चित्त करने की। इसी कारण उन्होंने अपने मुकद्दमे की पैरवी के लिए कोई वकील नहीं किया।

शेखर दिन-रात इसी चिन्ता में निमग्न रहता था, "आख़िर कामिनी गई कहाँ ? क्या कोई भी इस पहेली को न सुलझा सकेगा ?"

कभी-कभी उसके हृदय को पिता के दुर्वचनों की याद नोंचती-सी मालूम होती थी। परन्तु उसके हृदय को तो तभी सन्तोष एवं शान्ति प्राप्त होती, जब वह यह सोचता कि यदि मैं ऐसा न करता तो कई निर्दोष प्राणी मारे जाते और व्यर्थ ही में जेलों में पड़े सड़ते।

आज अदालत में बड़ी चहल-पहल थी, क्योंकि सेठ जी का मुकद्दमा आज ही पेश होने वाला था। सेठ जी की ओर से कोई वकील नहीं किया गया, यह बात भी लोगों के लिए काफी हैरानी की थी। अपार जन-समूह उमड़ा पड़ता था। कहीं भी तिल रखने की जगह बाकी न थी।

सेठ जी मुलज़िमों के कठघरे में लकड़ी का सहारा लिये बैठे थे। उनमें खड़े होने का साहस भी न था, उनकी अवस्था बड़ी दयनीय थी। किसी को यह भी विश्वास नहीं था कि वे आज अदालत के कमरे में से बाहर शान्ति पूर्वक जा सकेंगे। उनकी इस दारुण अवस्था पर उनके शत्रु भी मन-ही-मन खेद प्रकट कर रहे थे।

सहसा सेठ जी ने कहा, "शेखर को बुलाओ, मैं कुछ कहना चाहता ।"

सबके कान खड़े हो गए। अदालत के अफसर ने कलम रख दी।

शेखर वहीं था, सेठ जी की बात सुनते ही तुरन्त सामने आ गया।

"शेखर, ज़रा तू मेरे पास तो आ ?" सेठ जी ने काँपते स्वर में कहा।

वह उनके पास चला गया।

जनता निश्चल खड़ी थी।

इस समय सेठ जी का चेहरा इतना उतरा हुआ था कि उन्हें पहचानना भी कठिन था, आँखों में मृत्यु-जैसी कालिमा छाई थी और हाथ-पैर उनके काँप रहे थे।

उनकी यह दशा देखकर शेखर का हृदय चीत्कार कर उठा। इस समय वह सब-कुछ भूल गया। बीती हुई वे सारी बातें, जिनके प्रभाव से उसके जीवन की अखिल शान्ति और उसके सुख की सारी पूँजी खो गई थी, वह थोड़ी देर के लिए बिलकुल भूल गया। उसका हृदय करुणा-कलित रागिनी से भर उठा और वह सेठ जी की ओर निगाह उठाकर भी न देख सका और दौड़कर उनके पैर पकड़ लिये।

सेठ जी उसकी ओर निर्निमेष दृष्टि से देख रहे थे, वे कुछ कहना चाहते थे, परन्तु भावावेश में कुछ न कह सके और उनकी आँखों से आँसुओं की धारा अविरल रूप से बहने लगी।

शेखर नीचे से उठकर उनकी छाती से लग गया। इससे सेठ जी का अवरुद्ध हृदय पिघल-पिघल कर और भी तेज़ी से आँखों की राह बहने लगा।

सेठ जी रोते-रोते अपने हथकड़ियों में जकड़े हाथों को पुत्र की पीठ पर फेर रहे थे।

"पिता जी, पापों से मुक्ति पाने के लिए प्रायश्चित्त ही उत्तम साधन है।" शेखर ने उनकी ओर देखते हुए करुणार्द्र कण्ठ से कहा।

"बेटा, मैं प्रायश्चित्त करने को तैयार हूँ।" सिर नीचा किये हुए सेठ जी ने कहा।

"ओह, पिता जी!" कहकर शेखर ने अपनी दोनों बाहें सेठ जी के गले में डाल दीं।

दोनों चुप थे, कुछ बोलना चाहते थे, परन्तु आँसुओं से वाणी का द्वार अवरुद्ध था।

जनता शान्त थी, सरकारी वकील कानून की धाराओं को बिलकुल भूल गया। मजिस्ट्रेट का ध्यान भी मिसलों को देखने में न था।

पिता-पुत्र बहुत दिनों से रुके हुए प्रेम-स्रोत के अचानक फूटकर बह निकलने से उसी के प्रवाह में डूब-उतरा रहे थे। दोनों की आँखें

से प्रेम की ज्योति निकलकर सारे वातावरण को आप्लावित कर रही थी।

"शेखर!" सेठ जी ने रुकते-रुकते कहा, "मैं पापी हूँ, अत्याचारी हूँ, मेरे पापों का फल मुझे मिल गया, मिलना ही चाहिए था। अब इस संसार में मैं और अधिक रहना नहीं चाहता।"

"पिता जी, आप इतना क्यों घबरा रहे हैं?" शेखर ने दुखी हृदय से कहा।

सेठ जी ने उसी तरह उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा, "बेटा, तू नहीं जानता। इन दो महीनों में मेरे साथ क्या-क्या बीती है? कुछ तेरे वियोग में, और कुछ अपने अत्याचारों के कारण। आज मुझे अपनी अगली-पिछली गलतियों का अनुभव हो रहा है। मैंने अनेक निःसहाय मज़दूरों पर घोर अत्याचार किये, उनको जेल भी भिजवाया, अपने देशवासियों को लड़ाने के लिए इस बदमाश (डा० पैंगोरिया) की बातों में आकर यह घोर अनर्थ भी मैं कर बैठा। राधे की लड़की को उड़ा देने की सलाह भी मैंने इसे दी, परन्तु वह पहले ही कहीं गुम कर दी गई थी। कामिनी को किसी ने भी मुसलमान नहीं बनाया। यह सारी शरारत इस डाक्टर की है? जिस रहमत और उसकी स्त्री अनवरी पर उसको मुसलमान बना लेने का आरोप लगाया गया है, वे दोनों महान् आत्मा हैं। मैंने तुझे उस आदर्श देवी के पास से बुलाकर भारी अनर्थ किया है। अपने दिल की आग को मैं जिन तरीकों से बुझाना चाहता था, वह अधिकाधिक भड़कती ही गई और अन्त में उन पापों की आग ने मेरे अन्तर तथा बाह्य को बिलकुल ही भस्मसात् कर डाला। मेरे सांसारिक जीवन की ही इति-श्री कर दी। बेटा, मैं अब जीना नहीं चाहता। मेरे हृदय पर गुनाहों का इतना भारी पत्थर रखा हुआ है कि वह मेरे लिए असह्य है। उसके नीचे पिसकर मैं उन पापों से मुक्ति के लिए प्रायश्चित्त करना चाहता हूं।"

शेखर का हृदय रो रहा था। सारी जनता अदालत के कमरे में चुपचाप खड़ी थी।

सेठ जी का साँस फूल गया था। परन्तु फिर भी उन्होंने बोलना जारी रखा, "बेटा, तू सच्चे मार्ग पर था, मैं ही ग़लत रास्ते पर जा रहा था......ईश्वर तुझे बल दे, साहस दे, और दे आगे बढ़ने की प्रेरणा; तू अपने कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त करे। मैं आज से तुझे स्वतन्त्र करता हूँ।"

कहते-कहते सेठ जी गश आ जाने के कारण वहीं कठघरे में गिर पड़े, श्वास की गति तेज हो गई और देखते-देखते आँखों का रंग भी बदलना शुरू हो गया। उनके प्राण संकट में थे। उनकी इस अवस्था को देखकर अदालत के कमरे में हलचल मच गई।

"उठाओ, डाक्टर को बुलाओ, जल्दी करो" की आवाज़ों में पता ही नहीं लगा कि किस समय सेठ जी के प्राण-पखेरू इस मानव-पिंजर को छोड़कर उड़ गए।

: ५३ :

सेठ जी की मृत्यु के कोई दो सप्ताह बाद एक दिन सबेरे के समय उनकी मिल के सामने मज़दूरों और आने-जाने वालों की भीड़ लगी हुई थी। लोग एक-दूसरे के आगे हो-होकर उसके बन्द दरवाज़े पर लगे हुए एक लम्बे-चौड़े नोटिस को पढ़ने का प्रयत्न कर रहे थे।

उनमें अधिक अशिक्षित ही थे, इसलिए ये बेचारे अधीरता पूर्वक एक दूसरे से पूछते-फिरते थे कि इसमें क्या लिखा है?

अन्त में एक पढ़े-लिखे व्यक्ति ने कहा, "रास्ता दो, मैं पढ़कर सुनाता हूँ।" सारे पीछे हट गए। उस व्यक्ति ने वहाँ पहुँचकर नोटिस को जोर-जोर से पढ़ना शुरू किया—

"राय बहादुर सेठ भानामल के सुपुत्र चन्द्रशेखर की ओर से
घोषणा

मैं अपनी मिल में काम करने वाले उन सब मज़दूरों के प्रति हृदय से सहानुभूति प्रदर्शित करता हूँ, जिनको इतनी लम्बी अवधि तक मिल बन्द रहने के कारण हानि पहुँची है और जिनको अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इसके अतिरिक्त उन व्यक्तियों के साथ मेरी विशेष रूप से सहानुभूति है, जिनको सच्चे मार्ग पर चलने के कारण जेल की दारुण यातनाएँ सहनी पड़ीं, मार-पीट का शिकार होना पड़ा और मिल से हटाए जाने के कारण आर्थिक कठिनाइयों का का सामना करना पड़ा।

मेरा नम्र निवेदन यह है कि मेरे वीर मज़दूर पिछली सारी बातों को भुला दें। मैं उनके सामने इस निवेदन द्वारा प्रतिज्ञा करता हूँ कि आगे के लिए इस मिल या इसके प्रबन्धकों की ओर से कभी भी उनको किसी शिकायत का अवसर नहीं मिलेगा। मुझे यह कहने में ज़रा भी संकोच नहीं कि मेरे पूज्य पिता जी की ओर से उन पर अनेक अत्याचार हुए, परन्तु आप सुन चुके होंगे कि उन्हें अपने जीवन के अन्तिम क्षणों में उन अत्याचारों पर पश्चात्ताप हुआ जिसके फल-स्वरूप उन्होंने दुखित हृदय से उन सभी व्यक्तियों से क्षमा-याचना की थी, जो उनके अत्याचारों का शिकार हुए थे। इसलिए मैं उन वीरों के सामने करबद्ध विनती करता हूँ कि वे मेरे पिता जी की अन्तिम प्रार्थना को स्वीकार करते हुए उनकी सारी ग़लतियों को भूल जायं। जिससे उनकी स्वर्गीय आत्मा को शान्ति मिले।

मैं अपनी मिल के सारे कर्मचारियों को शुभ सूचना देता हूँ कि तारीख''''''से मिल का कार्य पूर्णतया प्रारम्भ हो जायगा। इस सम्बन्ध में अपने मज़दूर भाइयों को दृष्टि में रखकर मैं निम्नलिखित कुछ सुविधाएँ या उनके अधिकार, जिनके कि वे वास्तव में अधिकारी हैं, देने की घोषणा करता हूँ—

१—मिल का कार्य प्रारम्भ होते ही पिछले सारे वेतन व हड़ताल के दिनों का भी सारा। वेतन सब कर्मचारियों का पूरा-पूरा दे दिया जायगा।

२—जो व्यक्ति इस सम्बन्ध में सजा भुगत रहे हैं, उनको 'ए' क्लास की सुविधाएं दिलाने के अतिरिक्त, जितने दिन भी वे जेल में रहेंगे उनके परिवार के व्यक्तियों को पूरा वेतन नियमित रूप से मिलता रहेगा।

३—मिल का कार्य प्रारम्भ होते ही प्रत्येक कर्मचारी के वेतन में १० प्रतिशत वृद्धि करने का निर्णय किया गया है।

४—मिल की वार्षिक आय में प्रत्येक मज़दूर का भाग रहेगा अर्थात् सारे खर्च मिलाकर जितना लाभ वर्ष-भर में होगा उसका आधा भाग सब छोटे-बड़े कर्मचारियों में समान रूप से विभाजित कर दिया जायगा। जिसका तात्पर्य यह है कि यह मिल सारे मज़दूरों की अपनी मिल होगी और इसके लाभ के वे अधिकारी होंगे। यह मिल 'यू० पी० मज़दूर-संघ' के प्रत्येक निर्णय का सदा स्वागत करेगी।

५—यदि किसी कर्मचारी को कोई शिकायत हो, तो उसे अधिकार होगा कि मिस्त्री या मैनेजर के पास जाने की बजाय वह सीधा मेरे पास आकर कह सकता है। मैं हर समय प्रत्येक मज़दूर की शिकायत सुनूँगा।

६—क्योंकि पहले मैनेजर से कर्मचारी असन्तुष्ट थे, इसलिए उसे कार्य से पृथक् कर दिया गया है और उसकी जगह मज़दूरों के सच्चे नेता श्री राधेलाल जी (जो आजकल आगरा जेल में हैं) मैनेजर बनाये गए हैं। हमें पूर्ण आशा है कि वे अपील में अवश्य बरी हो जा'गे।

७—कर्मचारियों का मुखिया श्री रहमतअली को बनाया गया है।

८—सेठ जी के जिन मकानों या क्वार्टरों में मिल के मज़दूर रहते हैं उनसे उनका कोई किराया न लिया जायगा और जो दूसरी जगह

किराए के मकानों में रहते हैं, उनको वेतन के अतिरिक्त पाँच रुपए मासिक किराए का अलाउन्स भी दिया जायगा। प्रयत्न यह किया जायगा कि बहुत शीघ्र ही सबके लिए खुले और हवादार क्वार्टर बनवाए जायँ।

६—मिल के बजट में से मज़दूर-संघ को ५००) वार्षिक सहायता स्वीकृति की गई है।

अपने मज़दूर भाइयों का हितैषी—

चन्द्रशेखर"

उक्त घोषणा को सुनकर सारे मज़दूरों की छातियाँ फूल गईं और उनका हृदय उल्लास से भर गया। सबके मुख से शेखर की प्रशंसा और शुभकामना के शब्द निकल रहे थे।

सारे शहर में इस घोषणा से प्रसन्नता की लहर दौड़ गई।

उसी रात दस हज़ार मज़दूरों की एक सभा में बा० चन्द्रशेखर की वह घोषणा पढ़कर सुनाई गई। प्रसन्नता के नारों से नभ-मण्डल गुंजायमान हो गया। सर्व सम्मति से श्री चन्द्रशेखर को "मज़दूर सम्राट्" की उपाधि से सम्मानित किया गया। और फिर—

सब मज़दूरों की ओर से इसी खुशी में 'दीपावली' का महोत्सव मनाया गया

भारतीय मज़दूरों के इतिहास में यह प्रथम अवसर था कि जिसको मज़दूरों का 'स्वर्ण दिवस' कहा जा सकता है।

: ४ :

और राधे के साथ क्या बीती?

राधे को सजा हुए अभी कठिनाई से ४-५ दिन ही हुए थे कि उसको आगरा बदल दिया गया।

कानपुर के जेल-कर्मचारियों को यह भय था कि राधे के और भी बहुत-से साथी इसी जेल में हैं। कहीं ऐसा न हो कि वे भड़क उठें

और सारी जेल में बग़ावत फैला दें। इसी कारण वे वहाँ राधे के साथ कोई अपमान-जनक व्यवहार करने में हिचकते थे। पहले दिन ही उसे चक्की पीसने को दे दी गई, परन्तु जब उसने दो-तीन सेर से अधिक नहीं पीसा तो उसे काम नहीं दिया गया। जेल-कर्मचारी राधे के सम्बन्ध में पूर्ण परिचित थे। वे जानते थे कि इसका मज़दूरों में बड़ा आदर-सम्मान है, इसी कारण उसको आगरा बदल दिया गया।

आगरा पहुँचने-मात्र की देर थी कि जेल-कर्मचारियों की ओर से सख़्ती होनी प्रारम्भ हो गई। राधे चाहे वर्षों से कड़ी मेहनत करता आ रहा था, परंतु इस समय उसके शरीर की यह अवस्था न थी कि वह कोई कठिन कार्य कर सकता। वहाँ पहुँचते ही उसको चक्की में बन्द कर दिया गया और भारी चक्की और अनाज से भरे हुए टोकरे को देखकर राधे घबरा गया। उसकी सूखी बाहें इतनी भारी चक्की को चलाने में असमर्थ थीं। वह वहीं पर बैठ गया। शाम को जब उसका काम देखा गया तो उसने अपने हाथ दिखलाते हुए काम न कर सकने के लिए विवशता प्रकट की; परन्तु क़ैदियों को अपनी संकट-कथा सुनाने या उनके कष्टमय जीवन पर ठण्डे दिल से सोचने की सुविधा कदाचित् अब भी हिन्दुस्तान की जेलों में नहीं है।

जेल-दारोगा पर उसकी उन बातों का कोई प्रभाव नहीं हुआ। उसने कड़क कर कहा, "चाहे कुछ भी हो, तुमको जेल का दिया हुआ काम करना ही होगा। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि तुम एक क़ैदी हो!"

"मैं बेशक क़ैदी हूँ जनाब; परन्तु जिस काम को मैं नहीं कर सकता, उसके लिए तो मजबूरी है।" राधे ने रौब के साथ कहा।

"तो क्या तुम काम करने से इन्कार करते हो?" जेल-दारोगा ने ज़रा रौब के साथ कहा।

"नहीं जनाब, मैं बिलकुल इन्कार नहीं करता; परन्तु यह प्रार्थना

अवश्य करता हूँ, कि मेरे स्वास्थ्य को देखकर मुझे काम दिया जाय, मैं करने को तैयार हूँ ।"

"नहीं तो ?..." दारोगा ने लाल-पीले होकर पूछा।

"नहीं तो, लाचारी है जनाब।" राधे ने निर्भीकता-पूर्वक कहा।

"अच्छा हम देखेंगे तुम्हें।" कहकर दारोगा वहाँ से चलता बना।

अगले दिन से उसको एक सप्ताह तक 'डण्डा-बेड़ी' में रखा गया।

डण्डा-बेड़ी की पीड़ा ऐसी है कि जो व्यक्ति एक बार भी इसका शिकार हो जाता है, वह सारी उम्र उसे भूल नहीं सकता। बड़े-बड़े तीसमारख़ाँ यहाँ आकर इसके आगे सीधे हो जाते हैं। जेल में सबसे बड़ी सजा 'डण्डा बेड़ी' की ही होती है।

इस एक सप्ताह की डण्डा-बेड़ी' से राधे मृतवत् होगया। आपत्ति का अन्त यहाँ तक ही नहीं था। एक के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी सजा उसे मिलती रही।

एक महीने के बाद राधे की यह हालत होगई कि उसको सब कामों से अयोग्य प्रमाणित करके जेल के अस्पताल में भेज दिया गया। परन्तु अस्पताल में अब क्या बनना था ? उसका शरीर केवल अस्थि-चर्मावशिष्ट कंकाल-मात्र ही रह गया था।

इसी अवस्था में राधे ने एक महीना और ज्यों-त्यों करके बिताया।

अब जेल-दारोगा की आँखें खुलीं। कोई साधारण कैदी होता तो कोई बात नहीं थी; उसको मरने दिया जाता। जेल के चौड़े कब्रिस्तान में अभी काफी जगह खाली पड़ी थी; परन्तु यह था राजनैतिक कैदी और इससे भी बढ़कर एक 'संघ' का नायक। अधिकारी चिन्तित थे कि यदि जेल में इसकी मृत्यु होगई तो भारी विपत्ति का सामना करना पड़ेगा। परन्तु उनकी यह दुविधा स्वयं ही दूर होगई, जब उसकी रिहाई का हुक्म आया।

राधे अब स्वयं उठ-बैठ भी नहीं सकता था, किसी को पहचानना भी अब उसके लिए कठिन था।

उसे रिहाई के लिए आगरा से कानपुर जेल बदल दिया गया। मार्ग में उसे इसका भी भली-भाँति ध्यान नहीं था कि वह कहाँ है। इस सारी यात्रा में वह निश्चेष्ट मृतवत् पड़ा रहा। केवल गाड़ी की खड़-खड़ की ध्वनि ही उसे सुनाई दे रही थी।

: ५ :

मज़दूरों को अपना खोया हुआ सम्राट् मिल गया। शेखर के अचानक हवेली से चले जाने के कारण उसके सम्बन्ध में जो-जो भ्रान्त धारणाएँ उनके दिलों में उसके प्रति बन गई थीं, इस घोषणा के पढ़ते ही सारी दूर होगईं। शेखर का धैर्य जाता रहा था। कामिनी का अभी तक कोई पता नहीं चला था और उससे भी बढ़कर दयनीय अवस्था थी रहमत और अनवरी की।

मिल का काम नए ढंग से शुरू होगया। मज़दूरों का पिछला सारा वेतन भुगता दिया गया था। पूरे उत्साह और उमंग से सारे मज़दूर अपने-अपने काम पर लगे हुए थे, परन्तु सभी के हृदय में एक अज्ञात वेदना थी, कामिनी के न मिलने की।

उस मुकद्दमे में अपराधियों को सजाएं होगई थीं। डाक्टर पैंगोरिया भी तीन वर्ष के लिए अपने कुकर्मों का फल भोगने जेल भेज दिये गए थे; परन्तु अभी तक हिन्दू-मुसलमानों का दिल पूरी तरह साफ नहीं हुआ था। सन्देह का भूत हर एक के दिल में घर किये था। कामिनी का अभी तक न मिलना भी इसका प्रमुख कारण था।

अपने कारोबार को भली प्रकार चलता हुआ देखकर एवं मज़दूर भाइयों की प्रसन्नता का व्यवहार देखकर शेखर को अपूर्व आनन्द अनुभव हो रहा था; परन्तु उसका दिल सब चीज़ों से विरक्त होता जा रहा था। हर समय उसके मन में बुरी-बुरी भावनाएँ तथा शंकाएं आती

रहती थीं। कामिनी का खो जाना मानो उसके जीवन का खो जाना था। वह सब-कुछ करता हुआ भी सब कामों से अलिप्त सा-था। कोई भी चीज़ उसकी उदासी को दूर कर सकने में समर्थ न थी। सारा संसार उसे सूना-सूना-सा लगता था।

पिता के क्रिया-कर्म से निश्चिन्त होकर वह दिन-रात अपने नए ढंग से चालू किये हुए कारोबार को और मज़दूरों के संगठन को दृढ़ करने में लग गया।

मिल का काम शुरू हुए अभी थोड़े ही दिन हुए थे कि एक दिन राधे के बरी हो जाने की ख़बर से सारी मिल में प्रसन्नता की एक अपूर्व लहर दौड़ गई।

रहमत और अनवरी के लिए भी यह ख़बर कोई कम कीमत नहीं रखती थी; परन्तु उसकी निराशा और भी बढ़ गई जब उन्हें ध्यान आया, 'कामिनी को न देखकर उसके पिता राधे की हालत होगी?'

आज सवेरे से ही सारी मिलों के मज़दूर छुट्टी करके एक विस्तृत मैदान में इकट्ठे हो रहे थे। दस बजे तक हजारों की तादाद में मज़दूर इकट्ठे हो गए और थोड़ी देर बाद मजदूरों का यह विस्तृत जन-समूह कानपुर डिस्ट्रिक्ट जेल की ओर रवाना हुआ। शेखर और रहमत फूलों के हार अपने हाथ में लिये भीड़ के आगे-आगे जा रहे थे। उनके आगे बैण्ड बाजा बजता जा रहा था।

इसके दो-तीन घण्टे बाद शेखर की कोठी आदमियों से खचाखच भरी थी। कोठी के एक खुले कमरे में राधे की चारपाई थी। उसके आस-पास रहमत, अनवरी, पार्वती तथा और बहुत-से व्यक्ति बैठे थे। सबके चेहरों पर घबराहट थी।

राधे की नाड़ी डाक्टर के हाथ में थी और उसकी निगाह कमरे के प्रत्येक कोने में किसी की खोज में व्यस्त थी।

अभी तक राधे ने कामिनी के गुम हो जाने की खबर नहीं सुनी थी।

वह बोलने में सर्वथा असमर्थ था। उसके श्वास की गति धीरे-धीरे धीमी पड़ती जा रही थी। कदाचित् वह इन अन्तिम श्वासों को बड़ी कंजूसी से बचा रहा था, इसी आशा में कि वह अपनी एक-मात्र जीवन-ज्योति कामिनी को एक बार जी भरकर देख सके, उसे प्यार कर सके।

पर कामिनी वहाँ कहाँ थी ?

कोठी के 'लान' में अपार जन-समूह शोक की साकार प्रतिमा बना खड़ा था। शेखर ने स्वयं कई बार बाहर आकर लोगों के आगे हाथ जोड़कर कहा, "राधे की हालत इतनी चिन्ताजनक नहीं है; आप लोग जाकर आराम करें।" परन्तु कोई भी जाने का नाम न लेता था। सबको मालूम था कि शेखर के इस कथन में कितनी सचाई है !

बाहर से आकर शेखर फिर राधे के पास बैठ जाता। राधे जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा था।

चारों ओर घूमकर राधे की कमज़ोर निगाह रह-रहकर शेखर या रहमत पर आकर ठहर जाती थी। उसमें एक प्रश्न-सूचक भाव प्रकट करते हुए ओंठ फड़कते, "···कामो ··मेरी का···!"

इसके उत्तर में उसे बार-बार यही उत्तर मिलता, "अभी आ रही है···आई।"

राधे के मन-प्राण व्याकुल हो रहे थे, उसके देह-पिंजर से प्राण-पवन उड़ने की तैयारी में था। उसकी निराश निगाह एक बार फिर दरवाज़े की ओर गई।

"बाबूजी, मेरे बाबूजी !"

यह कामिनी थी।

पिता के दोनों हाथ बढ़े और कामिनी का शरीर उनमें जकड़ गया।

बुझने से पूर्व दीपक की बत्ती ने फिर एक बार जोर का प्रकाश किया। राधे ने स्पष्ट शब्दों में कहा, "मेरी बच्ची···मेरी बच्ची!"

शेखर, रहमत और अनवरी बिलकुल निश्चेष्ट बैठे थे। बाहर खड़ी हजारों की भीड़ में यह ख़बर आँखों-ही-आँखों में पहुँच गई थी···

'कामिनी आ गई···कामिनी आ गई।'

कहाँ से आई, कैसे आई? यह प्रश्न प्रत्येक के दिल में उठ रहा था, परन्तु एक अजनबी मुसलमान वृद्ध सज्जन ने, जो कामिनी के साथ आया था और जो वर्दी से रेलवे का कोई कर्मचारी मालूम होता था, लोगों की सारी उत्सुकता दूर कर दी।

सारी भीड़ उसे घेरे खड़ी थी और वह बतला रहा था।

"एक दिन प्रातःकाल जब मैं 'अपर इण्डिया एक्सप्रेस' का सिगनल बदल कर वापिस अपने क्वार्टर की ओर जा रहा था तो मैंने रेल की लाइन पर इसको सिकुड़ी हुई पड़ी देखा। पास में जाकर देखा—यह बेहोश थी। वर्षा जोर की हो रही थी। मैं इसे उठाकर अपने क्वार्टर में ले आया। जल्दी ही इसकी मूर्च्छा दूर हो गई और इसके मुँह से मैंने सारा हाल सुना।

यह रेल की पटरी पर अपना सिर कटवाने के लिए लम्बी पड़ी थी, परन्तु इसे यह मालूम नहीं था कि यहाँ डबल लाइन है और 'अपर इण्डिया' साथ की दूसरी पटरी से होकर जाती थी। कदाचित् यह गाड़ी की गड़गड़ाहट के शब्द से बेहोश हो गई थी।

मुझे इस बेचारी अभागी लड़की की करुण-कथा सुनकर इस पर बड़ा तरस आया। इसके कहने से मैंने इतने दिन इसको छिपाये रखा। परन्तु आज जब इसने अपने पिता के आने की ख़बर सुनी तो यह रह न सकी, मुझे साथ लेकर यहाँ आई है।"

सारी भीड़ हैरान थी। इस घटना को धार्मिक रंग देकर जिन लोगों ने शहर में प्रलय मचा दी थी, उनकी आलोचना होने लगी। इस अद्‌भुत वृद्ध मुसलमान की ओर सभी प्रेम-भरी निगाह से देख रहे थे। सबके ही अन्तर से एक-मात्र यही स्वर सुनाई दे रहा था। "इस संकुचित एवं धार्मिक कट्टरता से भरे संसार में यह 'देवता' कहाँ से आगया।"

सारी भीड़ ही उसके प्रति श्रद्धावनत थी।

अन्दर का दृश्य देखने के लिए सारी भीड़ कमरे के दरवाज़ों, खिड़कियों और शीशों में आँखें लगाए कुछ देखने का प्रयत्न कर रही थी। कमरे का दरवाज़ा बन्द कर दिया गया था।

कामिनी के आँसू आँखों में ही खुश्क हो गए, जब उसने अपने बाबूजी को उस अवस्था में देखा। राधे ने ज़रा इधर-उधर देखकर कहा, "कामो बेटी!"

"बाबूजी, मेरे बाबूजी!" कहते हुए कामिनी ने अपना सिर उसकी छाती पर रख दिया और अनवरी ने उसके सिर को कई बार चूमा।

उसके सिर पर अपने कमज़ोर हाथ फेरते हुए राधे ने छत की ओर देखा—बिजली का पंखा चल रहा था, सामने तकिया, शानदार काउच, सीधी ओर तकिया, चमकदार कुर्सियाँ—और फिर कामिनी की ओर, "कामो, बेटी हम कहाँ हैं?" कदाचित् यहाँ आकर अब ही उसने पहली बार यह अनुभव किया था।

"बाबूजी, सेठजी की कोठी में!"

"राधे, ज़रा मेरी ओर तो देख!"

"भाईजी, देखो ना अपनी कामो की ओर!"

कामिनी, रहमत और अनवरी ने क्रमशः राधे को सम्बोधित करते हुए कहा।

कामिनी कैसे आई, यह पूछने की अभी किसको फुर्सत थी। शेखर के हर्ष का पारावार न था; उसका रोम-रोम पुलकित हो किसी नये संसार की कल्पना में निमग्न था। उसके लिए मानो स्वर्ग से साक्षात् सुर-किन्नरी उतर आई थी।

अपनी बच्ची के स्पर्श, मिलन और इस सुन्दर कमरे के वातावरण ने राधे के निश्चेष्ट शरीर में नव-चेतना ला दी। उसके अंधेरे नयनों में ज्योति की किरण समा गई और उसे कुछ-कुछ दीखने लगा, उसकी जीभ भी कुछ कहने, बोलने के लिए आतुर-सी जान पड़ने लगी।

"बच्ची, कामो,······तू कहाँ है ?" उसने ध्यान से उसके चेहरे की ओर देखा और जेल जाने से पूर्व की उसकी स्थिति का मन-ही-मन सिंहावलोकन किया।

शेखर भी पास ही बैठा था; परन्तु पता नहीं क्यों उसे आगे आने में संकोच अनुभव हो रहा था।

"अनवरी, तुम अच्छी तरह हो······?" राधे ने करवट बदलने का प्रयत्न करते हुए कहा।

"हाँ, भाईजी, बिलकुल ठीक हूँ।" उसने ज़रा निकट होकर कहा, "कामो···मिली है न ?"

"हाँ, बहन, वह अब······वह सदा···के···लिए अनवरी······ तुम्हारे······ही ह······वाले है···" राधे ने टूटती हुई आवाज़ में कहा।

कामिनी रो रही थी।

"रहमत······मैं···इसका···कुछ···नहीं··कर···सका······" और रोमांच हो जाने के कारण वह ठीक प्रकार बोल भी न सका।

"राधे, तेरी साधें अल्लाह पूरी करेगा।"

शेखर आगे बढ़ा और उसकी चारपाई की बाही पर बैठकर राधे

का हाथ अपने हाथ में लेकर बोला, "आपकी कामिनी इस घर की मालकिन बनेगी।"

उसकी प्रकाश-विहीन आँखों में एक बार फिर प्रकाश की स्वर्णिम ज्योति दौड़ गई! वाणी ने कुछ देर के लिए और उसका साथ देना अंगीकार किया, वह धीरे-धीरे बोला, "...सचमुच?" उसके उदास चेहरे पर प्रसन्नता की एक झलक दिखाई दी।

इसी समय पता नहीं क्या सोचकर, पार्वती भी आगे आई और आदर के साथ आँखें नीची करके बोली, "मैं आपसे कामिनी की भिक्षा माँगने आई हूँ।" और उसने अपना आँचल राधे के सामने फैला दिया।

राधे पर पार्वती के इस वाक्य ने जादू का-सा प्रभाव [illegible] किया। उसका हृदय उमड़ा, और आँखों में खुशी के आँ[illegible]सू आ गए। वह हाथ जोड़कर बोला, "...ईश्वर को...लाख...[illegible]लाख" और उसने शेखर का हाथ अपने हाथ में ले लिया। दू[illegible]सरे हाथ में पहले से ही कामिनी का हाथ था। दोनों हाथ बीच [illegible]में स्वयं मिल गए, दोनों नहीं, चारों। और राधे की वाणी से [illegible] फिर धीरे-धीरे निकला, "... मेरी यह सुन्दर जोड़ी......युग-[illegible]युग तक...जीवे।" इसको बहुत कम आदमी सुन सके।

यह कहते-कहते उसके ओठ खुले-के-खुले रह गए और शरीर शिथिल पड़ गया।

राधे ने बड़ी शान्ति, धैर्य तथा सुख से अपने प्राणों को छोड़ा।

कामिनी इस समय पार्वती की गोद में थी। उसकी चीख से कमरा गूँज उठा—पार्वती की गोद उसके आँसुओं से भीग रही थी। रहमत ने राधे के मुँह पर कपड़ा ढकते हुए अपने जीवन साथी का अन्तिम दर्शन किया।

अनवरी भौंचक्की-सी बैठी यह सब दृश्य देख रही थी।

बिजली के करण्ट की भाँति बाहर की भीड़ में यह दुःखदायी ख़बर फैल गई—

'उनका नेता परलोक-प्रयाण कर गया।'

हज़ारों आँखों से आँसुओं की झड़ी लगी थी।